इंग्लैण्ड में गांधीजी

—दूसरी गोलमेज़ परिषद् के समय का रोचक वर्णन—

महादेव देसाई

१९५४

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशकीय

गांधी-इर्विन-समझौते के बाद, महात्मा गांधी राष्ट्रीय महासभा-(कांग्रेस) द्वारा एकमात्र प्रतिनिधि निर्वाचित होकर गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित होने इंग्लैण्ड गये थे। वहां परिषद् में उन्होंने जो भाषणादि दिये, वे 'राष्ट्र-वाणी' के नाम से पुस्तक-रूप में 'मण्डल' से अलग प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इतने ही पर उनका कार्य समाप्त नहीं हो जाता। सच पूछा जाय तो यह तो एक प्रकार से उनका गौण कार्य था। वह परिषद् में कोई विशेष आशा लेकर नहीं गये थे। उनका वास्तविक कार्य तो परिषद् से बाहर था। इसलिए परिषद् से बचा हुआ उनका सारा समय लन्दन और उससे बाहर के आस-पास के प्रमुख व्यक्तियों से भेंट करने एवं संस्थाओं में सम्मिलित होकर भारत के सम्बन्ध में फैली गलतफहमी को दूर कर राष्ट्रीय महासभा के दावे को सिद्ध करने में ही व्यतीत होता था। उनका यह कार्य परिषद् के कार्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। श्री महादेवभाई देसाई इस सबका विवरण प्रति-सप्ताह 'यंग इण्डिया' में प्रकाशनार्थ भेजते रहते थे। इससे पूर्व जहाज पर, जो-जो मनोरंजक घटनायें घटीं, मार्ग में स्थल-स्थल पर गांधीजी का जो अपूर्व स्वागत हुआ, उसका मनोरंजक विवरण भी यथासमय 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं सबका संकलन है।

पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। हमें विश्वास है कि इस महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक सामग्री का आज और आगे भी हार्दिक स्वागत होगा।

विषय-सूची

इंग्लैण्ड में गांधीजी

'राजपूताना' जहाज़ पर

१

मेघाणी का संदेश

यह एक प्रकार से विलकुल जादू-सा ही हुआ, अन्यथा गांधीजी के सचमुच जहाज़ पर सवार होने से पहले किसी को यह विश्वास न हुआ होगा कि वह विलायत जा रहे हैं। अधगोरे पत्रों के शिमला के संवाददाताओं ने सुख की सांस ली होगी कि 'शान्ति में विघ्न डालने वाला', 'असुविधाजनक व्यक्ति', 'दुःख-दायी आदमी' रवाना हो गया—और, प्रायः ऐसे ही भाव अफ़सरों के भी रहे होंगे। सतत जागरुकता ऐसी चीज़ है, जिसे कोई सत्ताधारी सहन नहीं कर सकता; लेकिन गांधीजी के लिए तो यह सतत जागरुकता ही जीवन का मूल श्वास है। किसी को यह न समझ वैठना चाहिए कि चूंकि गांधीजी कुछ सप्ताहों के लिए गैरहाज़िर रहेंगे, इसलिए इस जागरुकता अथवा सावधानी में शिथिलता आ जायगी। गत २७ अगस्त को गृह-सचिव (होम सेक्रेटरी) को लिखा हुआ पत्र, जो कि दूसरे समझौते का भाग है, कांग्रेस की सतत जागरुकता अथवा सावधानी के वचन और गांधीजी के इन भावों के सार्वजनिक वक्तव्य के सिवा और कुछ नहीं है कि यदि वह जा रहे हैं, तो सशंक और कम्पित-हृदय से जा रहे हैं।

*　　　*　　　*　　　*

'राजपूताना' जहाज़ के वम्वई से रवाना होते समय गांधीजी को वहुत से तार मिले। एक तार वायसराय का था तथा वहुत से मित्रों और साथी कार्यकर्ताओं के थे, जिनमें उनकी यात्रा और उससे भी अधिक उनकी वापसी के शुभ होने की कामना की गई थी और उनकी गैरहाज़री में झण्डे को ऊंचा रखने का वचन दिया गया था। दो ऐसे

थे, जिनमें वास्तविक सूचना एवं प्रार्थना थी । एक में कहा गया था, 'ईश्वर आपके मार्ग को प्रकाशमान करे ।' दूसरे में कहा गया था 'या तो आप विजयी होंगे अथवा भारी हानि उठावेंगे । ईश्वर आपको विजयी वनावे ।' किन्तु इस समय गांधीजी जिस स्थिति में थे, उसका सच्चा और सुस्पष्ट चित्र तो, स्वयं गांधीजी के शब्दों में, गुजराती की वह कविता थी, जो हमारे नवयुवक कवि श्री मेघाणी ने बापू की विदाई के उपलक्ष में लिखी थी । यदि मैं उसका सार देने में सफल भी होऊं, तो भी उसके स्वारस्य और आन्तरिक सद्भावनायुक्त उद्गार को अनुवाद में परिणत करना असम्भव होगा । ऐसा मालूम होता है, मानो १३ अगस्त के समझौता-भंग के वाद से गत १५ दिनों तक गांधीजी के अन्तस्थल में उठनेवाले विचारों और भावनाओं को कवि की आत्मा अत्यन्त निकट से देखती रही है । कवि कहता है—

"आपने अनेक कड़वी घूंटें पी हैं, जाइए, अव विष का अन्तिम प्याला पीने के लिए और जाइए । आपने असत्य का सत्य से, घृणा का प्रेम से और कपट का सरल व्यवहार से मुक़ावला किया है । आपने अपने घोरतम शत्रुतक का अविश्वास करने से इनकार कर दिया है । तव जाइए और वह कड़वी घूंट और पीजिए, जो आपके लिए सुरक्षित रखी है । हमारे कष्ट और आपत्तियों के ख़याल से आपको हिचकिचाने की ज़रूरत नहीं (चटगांव की वरवादी की खवर धीरे-धीरे आ रही है) । आपने हमें प्रसन्नतापूर्वक कष्ट-सहन करना सिखाया है । आपने हमारे कोमल हृदय को फ़ौलाद-सा कठोर बना दिया है । ऐसी दशा में क्या चिन्ता, यदि आप खाली हाथ लौटें ? केवल आपका जाना ही काफ़ी है । जाइए, और मानव समुदाय को अपना प्रेम और भ्रातृत्व का सन्देश सुनाइए । मानवजाति रोगों से कराह रही है और शान्ति के मरहम के लिए, जो कि वह जानती है, आप आपने साथ ले जायंगे, अत्यन्त चिन्तातुर है ।"

गांधीजी ने एक मित्र को जहाज़ में सबसे नीचे दर्जे की पांच जगहें तय कर लेने के लिए तार दे दिया था । जहाज़ में सबसे नीचा दर्जा सेकेंड

क्लास था, इसलिए हम दूसरे दर्जे की कोठरी में रहे। लेकिन ज्यों ही गांधी-जी को अवसर मिला, उनकी गृद्ध-दृष्टि हमारी कोठरी की चीज़ों की जांच-पड़ताल करने लगी। उन्होंने कहा, "भाग्य से हम दूसरे दर्जे की कोठरी में हैं, किन्तु मान लो यदि हम निचले दर्जे के मुसाफ़िर होते, तो अपने साथ के इतने सामान की किस तरह व्यवस्था करते ?" एक जवाब था, 'कुछ ही घंटों में हमें तैयार होना पड़ा था।' दूसरा जवाब था 'हमने ये सब सूटकेस उधार लिये हैं और घर पहुंचते ही यह सब लौटा देंगे।' एक तीसरा जवाब यह था कि कई मित्रों ने अपनी फालतू चीज़ों की भरमार कर दी और उन्हें रोकने का हमारे पास कोई उपाय न था। एक जवाब यह भी था कि जानकार मित्रों ने हमें कुछ आवश्यक चीज़ों से लैस रहने की सलाह दी थी और इसीलिए उन्होंने जो कुछ कहा उसे करने के सिवा और कोई चारा न था।

हमारा सामान

इन जवाबों ने हमारे मामले को और भी खराब कर दिया। उन्हें इनमें विशेष बहानेबाज़ी मालूम हुई और वह उत्तेजित हो गये। देश के दरिद्रतम समुदाय के प्रतिनिधि के साथी अपने साथ ऐसे बहुमूल्य सूटकेस रखें——कोई बात नहीं, चाहे वे भेंट में आये अथवा उधार लिये क्यों न हों——इसी ख़याल से उन्हें बड़ा आघात पहुंचा, और इसीलिए हममें से जो कोई भी उनके सामने आया, उसे उनकी कड़ी फटकार सुननी पड़ी——"तैयारी के लिए समय के अभाव का बहाना करना कुछ अच्छा नहीं। किसी तैयारी की ज़रूरत न थी। उचित ही नहीं बल्कि यह अधिक अच्छा होता कि जो-कुछ भी चीज़ें आईं, सबके लिए तुम मित्रों से कह देते कि हमें इन सबकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, और अपने लिए जेराजानी के भण्डार से कुछ गरम और सूती थान ले आते। लेकिन तुम तो जो कुछ आया सब लेते गए, मानो तुम्हें लन्दन में पांच वर्ष रहना हो! मैंने तुमसे कह दिया था कि हमें जिस किसी चीज़ की आवश्यकता होगी वहां मिल सकेगी और लौटने पर हम उसे ग़रीबों के लिए छोड़ते आवेंगे। तुमने ये सूटकेस वापस करने का वादा कर लिया है, इससे

तुम्हारे अपराध में कमी नहीं हो सकती। मैंने यह कभी खयाल नहीं किया था कि तुम ये रख रहे हो; लेकिन तुम लोगों ने बिना किसी हिचकिचाहट के इन चमड़े के ट्रंकों को स्वीकार कर लिया, इससे अपनी ग़रीबी और अपरिग्रह की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है, इसका मुझे खयाल हो आया। तुम कहते हो कि इनमें की कुछ चीजें पुरानी हैं और मित्र के पास फालतू पड़ी हुई थीं। इससे तुम या तो खुद अपने को धोखा दे रहे हो, या मुझे धोखे में डालना चाहते हो। यदि ये फालतू होतीं, तो उन्होंने इन्हें फेंक दिया होता। उन्होंने ये तुम्हें कभी न दी होतीं, यदि तुमने उनसे यह न कहा होता कि हमें इनकी ज़रूरत है। और यह कहना कि तुमने जानकारों की सलाह के अनुसार यह सब कुछ किया, बेहूदगी है। अगर तुमने उनकी सलाह ली, तो तुम्हें उनके साथ ही रहना चाहिए था। यहां तुम मेरे साथ हो और इसीलिए मेरी सलाह के अनुसार चलना चाहिए।" इस तरह कई दिनों तक यह फटकार पड़ती रही। यद्यपि हम बहुत अच्छे प्रवासियों में थे; किन्तु यह फटकार किसी को भी खिन्न अथवा बीमार कर देने के लिए काफ़ी थी। इससे हमने यह अच्छा उपाय सोच निकाला कि हमें जिन चीज़ों की ज़रूरत है, और जिनकी ज़रूरत नहीं है, उनकी छंटनी कर डालें और अनावश्यक चीज़ों को अदन से वापस लौटा दें। और इसलिए यह हमारा पहला काम हो गया।

इसीमें तीन दिन लग गये और चौथे दिन हमने अपनी सूची निरीक्षण के लिए पेश की। उन्होंने कहा, 'अब मैं तुम्हारी सूची में दखल दूंगा, यद्यपि मैं यह चाहूंगा कि लन्दन की गलियों में तुम्हें उसी तरह घूमता देखूं, जिस तरह कि तुम लोग शिमले में घूमा करते हो। यदि तुम शिमले में एक धोती, एक कुर्ता और एक जोड़ी चप्पल पहन कर घूम सकते हो, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि लन्दन में ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हारे इस तरह घूमने में रुकावट डाल सके। यदि मैं देखूंगा कि तुम पर्याप्त कपड़े नहीं पहने हुए हो, तो मैं स्वयं

तुम्हें सावधान करूंगा और तुम्हारे लिए अधिक ऊनी कपड़े प्राप्त करूंगा। लेकिन तुम किसी ऐसे काल्पनिक भय के कारण कुछ भी न पहनो कि यदि तुम यह न पहनोगे तो वहां के लोग दुःखित होंगे। विश्वास रखो कि वहां के लोग तो तुम्हारे अथवा मेरे पास बढ़िया सूटकेस देखकर दुःखित होंगे।' एक कम्पनी की तरफ़ से भेंट-स्वरूप दिये गये चमड़े के एक बेग की तरफ़ इशारा करते हुए उन्होंने कहा—'यदि तुम हिन्दुस्तान में खादी के झोले से काम चला सकते हो, तो इंग्लैण्ड में क्यों नहीं चला सकते? और क्या तुम समझते हो कि वहां के आदमी ऐसे सुन्दर बेगों में ही अपने काग़ज़-पत्र ले जाते हैं? हरगिज़ नहीं। सम्भव है लोम्बर्ड स्ट्रीट में कुछ मालदार पूंजीपतियों, व्यवसाइयों अथवा बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के हाथ में तुम ऐसे बेग देखो, वे उनमें महत्वपूर्ण सरकारी काग़ज़-पत्र ले जाते हुए दिखाई दें; लेकिन तुम्हारे हाथ में ये हास्यास्पद मालूम होंगे।' एक मित्र ने बड़े आग्रह से एक दूर्बीन दिया था। उसकी भी वही दशा हुई। उसपर भी वही साधारण कसौटी लगाई गई कि हमें ऐसी कोई चीज़ न रखनी चाहिए, जो साधारण अवस्था में हम न रख सकते हों। लेकिन इस तरह की बातों से काफ़ी मनोरंजन हुआ और गांधीजी का क्रोध शान्त हो गया। एक मित्र ने कृपाकर जहाज़ पर गांधीजी के इस्तैमाल के लिए एक मोड़कर रक्खी जा सकने योग्य, अमेरिका की बनी हुई सफ़री चारपाई दी थी। उसे देखकर गांधीजी ने कहा—'ओह, क्या यह सफरी चारपाई है? मैं तो समझता था कि यह हाकी का सेट है! ठीक, इस हाकी-सेट को भी जाने दो। क्या तुमने कभी मुझे इसका उपयोग करते देखा है?' इसी क्षण हमारे और उनके कष्ट को दूर करने के लिए श्री शुएब कुरेशी आ पहुंचे और तुरन्त ही गांधीजी ने मज़ाक करते हुए उनसे कहा—"अच्छा शुएब, यदि नवाब साहब (भोपाल) की पार्टी में कोई काश्मीरी दुशाले खरीदना चाहते हों, तो मुझे बताओ। मित्रों ने मेरे लिए जो बहुत से शाल दिये हैं, मैं उनकी दुकान खोल सकूंगा। एक मित्र ने मुझे ७००) का जो कीमती

शाल दिया है, वह इतना मुलायम और वारीक है कि एक अंगूठी के वीच में से निकल सकता है। शायद उन्होंने यह खयाल किया होगा कि यह दिखाने के लिए कि करोड़ों भारतीयों का मैं कितना अच्छा प्रतिनिधित्व करता हूं, मैं यह शाल ओढ़कर गोलमेज़-परिषद् में जाऊंगा। अच्छा हो, यदि वेगम साहवा इस वहुमूल्य शाल से मुझे मुक्त करें और इसके वदले ग़रीवों के उपयोग के लिए मुझे ७०००) रुपये दे दें। ग़रीवों के एकमात्र प्रतिनिधि के लिए यही सवसे उपयुक्त है।'

यह फटकार अनुपयुक्त नहीं थी, यह वात इसीसे निश्चित रूप से सिद्ध हो जायगी कि इसके परिणामस्वरूप हमें जो छंटनी करनी पड़ी, उससे हम कम-से-कम सात सूटकेस अथवा केविन ट्रंक अदन से वापस लौटा कर उनसे छुट्टी पा गये।

समुद्र क्षुव्ध है। हममें से अधिकांश गांधीजी से, जिनसे वढ़कर 'राजपूताना' जहाज़ पर शायद और कोई खेवनहार नहीं है, कोई गम्भीर वात या वहस करने के लिए तैयार नहीं है। सेकेण्ड क्लास की सतह पर उन्होंने एक कोने में अपने लिए जगह चुन ली है, और वे अपने दिन का अधिकांश और सारी रात वहीं विताते हैं। उस दिन घनश्यामदासजी विड़ला ने उनसे कहा, 'मालूम होता है, हम लोगों से पिण्ड छुड़ाने के लिए आपने जानवूझ कर यह जगह चुनी है। हमारे लिए तो प्रार्थना के समय भी कुछ मिनट यहां वैठना कठिन प्रतीत होता है।'

उत्तम खिवैया

लेकिन हिन्दुस्तानी मुसाफ़िरों की काफ़ी संख्या ने अपनी समुद्री वीमारी से छुटकारा पाना शुरू कर दिया है, जिससे कि भोजन के कमरे अव पूरे भर जाते हैं, और २२ यात्री कल शाम की प्रार्थना में सम्मिलित हुए थे। गांधीजी ने अपने दैनिक कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया है। अपने नियमित समय पर वह सोते और उठते हैं और हमेशा की भांति ही काम करते हैं।

यहां मुझे यह कहना ही होगा कि न सिर्फ गांधीजी के प्रति, वल्कि उनके सव साथियों के साथ, जो कि खादी का कुर्ता, धोती और टोपी

पहने हुए सारे जहाज़ में धमाचौकड़ी मचाये रहते हैं, जहाज़ के सब अधिकारियों का व्यवहार न केवल असाधारण बल्कि अत्यधिक शिष्टतापूर्ण रहा है। पी. एण्ड ओ. जहाज़ी कम्पनी के खिलाफ़ हिन्दुस्तानी मुसाफ़िरों के रंगभेद और जातीय पक्षपात की जो अनेक शिकायतें हम सुनते हैं, वे किसी तरह इस यात्रा के समय इस जहाज़ से ग़ायब हो गई दिखाई देती हैं।

जहाज़ के कर्मचारी

२

अदन

बम्बई से ठीक पश्चिम की तरफ के १,६६० मील दूर थका देनेवाले समुद्री-सफ़र के बाद, विश्राम का पहला बन्दरगाह अदन है। नगर ज्वालामुखी चट्टानों का समूह है—नगर का केन्द्र भाग अभी तक 'क्रेटर' (ज्वालामुखी का मुख) कहलाता है और यात्री को जहाज़ पर से ही मछलियों के बड़े-बड़े ढेर और शहर के चारों ओर की वृक्षहीन, कोयले-सी काली चट्टानें दिखाई देने लगती हैं। कहा जाता है कि सदियों से इसपर अनेक शासकों ने शासन किया, और अब भी कहा जाता है कि जिस समय सन् १८३९ में इसपर अधिकार किया गया यह एक मछली के शिकार का छोटा-सा गांव था, जिसमें मुश्किल से ६०० प्राणी रहते थे। यदि विश्वस्त विवरण मालूम हो सके तो इसके कब्ज़ा किये जाने की कथा भी बड़ी मनोरंजक होगी और शायद साम्राज्यवादी लुटेरों की उन्नीसवीं सदी की लूट में और वृद्धि करेगी। अवश्य ही अंग्रेज़ी स्कूल के विद्यार्थी को तो यही पढ़ाया जाता है कि लाहेज का सुलतान, जो कि सालाना खिराज के तौर पर अदन छोड़ने के लिए तैयार हो गया था, अपने वायदे से फिर गया और एक अंग्रेज़ी जहाज़ पर हमला करके उसे लूट लिया। नतीजा यह हुआ कि किलों पर धावा करना ज़रूरी हो गया और तदनुसार सन् १८३९ में उनपर आक्रमण करके कब्ज़ा कर लिया गया। लेकिन सच बात तो यह है कि लाल महासागर—संसार के सब-

से वड़े जलमार्ग—पर अपना निश्चित अधिकार बनाये रखना ज़रूरी था, और यह तबतक सम्भव न था, जबतक अदन और पेरिम में एक ज़बरदस्त फ़ौज न रखी जाती। पेरिम अदन से सुदूर पश्चिम की ओर १०० मील के फ़ासले पर एक द्वीप है, जिसपर इतनी सख्ती से निगरानी रखी जाती है कि अदन के रेसिडेन्ट की स्वीकृति के बिना वहां कोई भी नहीं ठहर सकता।

शहर की आबादी ५३,००० है, जिसमें २१,००० अरब, ६,५०० सोमाली और ५,५०० हिन्दुस्तानी हैं, जिनमें अधिकांश बम्बई के गुजराती और कच्छी हैं। इन कुल ९२ वर्षों से अदन अभी तक बम्बई-सरकार के आधीन था; लेकिन अब एक प्रस्ताव इसे भारत सरकार के आधीन कर देने का चल रहा है। अनेक स्पष्ट कारणों से अदन के भारतीय इस परिवर्तन का विरोध कर रहे हैं। विरोध का एक सर्वथा स्वाभाविक कारण यह है कि यहां के अधिकांश निवासी बम्बई के हैं और उनका व्यापार सम्बन्ध भी बम्बई से ही है, इसलिए उनके लिए सबसे अधिक सुविधा बम्बई के अन्तर्गत रहने में ही है। दूसरे सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि बम्बई को प्रान्तीय स्वतन्त्रता के अधिकार मिलें, जो कि अब अवश्य ही मिलेंगे, तो अदन उसके लाभ से वंचित न किया जाना चाहिए। एक और भी कारण है और वह यह कि यदि अदन केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द कर दिया गया तो यह बहुत सम्भव है कि वह एक बन्दोबस्ती ज़िला या अर्द्धफ़ौजी क्षेत्र बना दिया जायगा और इस प्रकार वहां का सारा सार्वजनिक जीवन नष्ट हो जायगा।

यहां के हिन्दुस्तानी गांधीजी तथा गोलमेज़-परिषद के दूसरे प्रतिनिधियों का स्वागत करना चाहते थे, और इसके लिए राष्ट्रीय झण्डा साथ रखना चाहते थे। किन्तु रेसिडेन्ट ने राष्ट्रीय झण्डा साथ रखने

राष्ट्रीय झण्डा

की इजाज़त न दी और जबतक स्वयं गांधीजी ने इस स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री फ़ामरोज़ कावसजी को यह न सुझाया, कि रेसिडेन्ट से टेलीफ़ोन द्वारा कहा जाय कि वह (गांधीजी) इन शर्तों के

रहते अभिनन्दन-पत्र के स्वीकार करने की कल्पना तक नहीं कर सकते, और जब कि सरकार और कांग्रेस में सन्धि है, तब कम-से-कम सन्धि के अनुसार सरकार को राष्ट्रीय झण्डे का विरोध नहीं करना चाहिए, तब-तक किसी को भी रेसिडेन्ट के इस कार्य का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। यह दलील काम कर गई, और गांधीजी को अभिनन्दन-पत्र दिये जाने की जगह राष्ट्रीय झण्डा फहराने की स्वीकृति देकर रेसिडेन्ट ने इस अप्रिय स्थिति को बचा लिया।

दूसरी बात जो मैंने देखी वह यह थी कि यद्यपि अदन के भारत सरकार के अधीन किये जाने का प्रश्न कई दिनों से सामने था, फिर भी गांधीजी को दिये गये अभिनन्दन-पत्र में उस सम्बन्ध में एक शब्द तक न था। मैं अधिकारियों के भय के सिवा इसका कारण और कुछ नहीं समझता। किन्तु कुछ नवयुवक ऐसे हैं, जो बम्बई के कांग्रेस के उत्साह-प्रद वातावरण की कुछ चिनगारियां वहां ले गये हैं, और गुजरातियों के कारण, जो कि प्रत्यक्षतः आन्दोलन से परिचित रहे हैं, वहां काफ़ी खादी दिखाई दी, हालांकि मैं यह नहीं कह सकता कि वह सब शुद्ध थी या नहीं।

इस स्थिति से गांधीजी को कांग्रेस का सन्देश सुनाने का मौका मिल गया, और चूंकि स्वागत की तैयारी में अरबों ने भी योग दिया था—स्वागत का अभिनन्दन-पत्र गुजराती और अरबी दोनों भाषाओं में पढ़ा गया था—इसलिए अरबों को भी वह अपना सन्देश सुना सके।

अभिनन्दन-पत्र का उत्तर और ३२८ गिन्नियों की थैली के लिए धन्य-वाद देते हुए गांधीजी ने कहा—

"आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। मैं जानता हूं कि यह सम्मान व्यक्तिशः मेरा या मेरे साथियों का नहीं है, वरन् कांग्रेस का है, जिसका कि, ऐसी आशा है, मैं गोल-मेज़ परिषद् में योग्य प्रतिनिधित्व करूंगा। मुझे मालूम हुआ है कि अभिनन्दन-पत्र के इस कार्यक्रम में आपके सामने राष्ट्रीय झण्डे के कारण

कुछ रुकावट थी। अब मेरे लिए तो हिन्दुस्तानियों की ऐसी सभा की, खास कर जब कि राष्ट्रीय नेता निमन्त्रित किये गये हों, कल्पना करना ही असम्भव है, जहां पर राष्ट्रीय झण्डा न फहराता हो। आप जानते हैं कि राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान की रक्षा में बहुतों ने लाठियों के प्रहार सहे हैं, और कइयों ने अपने प्राण तक दे दिये हैं; इसलिए आप राष्ट्रीय झण्डे का सम्मान किये विना किसी हिन्दुस्तानी नेता का सम्मान नहीं कर सकते। फिर सरकार और कांग्रेस के वीच समझौता हो चुका है, और कांग्रेस इस समय उसका विरोधी दल नहीं वरन् मित्रवत् है। इसलिए सिर्फ़ राष्ट्रीय झण्डे का केवल फहराना सहन कर लेना या उसकी इजाज़त दे देना ही काफ़ी नहीं है; वरन् जहां कांग्रेस के प्रतिनिधि निमन्त्रित किये जायं, वहां उसे सम्मान का स्थान देना चाहिए।

"कांग्रेस की ओर से मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूं कि उसका उद्देश्य ऐसी ही स्वाधीनता प्राप्त कर लेना नहीं है, जिससे भारतवर्ष संसार के अन्य राष्ट्रों से अलग पड़ जाय; क्योंकि ऐसी स्वाधीनता तो आसानी से संसार के लिए खतरा वन सकती है। सत्य और अहिंसा के अपने ध्येय के कारण कांग्रेस सम्भवतः संसार के लिए खतरा हो भी नहीं सकती। मेरा यह विश्वास है कि मानवजाति का पांचवां भाग—भारत—सत्य और अहिंसा द्वारा स्वतन्त्र होने पर, समस्त मनुष्य-जाति की सेवा की एक जवरदस्त शक्ति हो सकता है। इसके विरुद्ध आज का पराधीन भारत संसार के लिए एक खतरा है। वर्तमान भारत असहाय है और इसे सदैव लूटते रहनेवाले दूसरे देशों की ईर्ष्या और लालच को इससे उत्तेजना मिलती रहती है। लेकिन जव भारत इस तरह लुटने से इन्कार कर अपना काम स्वयं अपने हाथ में लेने में काफ़ी समर्थ होगा, और अहिंसा और सत्य के द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा, तव वह शान्ति की एक शक्ति होगा और अपने इस पीड़ित भूमण्डल पर शान्तिपूर्ण वातावरण पैदा करने में समर्थ होगा।

विश्व-शांति और भारत

"इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इस समारोह के संगठन में अरव

और अन्य लोगों ने हिन्दुस्तानियों का साथ दिया। शान्ति के सब उपासकों को शान्ति को चिरस्थायी बनाने के काम में सहयोग देना ही चाहिए। मुहम्मद और इस्लाम की जन्मभूमि, यह महाद्वीप, हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के हल करने में मदद कर सकती है। मेरे लिए यह अस्वीकार करना लज्जा की बात है कि अपने घर में हम एक-दूसरे से अलग हैं। कायरता और भय से हम एक-दूसरे का गला काटने दौड़ते हैं। हिन्दू कायरता और भय के कारण मुसलमानों का अविश्वास करते हैं और मुसलमान भी वैसी ही कायरता और कल्पित भय से हिन्दुओं का अविश्वास करते हैं। इतिहास में शुरू से अखीर तक इस्लाम अपूर्व बहादुरी और शान्ति के लिए खड़ा है। इसलिए मुसलमानों के लिए यह गौरव की बात नहीं कि वे हिन्दुओं से भयभीत हों। इसी तरह हिन्दुओं के लिए भी यह बात गौरवपूर्ण नहीं है कि वे मुसलमानों से, चाहे उन्हें संसार भर के मुसलमानों की सहायता क्यों न मिली हो, भयभीत हों। क्या हम इतने पतित हैं कि हम अपनी ही परछाईं से डरें? आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि पठान लोग हमारे साथ शान्तिपूर्वक रह रहे हैं। पिछले आन्दोलन में वे हमारे साथ कंधे-से-कंधा भिड़ा कर खड़े रहे और स्वतन्त्रता की वेदी पर अपने नौजवानों का उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी बलिदान किया। मैं आपसे, जो कि पैग़म्बर की जन्मभूमि के निवासी हैं, चाहता हूं कि भारत के हिन्दू-मुसलमानों में शान्ति कायम रखने में आप अपने हिस्से का सहयोग दें। मैं यह नहीं बता सकता कि आप यह किस तरह करें, लेकिन जहां इच्छा होती है वहां रास्ता निकल ही आता है। मैं अरब के अरबों से चाहता हूं कि वे हमारी मदद के लिए आगे बढ़ें और ऐसी स्थिति पैदा करने में हमारी सहायता करें, जिसमें कि मुसलमान हिन्दुओं की और हिन्दू मुसलमानों की सहायता करना अपने लिए इज़्ज़त और सम्मान की बात समझें।

अरबों को सन्देश

"बाक़ी के लिए मैं आपको अपने घरों में चर्ख़ा और करघा चलाने का

सन्देश भी देना चाहता हूं। कई खलीफ़ाओं ने अपना जीवन अनुकरणीय सादगी से विताया है, और इसलिए यदि आप भी अपना कपड़ा स्वयं वना सकें, तो इसमें इस्लाम के विरुद्ध कोई वात न होगी। इसके अलावा शरावखोरी का भी सवाल है, जो कि आपके लिए दुहेरा पाप होना चाहिए। यहां पर शराव की एक भी वूंद नहीं होनी चाहिए थी। लेकिन क्योंकि यहां दूसरी जातियां भी हैं, मैं समझता हूं, अरव लोग उन्हें इस वात के लिए तैयार करेंगे कि अदन में शराव की सर्वथा वन्दी हो जाय। मैं आशा करता हूं कि हमारा पारस्परिक सम्वन्ध दिन-व-दिन वढ़ता रहेगा।"

हम चाहे समुद्र के वीचों-वीच हों, तो भी वाहरी दुनिया से हमारा सम्वन्ध वरावर वना रह सकता है। हमें न केवल किनारे से ही वरन् एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ तक से सन्देश मिल सकते हैं।

मार्ग में वधाइयां

वम्वई से रवाना होने के तीन दिन में ही हमें मित्रों के वधाई के वहुसंख्यक वेतार के तार मिले। 'सिटी ऑफ़ वड़ौदा' तथा 'क्रेकोविया' नामक जहाज़ से भारतीय यात्रियों के वहुत से सन्देश मिले। इसी प्रकार कराची और वम्वई से भी वहुत से सन्देश आये। किन्तु विशेष कर सुखद आश्चर्य तो वरवेरा के भारतीयों के तार से हुआ। एक क्षण के लिए हम इस चक्कर में पड़ गये कि वरवेरा कहीं दूसरे जहाज़ों की तरह कोई जहाज तो नहीं है, जिससे कि हमें वेतार से वधाई के सन्देश मिले हैं। किन्तु अन्त में पता चला कि वरवेरा ब्रिटिश सोमलीलैण्ड का मुख्य नगर है और १८८४ से संरक्षक स्थान है।

और अव क्योंकि हम स्वेज़ के निकट पहुंच रहे हैं, हमें क़ाहिरा के भारतीयों और मिस्र-निवासियों से थोड़ी-थोड़ी देर में वधाई के सन्देश मिल रहे हैं।

श्रीमती ज़गलुलपाशा

इनमें सवसे अधिक उल्लेखनीय श्रीमती वेगम ज़गलुल पाशा का यह सन्देश था—"मिस्री सागर को पार करते हुए इस सुखद अवसर पर भव्य भारत के महान नेता को मैं अपने हृदय के अन्तरतम से वधाई देती हूं

और भारतीय हितों की सफलता के लिए हृदय से कामना करती हूं।"
मिस्र के प्रमुख पत्र 'अल वलग़' का सन्देश भी देने योग्य है। वह यह है—"क़ाहिरा का 'अल वलग़' पत्र आपके रूप में भारत को बधाई देता है और परिषद् में भारतीय हितों की सफलता चाहता है।"

जहाज़ पर के अपने मित्रों में सबसे पहले गिनती होनी चाहिए, अपने घर—इंग्लैण्ड—जाने वाले अंग्रेज़ यात्रियों के बालक-बालिकाओं की। बच्चों के न तो कोई लिंगभेद होता है, न रंगभेद। और हमारे जहाज़ पर सबसे अधिक आम बात गांधीजी का अक्सर बच्चों के कान खींचना, पीठ ठोंकना और गांधीजी के नाश्ते अथवा भोजन के समय इन बालकों का उनकी केबिन—कोठरी—में अपने छोटे सिर डालना या झांकना है। "अंगूर या खजूर?" यह मामूली प्रश्न है, जो उनसे पूछा जाता है, और वे प्रसन्नता से अंगूर की तश्तरी ले भागते हैं और तुरन्त खाली करके लौटा जाते हैं। मैंने इन्हें घूमते हुए चर्खे के चक्र को मिनटों तक बड़े आश्चर्य और विनोद के साथ देखते हुए देखा है। लेकिन इन मित्रों के सम्बन्ध में अधिक फिर कभी कहने की आशा करता हूं।

चर्खा

गांधीजी का चर्खा यहां सबके लिए एक समान आकर्षण का विषय रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि पुरुष, स्त्री सब जिन्दगी-भर कपड़े पहनते हैं, किन्तु रूई, कताई और बुनाई के सम्बन्ध में वे कितना कम जानते हैं! इसलिए जब गांधीजी और मीरा-बहन डेक (नौकास्तल) पर चर्खा चलाने बैठते हैं तो उनसे अनेक मनोरंजक प्रश्न पूछे जाते। लेकिन चर्खे के प्रति इस तरह जो दिलचस्पी पैदा हुई है, वह सरसरी नहीं है। उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए इंग्लैण्ड जाते हुए अनेक विद्यार्थियों ने मशीनों के इस युग में कताई की आर्थिक उपयोगिता और चर्खे के स्थान के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे। लेकिन फिर भी यह देखकर कि पिछले कुछ वर्षों से चर्खा हमारे जीवन की एक विशेषता हो गई है, उनका अज्ञान उल्लेखनीय है।

प्रातःकाल की प्रार्थना का समय इन मित्रों के आकर्षण के योग्य

नहीं था, क्योंकि वह वहुत जल्दी होती है। लेकिन शाम की प्रार्थना में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख आदि प्रायः सब हिन्दुस्तानी (जिनकी संख्या ४२ से अधिक है) और इक्के-दुक्के अंग्रेज सम्मिलित होते हैं। इन मित्रों में से कुछ के प्रार्थना करने पर, प्रार्थना के वाद, गांधीजी से पन्द्रह मिनट का वार्तालाप एक दैनिक कार्य वन गया है। प्रत्येक शाम को एक प्रश्न पूछा जाता है, और दूसरी शाम को गांधीजी उसका उत्तर देते हैं। एक दिन एक मुसलमान युवक ने गांधीजी से प्रार्थना के सम्वन्ध में सैद्धान्तिक विवेचना नहीं, वरन् प्रार्थना के फलस्वरूप उन्हें जो कुछ व्यक्तिगत अनुभव हुआ हो, वह वताने के लिए कहा। गांधीजी ने इस प्रश्न को अत्यधिक पसन्द किया और पूर्ण हृदय से प्रार्थना के सम्वन्ध में अपने अनुभव का प्रवाह शुरू किया। उन्होंने कहा—"प्रार्थना मेरे जीवन की रक्षिका रही है। इसके विना मैं वहुत पहले ही पागल हो गया होता। मेरी 'आत्म-कथा' आपको मालूम होगा कि अपने जीवन में मुझे सार्वजनिक और खानगी तरह के काफ़ी कटु-से-कटु अनुभव हुए हैं। उन्होंने मुझे क्षणिक २ में डाल दिया था; लेकिन अन्त में मैं उससे अपने आपको वचा , और इसका कारण था प्रार्थना। अव मैं आपको वता देना चाहता जिस अर्थ में सत्य मेरे जीवन का एक भाग रहा है, उस तरह न नहीं रही है। इसका प्रारम्भ सर्वथा आवश्यकता के कारण हुआ, ोंकि जव कभी मैंने अपने को कठिनाई में पाया, कदाचित् इसके विना मैं सुखी न हो सका। और जितना अधिक मेरा ईश्वर में विश्वास वढ़ा, उतनी ही अधिक प्रार्थना के प्रति मेरी लगन वढ़ने लगी। उसके विना जीवन सुस्त और नीरस मालूम होने लगा। दक्षिण अफ्रीका में मैं ईसाइयों की प्रार्थना में सम्मिलित हुआ था; लेकिन वह मुझे आकर्षित करने में असफल हुई। मैं प्रार्थना में उनका साथ न दे सका। उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना की, किन्तु मैं ऐसा न कर सका, मैं वुरी तरह असफल हुआ। मैंने ईश्वर और प्रार्थना में अविश्वास करना शुरू कर

दिया। आगे चलकर जीवन की एक खास अवस्था के सिवा, मैंने जीवन में किसी बात को असम्भव नहीं समझा। लेकिन उस अवस्था में मैंने अनुभव किया कि जिस तरह शरीर के लिए भोजन अनिवार्य है, उसी तरह आत्मा के लिए प्रार्थना अनिवार्य है। वस्तुतः भोजन शरीर के लिए इतना आवश्यक नहीं है, जितनी प्रार्थना आत्मा के लिए; क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भूखे रहने या उपवास करने की अक्सर आवश्यकता हो जाती है, किन्तु 'प्रार्थना का उपवास' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। सम्भवतः आप प्रार्थना का अतिरेक नहीं पा सकते। संसार के सबसे बड़े शिक्षकों के तीन महान् शिक्षक बुद्ध, ईसा और मुहम्मद अपना यह अकाट्य अनुभव छोड़ गये हैं कि उन्हें प्रार्थना के द्वारा प्रकाश मिला और उसके बिना जीवित रह सकना सम्भव नहीं। पास का उदाहरण लीजिए। करोड़ों हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अपने जीवन का समाधान केवल प्रार्थना में पाते हैं। या तो आप उन्हें झूठा कहेंगे या आत्मवंचक। तब मैं कहूंगा, कि यदि यह 'झुठाई' है, जिसने मुझे जीवन का वह मुख्य आधार दिया है, जिसके बिना मैं एक क्षण को भी जीवित नहीं रह सकता था, तो मुझ सत्य-संशोधक के लिए इस झुठाई में मोहकता है। राजनैतिक क्षितिज में निराशा के स्पष्ट दर्शन होने पर भी मैंने कभी अपनी शान्ति नहीं खोई। वस्तुतः मुझे ऐसे आदमी मिले हैं, जो मेरी शान्ति से ईर्ष्या करते हैं। मैं आपको बता देना चाहता हूं कि मुझे यह शान्ति प्रार्थना से ही मिलती है। मैं कोई विद्वान व्यक्ति नहीं हूं; किन्तु नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि मैं प्रार्थना का प्राणी हूं। प्रार्थना के रूप के सम्बन्ध में मैं उदासीन हूं। इस सम्बन्ध में अपने लिए नियम निश्चित करने में प्रत्येक स्वतन्त्र है। किन्तु कुछ सुचिन्हित मार्ग हैं, और प्राचीन शिक्षकों द्वारा अनुभूत मार्ग पर चलना अच्छा है। मैं अपना निजी अनुभव बता चुका हूं। प्रत्येक को प्रयत्न करना और यह अनुभव करना चाहिए कि दैनिक प्रार्थना के रूप में वह अपने जीवन में किसी नवीन वस्तु की वृद्धि कर रहा है।"

दूसरी शाम को एक दूसरे युवक ने पूछा—"लेकिन गांधीजी, आप तो ईश्वर के विषय में मूल से ही आस्तिकता अर्थात् विश्वास से आरम्भ करते हैं, जब कि हम नास्तिकता अर्थात् अविश्वास से आरम्भ करते हैं, ऐसी दशा में हम प्रार्थना किस तरह कर सकते हैं ?"

गांधीजी ने कहा—"ईश्वर के सम्बन्ध में आपमें विश्वास पैदा करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। कई बातें स्वयं-सिद्ध होती हैं और कई ऐसी होती हैं, जो सिद्ध हो ही नहीं सकतीं। ईश्वर का अस्तित्व रेखागणित के स्वयं-सिद्ध सत्यों की तरह है। यह सम्भव है कि हमारे हृदय से वह ग्रहण न हो सके। बुद्धिग्राह्यता की तो मैं बात ही न करूंगा। बौद्धिक प्रयत्न तो थोड़े बहुत अंश में निष्फल ही हैं। बुद्धिगम्य युक्तियों अथवा दलीलों से ईश्वर के विषय में श्रद्धा पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि यह वस्तु बुद्धि की ग्रहणशक्ति के परे है। युक्तियां उसके सामने काम नहीं करतीं। ऐसी बहुत-सी घटनाएं हैं, जिनसे ईश्वर के अस्तित्व की दलीलें की जा सकती हैं; लेकिन ऐसी बुद्धिगम्य दलीलों में उतर कर मैं आपकी बुद्धि का अपमान नहीं करना चाहता। मैं तो आपको यही सलाह दूंगा कि ऐसी सब बौद्धिक दलीलों को एक तरफ़ रख दीजिए और ईश्वर के सम्बन्ध में सीधी-सादी बालोचित श्रद्धा रखिए। यदि मेरा अस्तित्व है—यदि मैं हूं, तो ईश्वर का भी अस्तित्व है—ईश्वर भी है। करोड़ों लोगों की तरह वह मेरे जीवन की एक आवश्यकता है। चाहे ये करोड़ों लोग ईश्वर के सम्बन्ध में व्याख्यान न दे सकें, किन्तु उनके जीवन से आप जान सकते हैं कि ईश्वर के प्रति विश्वास उनके जीवन का अंग है। आपका यह विश्वास दब गया है, मैं केवल उसे सजीव करने के लिए आपसे कहता हूं। इसके लिए, अपनी बुद्धि को चौंधिया देनेवाला और अपनेको चंचल बना देनेवाला जो बहुत-सा साहित्य हमने पढ़ा है, उसे भुला देना होगा। ऐसी श्रद्धा से आरम्भ कीजिए, जिसमें नम्रता का भी आभास है और यह स्वीकृति भी है कि हम कुछ नहीं जानते—इस संसार में हम अणु से भी छोटे हैं। हम अणु से भी छोटे हैं, यह

मैं इसलिए कहता हूं कि अणु तो प्रकृति के नियमों की अधीनता में रहकर उनका पालन करता है, जबकि हम अपनी अज्ञानता के मद में प्रकृति के नियमों—कुदरत के कानून—का इन्कार करते हैं—उनका भंग करते हैं। लेकिन जिनमें श्रद्धा नहीं है, उन्हें समझा सकने जैसी कोई बौद्धिक दलील मेरे पास है ही नहीं।

"एक बार ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार कर लिये जाने पर प्रार्थना की आवश्यकता स्वीकार किये बिना कोई गति नहीं। हमें इतना बड़ा भारी दावा न करना चाहिए कि हमारा तो सारा जीवन ही प्रार्थनामय है, इसलिए किसी खास समय प्रार्थना के लिए बैठने की कोई खास ज़रूरत नहीं। जिन व्यक्तियों का सारा समय अनन्त के साथ एकाग्र करने में बीता है, उनतक ने ऐसा दावा नहीं किया है। उनका जीवन सतत प्रार्थना-मय होने पर भी, हमें कहना चाहिए कि, हमारे लिए वे एक निश्चित समय पर प्रार्थना करते और प्रतिदिन ईश्वर के प्रति अपनी वफ़ादारी की प्रतिज्ञा को दुहराते हैं। अवश्य ही ईश्वर को ऐसी किसी प्रतिज्ञा की आवश्यकता नहीं; लेकिन हमें तो नित्य इस प्रतिज्ञा को दुहराना चाहिए और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि उस दशा में हम अपने जीवन के सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जायंगे।"

इस समय लाल सागर के १२०० मील समाप्त कर हम स्वेज़-नहर के निकट पहुंच रहे हैं।

नहासपाशा की बधाई

मिस्र की जिस स्वतन्त्रता के लिए लड़ते-लड़ते ज़गलुल पाशा मर गये, उसीके लिए लड़नेवाली सरकार-विरोधी वफ़्द पार्टी के प्रधान श्री नहास पाशा का उत्साहवर्धक बधाई का निम्नलिखित सन्देश मिला—

महान् नेता महात्मा गांधी की सेवा में,
'राजपूताना' जहाज पर।

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिस्र के नाम पर मैं आपका, जो उसी स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले भारत के

सर्वप्रधान नेता हैं, स्वागत करता हूं। आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त होने और प्रसन्नतापूर्वक लौटने के लिए मैं हार्दिक शुभ कामना प्रकट करता हूं। मैं ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूं कि वह आपको वैसी ही सफलता प्रदान करे, जैसा कि महान् आपका निश्चय है। मैं आशा करता हूं कि आप जब वहां से लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलने का आनन्द होगा। मुझे भरोसा है कि आपकी यात्रा का फल चाहे जो कुछ हो, उस समय आप मिस्र देश पर कृपा करके हमारे यहां पधारेंगे और वफ़्द पार्टी तथा मिस्र राष्ट्र को ऐसा अवसर देंगे, जिसमें वह आपकी देश-सेवा के फलों के लिए तथा, आपने अपने सिद्धान्तों के लिए जो त्याग किया है, उसके प्रति अपना आदरभाव प्रकट कर सके। ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनावे और आपके प्रयत्नों में आपको स्थायी और विस्तृत विजय प्रदान करे! हमारे प्रतिनिधि स्वेज़ तथा सईद बन्दर दोनों ही स्थानों में आपकी सेवा में उपस्थित होकर हमारी ओर से स्वागत करेंगे और शुभकामनायें प्रकट करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

(ह.) मुस्तफा नहास पाशा,
वफ़्द दल का प्रधान।

श्रीमती ज़गलुलपाशा का हृदयस्पर्शी सन्देश और 'अल बलग़' की ार्दिक बधाई पहले दी जा चुकी है। श्री नहास पाशा का यह बेतार के तार का सन्देश इन दोनों से आगे बढ़ गया है।

३

नहर में प्रवेश करने के कुछ घंटों बाद जहाज़ अनेक प्रकाश-स्तम्भों के पास से गुजरता है, जिनसे मालूम होता है कि पुराने ज़माने में इस रास्ते से जहाज़रानी कितनी कठिन रही होगी; क्योंकि नहर का दक्षिणी हिस्सा चट्टानों और टीलों से भरा पड़ा है। आगे बढ़कर आपको सनाई की पर्वत-श्रेणी दिखाई देगी। कुछ मील दूरी से रेगिस्तानी ज़रखेज़ सोतों के खजूर के वृक्ष दिखाई देंगे। ये सोते मूसा के कुंए कहलाते हैं, जहां कि मूसा और

इज़राइल के अनुयाइयों ने लाल समुद्र पारकर फेराओं की सेना से अपने छुटकारे का उत्सव मनाया था। स्वेज़-नहर के पूर्वी किनारे का प्रत्येक खण्ड और पहाड़ी में हमारे देश के पवित्र पर्वतों और पहाड़ियों की तरह भूत-कालीन कथाओं का ख़ज़ाना छिपा हुआ है। इसके विपरीत लाल सागर के पूर्वीय किनारे की पहाड़ियां सर्द और वेडौल हैं और किसी तरह सुविधा-जनक नहीं है और इसलिए आश्चर्य होता है कि किस प्रकार इन प्रदेशों से संसार के तीन सुप्रसिद्ध—यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म पैदा हुए। जब हम इन तीनों धर्मों के एक ही उद्गम-स्थान का खयाल करते हैं और एक क़दम आगे बढ़कर यह सोचते हैं कि संसार के सब बड़े धर्म एशिया की पवित्र-भूमि से पैदा हुए हैं, तब यह देखकर हम अपनेको लज्जित और अपमानित अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि किस प्रकार इन धर्मों के क्षुद्र अनुयायी, इन धर्मों के महान् उत्पादकों और उन्हें प्रकाश देनेवाले ईश्वर को यहां तक भुला सकते हैं कि उन्हें इनमें सबको आपस में एक सूत्र में बांधने की कोई बात दिखाई नहीं देती, हरेक बात में उन्हें एक-दूसरे से, और इस तरह अवश्य ही ईश्वर से भी अलग रहने की सूझती है।

जबतक वास्कोडीगामा ने केप आफ़ गुडहोप का पता लगाकर अधिक सुरक्षित और सस्ता राजमार्ग नहीं खोला, तबतक सारे मध्ययुग में लाल-सागर ही बड़ा व्यापारिक मार्ग था। किन्तु स्वेज़-नहर के जारी होने से लाल सागर का, संसार के एक सबसे बड़े राजमार्ग होने का पद कायम रह गया है।

स्वेज-नहर

स्वेज़-नहर फ्रान्स के एक महान् इंजीनियर फर्डिनेण्ड डि लेसेप्स की कृति है। भूमध्य-सागर के प्रवेश-मार्ग के जल-बांध पर खड़ी हुई समुद्री हरे रंग की उनकी भव्य प्रस्तर मूर्ति प्रत्येक यात्री की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। स्वेज़-नहर के बनने में दस वर्ष से अधिक लगे और स्वेज़-नहर-कम्पनी को इसके लिए २,९७,२५०० पौंड से अधिक खर्च पड़ा, जिसका आधा फ्रांस ने दिया और आधा मिस्र के खदीव ने। किन्तु सन् १८६९ में नहर के जारी होते ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की महत्वाकांक्षा की जीभ लपलपाने लगी। भारत के साथ

समुद्री सम्बन्ध रखने के लिए इसकी महती आवश्यकता अनुभव हुई। निश्चय ही भारत पर अधिकार जमाये रखने के लिए स्वेज़ पर अंग्रेजी कब्ज़ा रहना लाज़मी था; लेकिन यह कब्ज़ा किस तरह प्राप्त किया जाय, फरांसीसी इंजीनियर के परिश्रम के फल का ब्रिटेन किस तरह उपयोग करे ? खदीव के हिस्से ने रास्ता साफ़ कर दिया। उन दिनों प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादियों ने उत्तरी अफ्रीका में अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सफलतापूर्वक यह युक्ति चला रखी थी कि वहां के देशी राजाओं को विदेशियों से खुलकर कर्ज़ लेने और इस प्रकार अपने आपको भारी कर्ज़दार बना लेने के लिए वे फुसलाते रहे। फ्रांस ने ट्यूनिस पर इसी तरह कब्ज़ा किया। मिस्र के खदीव को भी इसी तरह लगभग १० करोड़ पौंड मुख्यतः इंग्लैंड और फ्रांस से कर्ज़ लेने के लिए फुसलाया गया, और इस कारण उसकी साख इतनी गिर गई कि स्वेज़-नहर-कम्पनी के अपने सब हिस्से बेचने के सिवा उसके पास कोई चारा न रहा। सन् १८७४ में इंग्लैंड में साम्राज्यविरोधी नीति का अन्त हुआ और डिसराइली ने खदीव के सब (१,७६,६०२) शेयर्स ३६,८०,००० पौंड में ग्रेट ब्रिटेन के लिए खरीद लिये। इस परिवर्त्तन के सम्बन्ध में इतना लिखना काफी है। इस्माइल पाशा पर इस प्रकार ज़बरदस्ती लादे गये दिवालियेपन का कारण क्या था, यह बताने के लिए हमें मिस्र पर कब्ज़ा करने के गुप्त इतिहास में जाना पड़ेगा, जिसकी इस समय ज़रूरत नहीं है। यह कहना काफ़ी होगा कि १९२७ में इन हिस्सों की कीमत उनकी असली कीमत से नौगुनी थी और इस नहर के रास्ते होने वाली जहाजरानी में लगभग ६० प्रतिशत जहाज़ अंग्रेज़ों के चलते हैं।

पिछले पत्र में श्रीमती ज़गलुल पाशा और वफ़्द के अध्यक्ष श्री मुस्तफ़ा नहास पाशा के हार्दिक बधाई के सन्देशों का उल्लेख कर चुका हूं। जहाज़ पर कई मिस्री अखबारों के प्रतिनिधि गांधीजी से मिले और स्वेज़

स्वाधीन मिस्र

तथा पोर्ट सईद दोनों जगह नहास पाशा के प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की। क़ाहिरा के भारतीय प्रतिनिधियों का, जिनमें अधिकांश सिन्धी थे, एक डेपुटेशन स्वेज़ और पोर्ट सईद दोनों

जगह गांधीजी से मिला, उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र दिया और वापसी पर क़ाहिरा ठहरने का आग्रह किया । पोर्ट सईद पर मुझे यह बात निश्चित रूप से मालूम हुई कि यद्यपि इस भारतीय डेपुटेशन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया; किन्तु अधिकारी मिस्रवासियों के डेपुटेशन को इजाज़त देने के ख़िलाफ़ थे, और यह बड़ी मुश्किल से सम्भव हुआ कि नहास पाशा के एकमात्र प्रतिनिधि को गांधीजी से मिलने की आज्ञा मिल सकी।

इस सम्बन्ध में यहां मिस्र की वर्तमान स्थिति पर संक्षेप में कुछ कहना असंगत न होगा। मैं उनकी स्थिति के अध्ययन का दावा नहीं करता; किन्तु अबतक अनेक मिस्रवासियों से बातचीत का मुझे लाभ मिल चुका है, और इससे वे जिस स्थिति में से गुज़र रहे हैं उसका काफ़ी अन्दाज़ लग गया है। निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासकों के तरीक़े सब जगह एक-से ही होते हैं, यहां तक कि यदि आपको कुछ ऊपरी बातें बताई जायं तो असली हालत का आप आसानी से अन्दाजा लगा सकते हैं। मेरा ख़याल है, कोई भी इस भ्रम में नहीं है कि मिस्र स्वतन्त्रता का आभास-मात्र उपभोग कर रहा है। किन्तु मैं यह सुनने को तैयार न था।

मिस्री राजा और मिस्री प्रधान-मन्त्री होने पर भी मिस्र भारत से अधिक स्वतन्त्र नहीं है। जगलुल पाशा ने 'वफ्दमिस्री'—मिस्र के प्रतिनिधियों की संस्था—नामक संस्था स्थापित की थी, जिसके अध्यक्ष इस समय नहास पाशा हैं, जो जगलुल पाशा के प्राइवेट सेक्रेटरी और कुछ समय के लिए प्रधान मन्त्री थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार वफ्द की महत्त्वाकांक्षाओं को सहन न कर सकी और उसने शाह फ़ौद और सिदक़ीपाशा को तुरन्त अपना हथियार बना लिया। ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के साथ बातचीत में नहास पाशा असफल हो गए और शाहफ़ौद ने पार्लमेण्ट को स्थगित कर दिया और सिदक़ी पाशा को वास्तविक डिक्टेटर बना दिया। नतीजा यह हुआ कि गत वर्ष के चुनाव का पूर्ण बहिष्कार हुआ और सर्वत्र आम हड़ताल हो गई, जिसे दबाने के लिए ऐसा भयंकर दमन हुआ कि मिस्रवाले उसे तीन 'क़त्लेआम' के नाम से पुकारते थे। मैं तत्सम्बन्धी विवरण के सत्यासत्य की जांच न

/35/

कर सका; लेकिन मुझे वताया गया कि जव रेल-कारखाने के मज़दूरों ने हड़ताल कर वफ़्द का जयघोष किया तो फ़ौज ने उनपर गोलियां चलाईं। मैंने पूछा—"क्या मज़दूर सर्वथा अहिंसक थे ?" उत्तर मिला—"उनके पास हथियार न थे, किन्तु उन्होंने फ़ौजवालों की तरफ़ लोहे के टुकड़े फेंके थे। फ़ौजवालों ने ७० मज़दूरों को जान से मार डाला और क़रीव एक हज़ार को घायल कर दिया था। ये घायल जवतक अस्पताल में रहे, इनपर फ़ौज का सख्त पहरा रहा और वहां से छुट्टी मिलते ही इनपर सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने के अपराध में मुकदमा चलाया गया। मौजूदा कौंसिल में सर्वथा सरकारी पिट्ठू भरे हुए हैं और शासन सिदक़ी पाशा के हाथ में है ?" मैंने पूछा—"अखवारों की क्या हालत है ?" और उत्तर में वैसी ही हालत मालूम हुई, वल्कि उससे भी अधिक गिरी हुई, जैसी कि हमारे यहां भारत में है। "हमारे प्रेसों पर पुलिस तैनात रहती है, पहली प्रूफ़-कापी उसे वतानी पड़ती है, और यदि वह उसमें कुछ आपत्तिजनक वात समझती है तो उस अंक को रोक देती है !" फिर पूछा—"विद्यार्थियों और साधारण जनता की क्या हालत है ?" जवाव मिला—"विद्यार्थी सव हमारे साथ हैं। श्रीमती ज़गलुल-पाशा—जो 'मिस्र की माता' कही जाती है—के नेतृत्व में स्त्रियां भी सजग हैं और माडरेट या लिवरल पार्टी, जो पहले वफ़्द का विरोध किया करती थी, अव उसका समर्थन कर रही है। उसके प्रेसीडेन्ट श्री मुहम्मद महमूद को एक उपद्रव के समय पीटा गया था, तवसे वह वफ़्द के कट्टर समर्थक हो गए हैं।" अवश्य ही वधाई के तारों में एक तार उक्त श्री मुहम्मद महमूद और एक स्त्रियों की सआद कमेटी की अध्यक्षा श्रीमती शेरिफ़ा रियाज़-पाशा का भी था। अख़वारों पर कड़ी निगरानी होने पर भी मैं कह सकता हूं कि कम-से-कम वारह मिस्री अखवारों ने, जिनमें तीन का तो दैनिक-प्रचार लगभग ४० से ५० हज़ार तक है, गांधीजी के सम्वन्ध में विशेष लेख लिखे, दो ने विशेषांक निकाले और सवने नहास पाशा, श्रीमती ज़गलुल पाशा तथा मुहम्मद महमूद पाशा आदि के सन्देश छापे।

कोई आश्चर्य नहीं, यदि मिस्र हमारी ही तरह अंग्रेज़ी जुए से उकता

गया हो और चाहता हो कि गांधीजी वापसी के समय मिस्र अवश्य आवें। प्रत्येक ने गांधीजी अथवा भारत से, उसके 'छोटे भाई मिस्र' के लिए सन्देश मांगा, और गांधीजी ने अपने प्रत्येक सन्देश में उस महान् देश के लिए सर्वोत्तम शुभकामनायें प्रकट कीं, जिनकी मुख्य वात यह थी कि "यह कितना अच्छा होगा, यदि मिस्र अहिंसा के सन्देश को अपनावे ?" स्वेज़ में एक अंग्रेज़ी पत्रकार के पूछने पर उन्होंने कहा--"मैं पूर्व और पश्चिम के संघ का हृदय से स्वागत करूंगा, बशर्ते कि उसका आधार पाशविक शक्ति पर न हो।"

प्रेम का कानून

इन दिनों की प्रार्थना के वाद की सव वातचीत अहिंसा के सम्वन्ध में होती थी। स्वेज़ से जहाज़ पर सवार हुए कुछ मिस्र के मित्र भी एक दिन इस वातचीत में भाग ले सके थे।

एक शाम को गांधीजी ने कहा--"जान में या अनजान में हम अपने दैनिक-जीवन में एक-दूसरे के प्रति अहिंसक रहते हैं। सव सुसंगठित समाजों की रचना अहिंसा के आधार पर हुई है। मैंने देखा है कि जीवन विनाश के वीच रहता है, और इसलिए नाश से वढ़कर कोई एक नियम होना चाहिए। केवल उसी नियम के अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित समाज समझा जा सकता है, और उसीमें जीवन का आनन्द है। और यदि जीवन का यही नियम है, तो हमें अपने दैनिक जीवन में उसे वरतना चाहिए। जहां कहीं विसंगतता हो, जहां कहीं आपका विरोधी से मुक़ावला हो, उसे प्रेम से जीतिए। इस तरह मैंने अपने जीवन में इसे व्यवहृत किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरी सव कठिनाइयां हल हो गई। मुझे जो कुछ भी मालूम हुआ वह यही है कि इस प्रेम के कानून से जितनी सफलता मिली है, विनाश से उतनी कदापि नहीं मिली। भारत में हम इस नियम के प्रयोग का वड़े-से-वड़े प्रमाण में प्रदर्शन कर चुके हैं। मैं, इसलिए यह दावा नहीं करता कि अहिंसा तीस करोड़ भारतवासियों के हृदयों में अवश्य ही घर कर गई है; किन्तु मैं इतना दावा अवश्य करता हूं कि अन्य किसी भी सन्देश की अपेक्षा,

इतने थोड़े से समय में, यह कहीं अधिक गहराई से प्रवेश कर गई है। हम सब समान रूप से अहिंसक नहीं रहे और अधिकांश के लिए अहिंसा नीति के तौर पर रही है। इतने पर भी मैं चाहता हूं कि आप देखें कि क्या अहिंसा की संरक्षक शक्ति के अन्तर्गत देश ने असाधारण प्रगति नहीं की है।"

एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"मानसिक अहिंसा की स्थिति तक पहुंचने के लिए काफ़ी कठिन प्रयत्न की आवश्यकता रहती है। एक सिपाही के जीवन की तरह, हम चाहें या न चाहें, हमारे जीवन में उसका अनुशासन की तरह पालन होना चाहिए। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूं कि जबतक उसके साथ दिमाग़ या मस्तिष्क का हार्दिक सहयोग न होगा, उसका केवल ऊपरी आवरण ढोंग होगा, और स्वयं उस व्यक्ति और दूसरों के लिए हानिकारक होगा। पूर्णावस्था उसी दशा में प्राप्त होती है, जबकि मस्तिष्क, शरीर और वाणी इन तीनों का समुचित एवं समान रूप से मेल हो। किन्तु यह एक गहरे मानसिक संघर्ष का विषय है। उदाहरण के लिए यह बात नहीं है कि मुझे क्रोध न आता हो; लेकिन मैं करीब-करीब सब अवसरों पर अपने भावों को अपने वश में रखने में सफल हो जाता हूं। नतीजा कुछ भी हो, मेरे हृदय में अहिंसा के नियम का मन से और निरन्तर पालन करने के लिए सदैव सजग संघर्ष होता रहता है। ऐसा संघर्ष मुझे उसके लिए काफ़ी शक्तिशाली बना देता है। अहिंसा शक्तिशाली अथवा ताक़तवर का अस्त्र है। कमज़ोर आदमी के लिए वह आसानी से ढोंग बन जा सकता है। भय और प्रेम परस्पर-विरोधी बातें हैं। प्रेम इस बात की परवाह नहीं करता कि बदले में उसे क्या मिलता है। प्रेम अपने और संसार के साथ युद्ध करता है और अन्त में अन्य सब भावों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। मेरा और मेरे साथियों का यह दैनिक अनुभव है कि यदि हम सत्य और अहिंसा के नियम को अपने जीवन का नियम बनाने का निश्चय करलें तो हमारी प्रत्येक समस्या का हल अपने आप हो जायगा। मेरे लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के की दो बाज़ू हैं।

"जिस तरह कि गुरुत्वाकर्पण का नियम, हम चाहे मानें या न मानें

अपना काम करता रहेगा, उसी प्रकार प्रेम का कानून अपना काम करेगा। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें पैदा करता है उसी तरह यदि कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थता के साथ प्रयोग करे तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें पैदा कर सकेगा। क्योंकि अहिंसा की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों--उदाहरणार्थ बिजली आदि से--कहीं अधिक अनन्त, आश्चर्यजनक और सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति ने हमारे लिए प्रेम के नियम अथवा कानून की खोज की, वह आजकल के किसी भी वैज्ञानिक से कहीं अधिक बड़ा वैज्ञानिक था। केवल हमारी शोध अभी तक जितनी चाहिए उतनी नहीं हुई है और इसलिए प्रत्येक के लिए उसके परिणाम देख सकना सम्भव नहीं है। कुछ भी हो, यह उसकी एक विशेषता है, जिसके अन्तर्गत मैं प्रयत्न कर रहा हूं। प्रेम के इस कानून के लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न करता हूं, उतना ही अधिक मुझे जीवन में आनन्द--इस सृष्टि की योजना में आनन्द अनुभव होता है। इससे मुझे शान्ति मिलती है और प्रकृति के रहस्यों का अर्थ जान पाता हूं, जिनका वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है।"

सईद द्वीप से आगे बढ़ने पर जो प्रथम भूमिखण्ड नज़र आता है वह क्रीट-द्वीप का दक्षिणी पहाड़ी किनारा है। यही प्राचीनकाल में फ़िनीशियन सभ्यता का केन्द्र था। यह द्वीप अत्यन्त उपजाऊ है और यहां की आबोहवा बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। इटली के किनारे पहुंचने तक समुद्र कुछ अशान्त-सा बना रहा। हरे समुद्र पर से स्वेज़ नगर का दृश्य बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है और नहर के पश्चिमी किनारे फरांसीसी अफ़सरों के घरों की कतार रात में बड़ी ही सुहावनी मालूम पड़ती है; परन्तु मेसीना की खाड़ी की नैसर्गिक सुन्दरता का दृश्य-पटल इससे भी कहीं बढ़कर है। आगे बढ़ने पर समुद्र का रंग गहरा नीला हो जाने के कारण ऐसा मालूम होता था, मानो जहाज किसी शीत झील के ऊपर गम्भीर वेग से चल रहा हो। हमारे दक्षिण पार्श्व में प्रायः एक कोस के फ़ासले पर इटली की सुन्दर पर्वतमाला दिखलाई पड़ती है, जो अबतक

क्रीट का द्वीप

के देखे हुए पहाड़ों की तरह सूखी और ठंडी नहीं है बल्कि साइप्रस और ज़ैतून के वृक्षों से हरी-भरी है, जिनके वीच में थोड़े-थोड़े फ़ासले पर सुन्दर वस्तियां वसी हुई हैं। इस सुन्दर दृश्य में यूरोप की जो पहली वस्ती स्पष्टतया नज़र आती है वह रेजियो का प्राचीन नगर है। इसके ठीक सामने के किनारे पर मेसीना है, जो कदाचित् इससे भी अधिक सुन्दर है। जहाज़ के इस खाड़ी से वाहर निकलने पर यही भावना रहती है कि इन सुन्दर दृश्यों के वीच अधिक ठहरते तो अच्छा होता। अव आगे वढ़ने पर समुद्र और भी अधिक गम्भीर और कांच के समान साफ़ हो जाता है, यहां तक कि पूर्णवेग से वढ़ते हुए सामने के जहाज़ की परछांही समुद्र में प्रतिविम्वित होकर चित्र के समान सुन्दर प्रतीत होती है।

जव गांधीजी ने यह कहा कि अनन्त प्रलय के मध्य में भी जीवन विद्यमान रहता है, तो, मैं नहीं कह सकता कि उनको यह ज्ञात था कि नहीं, कि उनकी इस उक्ति की विपर्ययवाचक एक कहावत भी है कि 'जीवन के मध्य भी में हम मृत्यु के मुख में हैं।' इसी कहावत को चरितार्थ करने के लिए ही मानो हमारे सामने स्ट्रोम्वोली द्वीप समुद्र के वीच में स्थित एक मेस्टो-डोन (प्रारम्भिक काल में पृथ्वी पर पाया जाने वाला हस्तीवर्ग का एक भीमकाय जन्तु) के समान खड़ा था। यह ज्वलन्त ज्वाला-मुखी है। हमने तो इसे गहरे वादलों की ओट में ढका पाया। परन्तु कहा जाता है कि जव वादलों का आवरण उसपर नहीं होता है तो उसमें से पिघले हुए पत्थर और आग की लपटें निकलती रहती हैं। यह जानते हुए भी कि किसी दिन यह ज्वालामुखी अपना भयानक रूप दिखला कर उनको लावा से ढक देगा और नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, इसकी तराई में अनेक छोटी-छोटी और सुन्दर वस्तियां वसी हुई हैं। लावा के योग से उपजाऊ वनी हुई भूमि में वहां घनी खेती की जाती है, अतः जहां यह नाश का कारण है वहां उत्पत्ति में भी सहायक होता है। इसलिए यह विलकुल ठीक है कि अनन्त प्रलय के मध्य में भी जीवन विद्यमान है।

इसी प्रकार निराशा के आवरण में आशा विद्यमान रहती है और

इसी विचार के सहारे हम आशा करते हैं कि कल मार्सेल्स और परसों लंदन पहुंच जायेंगे। आगे बढ़ने पर, आज तीसरे पहर, वोनीफ़ेशियो के मुहाने से निकलते हुए, फिर चित्ताकर्षक सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। यह मुहाना नेपोलियन की जन्मभूमि कोर्सिका को सारडीनिया से विभाजित करता है।

लन्दन की चिट्ठी

१

हमारे जहाज़ के मार्सेल्स पहुंचने पर गांधीजी का यूरोप की भूमि में सबसे पहले स्वागत करनेवालों में कुमारी मेडलीन रोलां का नाम उल्लेखनीय है, जो कि फ्रांस के उस महापुरुष की बहन हैं, जो अपने सत्य और अहिंसा के प्रेम के कारण स्वेच्छा से निर्वासन भोग रहे हैं। श्री रोलां ने गांधीजी के स्वागत के लिए स्वयं आने का जी-तोड़ प्रयत्न किया; किन्तु अपनी अस्वस्थता के कारण वह इसमें सफल न हुए और अपनी बहन के साथ प्रेमपूर्ण स्वागत का हार्दिक संदेश भेजकर ही सन्तोष कर लिया। कुमारी रोलां के साथ श्री प्रिवे और उसकी धर्मपत्नी भी थीं। ये दोनों स्वीज़रलैंड-निवासी हैं और श्री रोलां के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा सत्य और अहिंसा के प्रचार में इन्होंने भी ज़बरदस्त प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय कार्यों में अहिंसा का प्रयोग एक नया आविष्कार है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपने नवीन आविष्कारों के संचालक-नियमों का संसार को दिग्दर्शन कराता है, उसी प्रकार श्री प्रिवे ने इस प्रेम के सिद्धान्त के नूतन प्रयोग का दिग्दर्शन कराया है। उन्होंने गांधीजी को अपनी नवीन पुस्तक *Le choc De Patriotismes* (देश-भक्ति का संघर्ष) दिखाई। इसमें उन्होंने इस क्षेत्र के अपने अनुभव और कई नये प्रयोग करनेवालों का परिचय दिया है। उक्त प्रयोग करने वालों में एक स्वीज़रलैंड के महान् शान्ति के उपासक श्री सियरसोल का नाम उल्लेखनीय है, जो युद्ध और अन्य आपदाओं से ग्रस्त क्षेत्रों में सहायता पहुंचाकर सैनिकवाद का अन्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस समय वेल्स की खानों में काम करनेवाले पीड़ित मज़दूरों के कष्ट-निवारण में लगे हुए हैं। श्री प्रिवे ने मुझसे कहा कि श्री सियरसोल इतने लज्जाशील हैं कि उनसे

मार्सेल्स में

यह आशा नहीं की जा सकती कि वह निःसंकोच होकर स्वयं गांधीजी से मिलने आवें, इसलिए आप उन्हें तलाश करके गांधीजी से अवश्य मिला दीजिए ।

यदि मित्रों में सबसे पहले स्वागत करनेवाले श्री कुमारी रोलां और श्री प्रिवे थे, तो अपरिचितों में सबसे पहले स्वागत करने वाले विद्यार्थी थे।

विद्यार्थियों को

ये विद्यार्थी मार्सेल्स के वर्तमान और पुराने विद्यार्थियों की प्रधान समिति के सदस्य थे, जिन्होंने "भारतवर्ष के आध्यात्मिक दूत" के सम्मानार्थ धूमधाम से स्वागत का प्रबन्ध किया था। उन्होंने उनका यूरोप के युद्ध-क्लांत और लूट में अन्धे हुए राष्ट्रों को शान्ति-सुधारस-पान करानेवाले देवदूत की तरह स्वागत किया और गांधीजी ने उनको मित्र और सहपाठी आदि शब्दों से सम्बोधित कर उचित शब्दों में उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि "सन् १८९० में जब मैं विद्यार्थी था और फ्रांस में प्रदर्शनी देखने आया था, उस समय से आपके और मेरे बीच कुछ घनिष्ठ तथा स्थायी सम्बन्ध स्थापित हो गये हैं। उन सम्बन्धों के स्थापित करने का श्रेय आपके सुप्रसिद्ध देशबन्धु रोम्या रोलां को है, जिन्होंने अपने ऊपर मेरे इस विनम्र सन्देश को समझाने का भार ले लिया है, जो मैं लगभग ३० वर्ष से अपने देशवासियों को समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं। मैंने आपके देश की परम्पराओं और रूसो तथा विक्टर ह्यूगो के उपदेशों का कुछ अध्ययन किया है, और अपने लन्दन के कठिन मिशन पर कदम रखने से पूर्व आपके इस प्रेम-पूर्ण स्वागत से मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला है।"

उन्होंने उस युद्ध-प्रिय जाति के नवयुवकों के सामने अहिंसा के सन्देश का स्पष्टीकरण किया, और जब उन्हें समझाया कि "अहिंसा निर्बल का नहीं, वरन् अत्यन्त शक्तिशाली का अस्त्र है; शक्ति का अर्थ केवल शारीरिक बल नहीं है; एक अहिंसक में शारीरिक बल का होना आवश्यक नहीं है, परन्तु बलवान हृदय का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है;" तो उन्होंने इसपर बड़े उत्साह से हर्षध्वनि की। गांधीजी ने उदाहरण देते हुए बतलाया कि किस प्रकार "एक बलिष्ठ जुलू एक पिस्तौल लिये हुए

अंग्रेज वालक के सामने कांपने लगता है; परन्तु इसके विपरीत भारतवर्ष की ललनाओं ने लाठी-प्रहार और लाठियों की वर्षा को कितनी दृढ़ता के साथ सहा। शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मर जाना या मार डालना तो वहादुरी है ही, किन्तु अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रहारों को सहन करना और वदले में अंगुली तक न उठाना उससे कहीं ऊँचे दर्जे की वहादुरी है। यही चीज़ है, जिसके लिए भारत अपने आपको तैयार कर रहा है।" अन्त में इसी प्रश्न के एक दूसरे पहलू पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—"अहिंसा की यह लड़ाई दूसरे शब्दों में आत्म-शुद्धि की एक क्रिया कही जा सकती है—जिसका तात्पर्य यह है कि कोई राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता अपनी ही कमज़ोरी के कारण खोता है, और ज्यों ही हम अपनी कमज़ोरी को दूर फेंक दें, त्यों ही अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर लेंगे। पृथ्वी पर कोई जाति स्वयं अपने ऐच्छिक या अनैच्छिक सहयोग के विना सर्वथा गुलाम नहीं वनाई जा सकती। अनैच्छिक सहयोग यह है, जिसमें आप किसी शारीरिक आघात के भय से किसी अत्याचारी और निरंकुश शासक की आधीनता स्वीकार करते हैं। आंदोलन के आरंभ में मैं इस अनुभव पर पहुंचा हूं कि इस प्रकार के आंदोलन की नींव चरित्रवल है। हमें यह भी अनुभव हुआ है कि दिमाग़ में वहुत-सी वातें भर लेने या विविध पुस्तकें पढ़कर परीक्षाएं पास कर लेने में सच्ची शिक्षा नहीं है, प्रत्युत चरित्र-संगठन सच्ची शिक्षा है। मुझे पता नहीं कि आप लोग—फ्रांस के विद्यार्थीगण—वौद्धिक अध्ययन की अपेक्षा चरित्र-निर्माण को कितना महत्व देते हैं! परन्तु मैं इतना कह सकता हूं कि यदि आप अहिंसा की सम्भावित शक्तियों की खोज करें तो आपको मालूम होगा कि विना चरित्र के आपका अध्ययन निरर्थक सिद्ध होगा। मैं आशा करता हूं कि हमारा यह पारस्परिक परिचय इसी सम्मेलन के साथ समाप्त न हो जायगा, प्रत्युत मुझे पूर्ण आशा है कि यह पारस्परिक परिचय आपके और मेरे देशवासियों के वीच सजीव सम्वन्ध स्थापित करने का कारण होगा। जैसा आंदोलन इस समय हम भारतवर्ष में चला रहे हैं, उसकी सफलता के लिए हमें सारे संसार की वौद्धिक सहानुभूति की आवश्यकता

है, और यदि इस आंदोलन और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए काम में लाये गये हमारे तरीकों का विचारपूर्वक अध्ययन करने के बाद आप यह अनुभव करें कि हम आपकी इस सहानुभूति और सहायता के पात्र हैं, तो मैं आशा करता हूं कि आप वह सहानुभूति हमें दिये बिना न रहेंगे।"

अखबारनवीस

बहुत-सी बातों में एक विचित्र प्रकार की समता होती है, फिर चाहे वे कहीं भी क्यों न हों। इसका एक उदाहरण है, खुफ़िया पुलिस, दूसरा औद्योगिक नगर, और तीसरा प्रचार कार्य करने वाले अखबारनवीस। मैं समझता था कि हिन्दुस्तान से रवाना होते ही उस निकृष्ट प्रचार से हमारा पीछा छूट जायगा, जो स्वभावतः ही अधगोरे अखबारों में देखा जाता है। परन्तु यह आशंका व्यर्थ थी। इंग्लैण्ड के कट्टर अनुदार अखबार दुनिया के किसी भी अखबार को इस विषय में मात कर सकते हैं। हमारे देश के अनुदार पत्र तो इस देश के इस कट्टर दल के अधूरे अनुगामी मात्र हैं। और इसका एक जीवित उदाहरण हमें 'डेली मेल' के प्रतिनिधि में मिला, जिसने 'राजपूताना' जहाज़ पर गांधीजी से मुलाक़ात की। वह विद्यार्थियों के स्वागत के अवसर पर उपस्थित था। और उसने अपने अखबार को ऐसे तार भेजे, जिनमें उसने गांधीजी की बातों को बड़ी शरारत के साथ तोड़ा-मरोड़ा था, और जो कहीं-कहीं तो सरासर झूठे थे। हमें मार्सेल्स से बोलोन ले जाने वाली स्पेशल ट्रेन में गांधीजी ने इस मित्र को खूब आड़े हाथों लिया। बहुत-सी बातों का तो उसके पास कुछ जवाब ही न था। उसकी रिपोर्ट के अनुसार गांधीजी का स्वागत विद्रोही भारतीय विद्यार्थियों द्वारा हुआ था, जब कि वास्तव में उसका पूरा प्रबन्ध मार्सेल्स के ही विद्यार्थियों ने किया था। गांधीजी के भाषण में से कोई संगत उद्धरण दिये बिना ही उसने लिखा था कि गांधीजी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ घृणा का प्रचार किया। उससे कहा गया कि वह अपने कथन की पुष्टि में कोई एक भी फ़िकरा या वाक्य बतलावे। अपने बचाव में वह बराबर यही लचर दलील देता रहा, "मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि आप अपने भाषण में राजनीति ले आये।" गांधीजी ने उससे कहा,

"तुमको यह समझ रखना चाहिए कि मैं अपने जीवन की गहनतम बातों से राजनीति को केवल इस कारण पृथक् नहीं कर सकता कि मेरी राजनीति गन्दी नहीं है, वह अहिंसा और सत्य के साथ अविच्छिन्नरूप से बंधी हुई है। जैसा कि मैंने कई बार कहा है, मैं इस बात को पसन्द करूंगा कि भारतवर्ष नष्ट हो जाय, बजाय इसके कि वह सत्य का त्याग करके स्वतंत्रता प्राप्त करे।" और भी बहुत-से भद्दे आक्षेप उसने किये थे, जिनका वह कोई प्रमाण न दे सका। बेचारे को यह नहीं मालूम था कि उससे इस प्रकार जवाब-तलब किया जायगा। गांधीजी ने चुटकी लेते हुए कहा,—"मिस्टर . . ., आप सत्य के दायरे के बाहर-ही-बाहर चक्कर लगा रहे हैं।" गांधीजी जब सभा-स्थल पर जा रहे थे, तब हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि मार्सेल्स की गलियों तक में दोनों ओर भीड़ लगी थी, परन्तु 'डेली मेल' वाले हमारे मित्र ने लिखा था, "ऐसा हलका स्वागत देखकर गांधीजी को बड़ी निराशा हुई।" गांधीजी ने उससे पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं निराश हुआ, और एक अंग्रेज़ कर्नल ने जो मुझे एक स्त्री की जाकट दी उससे मैं चिढ़ा, जब कि मैंने कहा था कि इससे मेरा मनोरंजन हुआ?" इसका वह कोई उत्तर न दे सका, और कहने लगा कि मैंने तो आपके उस मनोरंजन का अर्थ चिढ़ना ही लगाया! इसपर गांधीजी ने कहा—"अच्छा, अब मैं तुम्हें बतलाए देता हूं कि मुझमें भी परिहास की प्रवृत्ति है, जो मुझे ऐसी बातों से चिढ़ने से बचाती है। यदि मुझमें इसका अभाव होता, तो मैं अबतक कभी का पागल हो गया होता। उदाहरण के लिए तुम्हारा यह लेख ही मुझे पागल बना देने के लिए काफ़ी होता। मैं यह कह देना उचित समझता हूं कि तुमने इस लेख में ऐसी बातों की भरमार की है, जो सत्य से बहुत दूर हैं और जिनके कारण मुझे तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। परन्तु मैं ऐसा नहीं करता, और जितनी बार तुम चाहोगे मैं तुम्हें मुलाक़ात देता रहूंगा।" इस फटकार से वह दबा जा रहा था; लेकिन उसमें पश्चात्ताप का कोई भाव नहीं था।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पत्रकार-जगत् में सत्य की प्रतिष्ठा नहीं

है और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रकार तोड़-मरोड़ की इच्छा न रखते हुए भी सत्य को 'वेलवूटे' अथवा नमक-मिर्च लगाकर सजाना पसन्द करते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिकन एसोसियेटेड प्रेस के सम्वाददाता श्री मिल्स, जो वहुत दिनों से हमारे साथ हैं और गांधीजी की प्रवृत्तियों से परिचित हैं, गांधीजी के जहाज़ी जीवन की घटनाओं पर नमक-मिर्च लगाये विना न रह सके। उन्होंने प्रार्थना के दृश्य, चर्खे के आकर्पण तथा और भी वातों का वर्णन किया, किन्तु उन्हें यह जान पड़ा कि गांधीजी के साथ प्रतिदिन दूध पीने वाली एक विल्ली का ज़िक्र किये विना सव वर्णन फीका रह जायगा! इसी प्रकार श्री स्लोकोम्व ने भी, जिन्होंने गांधीजी से अपनी यरवदा-जेल की मुलाक़ात का रोमांचकारी वर्णन प्रकाशित कर नाम पैदा कर लिया था, 'इवनिंग स्टेण्डर्ड' में गांधीजी की उदारता की प्रशंसा करते हुए यह अनुभव किया कि विना किसी स्पप्ट उदाहरण के विवरण अधूरा रहेगा। और इसलिए उन्होंने अपनी कल्पना दौड़ाई और प्रिंस आफ़ वेल्स (युवराज) के भारतागमन के समय गांधीजी को उनके चरणों में लोटते हुए वता ही तो दिया! गांधीजी ने उनसे कहा,—"भाई स्लोकोम्व, मैं तो यह आशा करता था कि आप तो सही वातें अच्छी तरह जानते होंगे। किंतु जो विवरण लिखा वह तो आपकी कल्पना-शक्ति पर भी लाञ्छन लगाता है। मैं भारतवर्प के ग़रीव-से-ग़रीव भंगी और अछूत के सामने न केवल घुटने टेकना ही पसन्द करूंगा, वरन् उसकी चरणरज भी ले लूंगा, क्योंकि उन्हें सदियों से पद-दलित करने में मेरा भी भाग रहा है। परन्तु मैं प्रिंस आफ़ वेल्स तो दूर रहा, वादशाह तक के चरणों में न गिरूंगा—सिर्फ इसलिए कि वह एक महान् उद्दण्ड सत्ता का प्रतिनिधि है। एक हाथी ही भले मुझे कुचल दे, परन्तु उसके सामने सिर न झुकाऊंगा; किन्तु मैं अजान में चींटी पर पैर रख देने के कारण उसको प्रणाम कर लूंगा।" डी वेलेरा के अभी हाल ही में जारी किये हुए अखवार 'आयरिश प्रेस' को धन्य है कि उसने अपना 'मोटो' समाचारों में 'सचाई' रखा है और अपने पहले ही अंक में इस वात की घोपणा करदी है कि "हम कभी जानवूझकर इस पत्र को अपने मित्रों को पथ-भ्रप्ट करने

और अपने विरोधियों के विरुद्ध ग़लतफ़हमी फैलाने के काम में नहीं लावेंगे। इस मोटो पर आचरण करनेवाले समाचार-पत्र वास्तव में वहुत कम हैं।

परन्तु किसी देश के मनुष्यों को वहां के अखबारों से ही जांचना ठीक न होगा, यद्यपि जिस देश में अखबारों का प्रचार लाखों की संख्या में है वहां यह सहज ही विचार किया जा सकता है कि वे कितनी अपार हानि कर सकते हैं। 'फ्रैण्ड्स हाउस' का सार्वजनिक स्वागत

लन्दन में

वड़े सुचारु-रूप से संगठित किया गया था। उस सम्मेलन में,श्री लारेन्स हाउसमैन—जिनसे अच्छा सभापति मिलना कठिन था—के शब्दों में, "राष्ट्र के महान अतिथि" के स्वागत के लिए सार्वजनिक जीवन की प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि मौजूद थे। श्री हाउसमैन ने तुरन्त ही 'कृतज्ञतापूर्ण स्वागत' से वहुत गहरी जानेवाली चीज़ का आश्वासन दिलाया—अर्थात् भारतवर्ष के प्रति वढ़ता हुआ सद्भाव, ऐसा सद्भाव कि जिसपर परिषद् के नतीजे का कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता, तथा सदा अपरिवर्तनशील तथा कभी कम न होनेवाला है। जब उन्होंने गांधीजी को ऐसी वात का ज़रिया वतलाया जो साधारणतया समझी नहीं जाती है—अर्थात् राजनीति और धर्म का एकीकरण, तो उन्होंने विलकुल ठीक वात कह दी। श्री हाउसमैन ने कहा, "गिरजों में हम सव पापी हैं, परन्तु राजनीति में दूसरे सव पापी हैं। हमारे दैनिक जीवन का सच्चा वर्णन यही है, तथा गांधीजी हमारे यहां हम लोगों से यह अनुरोध करने आये हैं कि हम अपने हृदयों को टटोलें और इसकी घोषणा कर दें कि हमारा धर्म क्या है ?"

परन्तु खानगी स्वागतों में शायद और भी अधिक हार्दिकता थी। उदाहरणार्थ, हमारी मेज़वान मिस म्यूरियल लेस्टर के 'वो' के किंग्सली-हाल में अपने साथ गांधीजी को ठहरने पर ज़ोर देने से अधिक प्रेमपूर्ण वात और क्या हो सकती है ? किंग्सली

किंग्स्ली हाल

हाल का इतिहास प्रत्येक को जानना चाहिए। किस प्रकार एक आहत-हृदय के प्रश्नों के उत्तर में मिस लेस्टर ने वो-स्ट्रीट में—कोलाहलपूर्ण शराबखानों तथा कम्बख़्ती, कंगाली और पाप के आगार—गन्दे और हीन निवास-गृहों

के बीच में रहने का निश्चय किया, किस प्रकार उन्होंने भारत की यात्रा का प्रबन्ध किया और कवि रवीन्द्र तथा गांधीजी की मेहमानी स्वीकार की, किस प्रकार किंग्सली-हाल खोला गया और किस प्रकार उन्होंने अपने कुछ सहयोगियों के साथ उन भागों में आराम और ख़ुशी लाने के लिए वहां रहने की ठान ली, जहां "परिवार की सारी सम्पत्ति का नाश, नौकरी के लिए असफल प्रयत्न, आत्महत्याओं की चेष्टा और इनके परिणामस्वरूप अपमान तथा निराशा" के नाटक प्रतिदिन होते रहते हैं। यह एक अत्यन्त रोमांचकारी कथा है, जो मिस लेस्टर की 'My host the Hindu' (मेरे हिन्दू अतिथि) नामक पुस्तक में वर्णित है। यह उचित ही था कि भारतवर्ष की पीड़ित-जनता के प्रतिनिधि गांधीजी वहां आमन्त्रित किये जाते तथा वह उसको अपने हृदय के ठीक अनुकूल स्वर्ग के समान समझते। इस उपनिवेश के सदस्य सफ़ाई, भोजन बनाना, धुलाई इत्यादि सब काम अपने हाथ से करते हैं और जो कोई उनकी मेहमानी स्वीकार करे, उससे भी दैनिक भोजन-कार्य में सहायता देने की आशा की जाती है। मुझे जेन एडम्स से मिलने अथवा 'हाल हाउस' के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है; परन्तु उन दोनों के सम्बन्ध में मैंने काफ़ी पढ़ा है और शायद मिस लेस्टर का भी यही प्रयत्न है कि लंदन में भी 'हाल हाउस' से कुछ कम न रहे। उनकी आकांक्षा है कि किंग्सली-हाल "परमात्मा की उस भावना से ओतप्रोत तथा व्याप्त रहे, जो मनुष्यों की सेवा, आत्मानुशासन तथा त्याग की ओर प्रवृत्त करती है।" यह सम्भव है कि जिस कार्य के लिए गांधीजी यहां आये हैं उसकी आवश्यकताओं से बाधित होकर उनको अपने मित्रों की सहूलियत के लिए अधिक सुविधाजनक स्थान पर हटना पड़े; परन्तु यह कल्पना करना कठिन नहीं होगा कि यह उनपर कितनी ज़बरदस्ती होगी। मुहल्ले के रहनेवाले सैंकड़ों स्त्री-पुरुष और बालक गांधीजी के दर्शन और सम्मान-प्रदर्शन के लिए उस स्थान को घेर लेते हैं। जब हम बाहर जाते हैं तो बालकगण प्रसन्नतापूर्वक हमारे पीछे हो लेते हैं—इसलिए नहीं कि हमको तंग करें; बल्कि मित्रता करने के लिए। देवदास से बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है—"भला तुम्हारे पिता इंग्लैण्ड के बादशाह

से कव मिलेंगे ?" दूसरा सवाल यह होता है, "क्या तुम्हारे देश के वच्चे विलकुल हमारी तरह के हैं ?" एक लड़की अपने पड़ोसी से कहती है, "ये लोग अपने कपड़ों में वड़े अजीव मालूम होते हैं।" पड़ोसी वड़ी चालाकी से उत्तर देता है, "हां, जिस प्रकार हम उनको अजीव मालूम होते हैं।" एक छोकरे का भोला-भाला सवाल होता है, "तुम्हारे पिताजी मोटर में जाते हैं, क्या वे तुम्हें मोटर नहीं देते ?" दूसरा शरारती दूर से चिल्लाता है, "वतलाइए तो, आपकी पतलून कहां है ?"

परन्तु इन सवकी सद्भावना में कोई सन्देह नहीं है। विरोधी अखवारों ने भी, अपनी इच्छा के विरुद्ध, मेहमानी की वहुत-सी तसवीरें छाप-छापकर उनका खूव विज्ञापन कर दिया है, जिसके कारण गलियों का मोटर-ड्राइवर, सड़क पर का मज़दूर, फुट-पाथ पर वैठा हुआ फूल वेचनेवाला तथा दूकान में गोश्त वेचने वाला लन्दन में अपार भीड़ के कारण गांधीजी की मोटर के रुकते ही उनको फ़ौरन पहचान लेता है और नज़दीक आकर या तो सम्मानपूर्वक टोप हिलाने लगता है या प्रेमपूर्वक मुस्कराने लगता है।

सद्भावना

इंग्लैंड और यूरोप के भिन्न-भिन्न स्थानों से वीसों पत्र रोज़ गांधीजी के पास आते हैं, जिनमें वे उनका हार्दिक स्वागत करते हैं और उनके कार्य से सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। उनके विद्यार्थी-अवस्था के पुराने मित्र प्राय: सव उनसे मिलने आ रहे हैं और अन्य अंग्रेज़ मित्र और राज्याधिकारीगण जो उनको जानते हैं, सव मिलकर परिचय वढ़ा रहे हैं। अभी उस दिन सर जार्ज वार्नेस उनसे मिलने आये और कहा कि मैं गांधीजी का वड़ा आभारी हूं। उस दिन गांधीजी का मौन-दिवस था, अत: केवल हाथ मिलाकर ही उनको वापस लौटना पड़ा। जगह-जगह से आमन्त्रणपत्र आ रहे हैं कि आप सप्ताह के अन्त का अवकाश इधर वितावें और विश्राम करें। सहानुभूति के कुछ भावों ने तो भौतिक रूप भी ग्रहण कर लिया है। एक सज्जन ने ५० पौंड का चैक भेजते हुए लिखा है, "आज सुवह 'टाइम्स' अखवार में आपके यूस्टन रोड के मित्रभवन में स्वागत के उत्तर

में दिये हुए भाषण और किंग्सली-हाल में अमेरिका के निवासियों के लिए दिये गए भाषण को पढ़कर मुझे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। इन दोनों भाषणों के उपदेश इतने महत्वपूर्ण और विशाल हैं कि मुझे विश्वास है कि संसार-भर के जो मनुष्य उसे सुनेंगे और पढ़ेंगे अवश्य समझेंगे और उससे सहानुभूति प्रकट करेंगे। मेरा भारत से पुराना प्रेम है। गत महायुद्ध में कई सैनिकों और डाक्टरों की, जो यहां के अस्पताल में थे, सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका है। आपके उपदेशों के प्रति जो मेरी सहानुभूति है उसका सूचक यह साथ में भेजा हुआ चेक स्वीकार करेंगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। आप इसे जिस कार्य में उचित समझें खर्च करें। मुझे पूर्ण आशा है कि आपकी उपस्थिति में परिषद् का कार्य सुविधापूर्ण होगा और आपको इस देश की कड़ी ठंड से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।"
लंकाशायर से सैंकड़ों पत्र आये हैं, उनमें से एक पत्र में लिखा है, "लंकाशायर के एक मजदूर की हैसियत से क्या मैं यह प्रकट कर दूं कि हालांकि भारतीय कांग्रेस के नेताओं के कार्य से हमको धक्का पहुंचा है; परन्तु मेरी गांधीजी के प्रति बड़ी श्रद्धा है और मेरे साथी मजदूरों में से बहुसंख्यक इसी प्रकार गांधीजी के प्रति श्रद्धा रखते हैं?" एक दूसरे मजदूर का लम्बा पत्र आया है, जिसमे सिद्ध होता है कि सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित गांधीजी का कार्यक्रम किस प्रकार लंकाशायर तक के मजदूरों की समझ में आ गया है। पत्र में लिखा है, "ईश्वर ने आपको अपना दूत बनाया है, आप हमारे शराब के व्यापार के शिकार अभागे ग़रीब भारतीयों के ही नेता नहीं हैं, परन्तु आप हमारे भी सबसे बड़े नेता और ईसा के सबसे बड़े अनुगामी हैं, क्योंकि हमारे अन्य नेता तो सब मद्यरूपी राक्षस के अधीन हैं। मैं कट्टर मद्य-विरोधी हूं और यदि आप कभी रोकडेल की तरफ़ आवेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि मैं प्रत्येक सभा में कुछ मिनट यही उपदेश करने में बिताता हूं कि मद्य-निषेध ही हमारे सब कष्टों का इलाज है और गांधीजी ही ऐसे पुरुष हैं जो इस सिद्धान्त पर दृढ़ हैं और सदा इसका प्रचार करते हैं। अब तो जब मैं किसी सभा में जाता हूं तो लोग चिल्ला पड़ते हैं कि यह

गांधी का मित्र आ गया। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं तो आपके जूता खोलने वाले की बराबरी भी नहीं कर सकता। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपके द्वारा हमारे मद्यपी राष्ट्र का ध्यान इस ओर खींचे कि इन शराबखानों को चालू रखने के निमित्त कारखानों के मज़दूर अपनी सारी कमाई इनमें गंवाते हैं और चाहते हैं कि भारतवासी भाई हमारा बनाया माल खरीदें ताकि हमारा स्वार्थ सिद्ध हो और हम मद्यपान में लगे रहें। अन्त में मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर आपका, आपके पुत्र और साथियों का सहायक हो और आप इस देश को मद्य-निषेध का पाठ पढ़ावें और फिर आपका देश आनन्द में रहे, और हम और आप सब मिलकर उस ईश्वर का धन्यवाद गावें कि जो सबका भला करता है।"

अनेक मित्रों ने अपनी पुस्तकें और स्वागत-पत्र भेजे हैं, परन्तु उनमें से दो उदाहरण ही पाठकों के सामने रखूंगा। श्री ब्रेल्सफर्ड ने, जिन्हें प्रायः सभी अंग्रेज़ी जाननेवाले भारतवासी जानते हैं, अपनी पुस्तक The Rebel India (विद्रोही भारत) गांधीजी के लिए भेजी है। और जिस प्रकार मैंने उनको कुछ भारतीय ग्रामों में भ्रमण कराया था, मुझे इंग्लैंड के ग्रामों में भ्रमण कराने की इच्छा प्रकट की है। यह पुस्तक अन्य पत्रकारों की पुस्तकों के समान नहीं है, बल्कि बड़ी ज़िम्मेवारी और मर्मपूर्ण निर्भीक विचारों से भरी पड़ी है, जिसकी प्रत्येक बात को साबित करने के लिए वह तैयार हैं। पुस्तक ऐसे उपयुक्त समय पर प्रकाशित हुई है कि इससे विद्रोही-भारत को ग़ुलामी का जूआ हटाने में कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य मिलेगी। ब्रिगेडियर जनरल क्रोज़ियर द्वारा मिस लेस्टर के पास भेजी हुई 'गांधी को एक शब्द' नामक पुस्तक से तो बड़ा ही आनन्ददायक आश्चर्य हुआ। श्री क्रोज़ियर मिस लेस्टर को अपने पत्र में लिखते हैं—"श्री गांधी को आश्चर्य होगा कि फ़ौजी अफ़सरों में भी उनका एक प्रशंसक है।" पुस्तक में ऐसी रोमांचकारी बातों का वर्णन है, जिसे पढ़कर खून खौलने लगता है; और लेखक ने उन सबका ज़िम्मेदार ब्रिटिश सरकार को ठहराया है। पाठकों को ज्ञात होगा कि श्री क्रोज़ियर को आयरलैंड

में अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था, क्योंकि वह अवला और निःशस्त्र देश-भक्त स्त्रियों पर अत्याचार करनेवालों को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर सिद्धान्तों से विमुख होने का दोष लगाया है। वह गम्भीर होकर पूछते हैं, "इस छोटे-से सीधे-सादे हिन्दू को अखवार क्यों कोसते हैं? क्यों उसे अधनंगा फकीर और यह कहकर संबोधित करते हैं कि यह ईसाई पादरियों को भारत से निकालना चाहता है? इसी वात पर इन अखवारों ने सन् १९२०-२१ में आयरलैंड के निवासियों के प्रति ज़हर उगला था और उनपर अपने स्वार्थ के लिए परस्पर हत्यायें करने का आरोप लगाया था। यह सब धूर्त्तता है। अखवार 'स्वामी-भक्ति' 'देश-भक्ति' आदि चिल्लाते हैं। स्वामी-भक्त किसके प्रति? क्या अखवारों के प्रति? 'देश-भक्ति', परमात्मा जाने किसके लिए! क्या लार्ड रादरमियर इस वात को जानते हैं? भारतवर्ष स्वतन्त्र हो सकता है; इंग्लैंड, फ्रान्स और जर्मनी भी स्वतन्त्र हो सकते हैं। सब ऐसे स्वतन्त्र हो सकते हैं, जैसा कि उनको होना चाहिए, न कि जैसे वे होना चाहते हों—वशर्ते कि 'देश-भक्ति' कहलानेवाला संसार-प्रसिद्ध धर्म नष्ट कर दिया जाय और उसके स्थान पर मानव-धर्म की 'भक्ति' स्थापित की जाय।" यह एक ऐसा आरोप है, जिसका उत्तर नहीं हो सकता और जो आज तक नहीं लिखा गया।

ऐसा ही एक दूसरा आरोप लगाने के लिए गांधीजी इंग्लैंड पहुंचे हैं और उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। सम्भवतः उनका पेश करने का ढंग उनके अभियोग को और मज़बूत वना देगा। जो

ध्येय

शब्द उनके मुंह से निकलता है वह उनके सत्य और अहिंसा की अटल छाप पड़े हुए हृदयरूपी टकसाल से ढलकर आता है। यही कारण है कि उनका गोलमेज़ परिषद् में दिया हुआ प्रथम भाषण पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग के रूप में होता हुआ भी निर्दोष समझा गया। यही कारण है कि जव उन्होंने पार्लमेण्ट के मेम्वरों के सामने हाउस ऑफ कामन्स में लंकाशायर को अपने किये हुए पापों के लिए वाग़ी भारत के प्रति पश्चात्ताप करने को कहा, तो एक भी मेम्वर ने उसमें वुरा नहीं माना। यही कारण

है कि जब उन्होंने संघ-योजना-समिति के कार्य की अनिश्चितता और गोलमेज़-सभा में ब्रिटिश भारत के निराशापूर्ण और निःसार प्रतिनिधित्व के विरुद्ध घोर असन्तोष प्रकट किया, तो किसीको शिकायत का मौक़ा नहीं मिला। 'प्रेम की डोरी से बंधे हुए भारत और इंग्लैंड', 'राज़ी-खुशी का साझा जो इच्छानुसार तोड़ा जा सके, न कि ऐसा जो एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र पर थोपा जाय', 'भारतवर्ष अब ग़ुलाम राष्ट्र होकर न रह सकता है, न रहेगा' इत्यादि ऐसे वाक्य हैं, जो हमारे इंग्लैंड छोड़ने के बहुत पहले ही यहां काफ़ी प्रचलित हो जायंगे।

सरकार की टरकाने वाली नीति ने गांधीजी को ज़रूर हताश कर दिया है और अब वह जल्दी क़दम बढ़वाने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं। जब कि व्यापारिक जगत् में अभूतपूर्व उथल-पुथल हो रही है, जब बेकारों की संख्या ३०,००,००० तक पहुंच जाने का भय है, जब सोने के ढेर-के-ढेर हवाई जहाज़ों के द्वारा फ्रान्स को उड़े जा रहे हैं, जब अर्थ-मंत्री बजट की घटी पूरी करने के लिए उग्र तरीके काम में ला रहे हैं, और जब नौकरीपेशा लोग विद्रोह करने पर उतारू हो रहे हैं—ऐसी स्थिति में सम्भव है कि वे भारत की ओर अधिक ध्यान देने का समय न निकाल सकें। वे शायद गांधीजी के इस प्रस्ताव पर विचार करने की इच्छा न रखते हों कि बराबरी का साझीदार बनाया जाने पर भारतवर्ष इंग्लैंड के बजट को एक बार ही नहीं, वरन् हमेशा के लिए पूरा करने में बहुमूल्य सहायता दे सकता है। कदाचित वे वास्तविक पश्चात्ताप की भाषा में लिवरपूल में कहे हुए श्री चैम्बरलेन के निम्नलिखित महत्वपूर्ण शब्दों को याद करके लाभ उठा सकते हैं—"कभी-कभी ऐसा अवसर आता है, जब साहस बुद्धिमानी से अधिक रक्षा करता है, जब मनुष्यों के हृदयों को स्पर्श करनेवाला तथा उनके भावों को आलोकित करनेवाला कोई महान् श्रद्धापूर्ण कार्य ऐसे आश्चर्य को उत्पन्न करता है, जिसको नीतिकुशलता की कोई चाल प्राप्त नहीं कर सकती।"

२

गांधीजी ने गत १७ सितम्बर को संघ-योजना-समिति में 'सम्राट् के सलाहकारों के खिलाफ एक नम्र और विनीत शिकायत' की थी। उन्होंने लार्ड सैंकी द्वारा प्रार्थना की थी कि सम्राट् के सलाहकार अपने मन की बात भारत के प्रतिनिधियों के सामने रख दें; तफ़सील की बातों पर लंबी-लंबी चर्चा न करें, उनका निर्णय तो भारतवासी पीछे कर लेंगे, अभी तो वे अपनी सारी बाजी सामने रख दें और साफ़-साफ़ तजवीज बता दें। किन्तु अभी तक वही उकता देने वाला ढंग जारी है। ये लोग खूंटे के चारों ओर दूर-दूर चक्कर लगाते रहते हैं और मुख्य विषय पर आते ही नहीं। गांधीजी ने तो इस समिति के समक्ष कांग्रेस की स्थिति रख दी है और कांग्रेस के आदेश को अच्छी तरह स्पष्ट करके बता दिया है।

वही रफ़्तार

किन्तु अंग्रेज़ जनता घरेलू समस्याओं में ही ग़र्क़ होकर एक-के-बाद-एक नई-नई उपशामक योजनाएं बनाती जाती है, जब कि भारत में सरकारी अधिकारी—गांधीजी के शब्दों में—'सरकार का अडिग और न झुकने वाला रुख' प्रकट करते जा रहे हैं। ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था और ब्रिटिश मुद्रा के प्रति फिर विश्वास पैदा करने के लिए विलायत की राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्न की ओर भारत-सचिव ध्यान दिलाते हैं; किन्तु स्वयं ब्रिटिश सरकार में पुनः विश्वास पैदा करने के लिए न तो यहां और न भारत में ही कुछ प्रयत्न किया जाता है।

भारतीय मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप के आरोप की आशंका से लार्ड इर्विन इन बातों से जानबूझ कर अलग रह रहे हैं। इस बीच गांधीजी अपने प्रत्येक क्षण का उपयोग ब्रिटिश जनता के सामने भारत का दावा पेश करने में कर रहे हैं। उन्होंने 'डेली मेल' में एक लेख लिखकर अपने 'मुखिया' अर्थात् भारतीय

भारत क्या चाहता है ?

राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का परिचय कराते हुए संक्षेप में भारतीय मांग समझाई है। सुशिक्षित अंग्रेज़ों तक को भारत के सम्वन्ध में व्यवस्थित रूप से झूठा इतिहास वताकर, उनके मन में जो पूर्वगृहीत कुधारणायें और दूषित पक्षपात दृढ़ कर दिया जाता है, हाउस आफ़ कामन्स में मज़दूर दल के पार्लमेण्ट्री सदस्यों के सामने एक भाषण देकर गांधीजी ने उसके तोड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने उनसे कहा, "आप लोग ग़रीव-से-ग़रीव मज़दूरों के प्रतिनिधि होने के कारण इस देश के 'रत्न' हैं, किन्तु भारत के प्रश्न पर मैं आपके और दूसरे पक्षों के वीच कुछ अन्तर नहीं कर सकता। मुझे तो सवको समान प्रेम से जीतना है।" किन्तु मज़दूरों के प्रतिनिधियों के सामने उन्होंने दरिद्रता का प्रश्न विस्तार से पेश किया। उन्होंने कहा—"यदि आपके मन में यह ख़याल हो कि भारत की सर्वसाधारण जनता अंग्रेज़ों की शान्ति और व्यवस्था पर मोहित है, तो मैं वह ख़याल आपके दिल से निकाल देना चाहता हूं। सच वात तो यह है कि वह अंग्रेजों के जुए को उतार फेंकने के लिए उतावली हो रही है, और उसका कारण केवल यही है कि वह भूखों नहीं मरना चाहती। आपका देश तो ख़ूव समृद्ध है; फिर भी आपके प्रधान-मन्त्री मनुष्य की औसत आय के पचास गुने से अधिक वेतन या तनख्वाह नहीं लेते, जवकि भारत में वाइसराय वहां के एक आदमी की औसत आय से पांच हजार गुना अधिक वेतन लेता है। और यदि औसत आय इतनी कम हो, तो आप समझ सकते हैं कि हज़ारों मनुष्यों की वास्तविक आय तो शून्य ही होगी।" फ़ौज के प्रश्न पर भी चर्चा हुई थी; किन्तु लोगों का ध्यान जितना दरिद्रता के प्रश्न पर खिंचा, उतना उसपर नहीं खिंचा। मज़दूर दल के सदस्य तो शुरू से आखिर तक अपने वेकारों का ही ख़याल करते रहे और उनके प्रश्नों का मुख्य विषय था लंकाशायर का कपड़ा। गांधीजी ने उनसे करुण-स्वर में पूछा, "मुझे वताइए, जव कि भारत स्वयं अपना कपड़ा तैयार कर लेने में समर्थ हो, तव भी क्या वह लंकाशायर का कपड़ा खरीदने के लिए नीतिवद्ध है? हिन्द को पामाल एवं वरवाद करके स्वयं समृद्ध वनने के कारण, क्या लंकाशायर को उसके

प्रति कुछ प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए ?" इन लोगों के पास इसका कोई उत्तर न था। किन्तु एक सदस्य ने अपने स्वाभाविक अंग्रेज़ी उद्धतपने से कहा—"यदि तुम हमारा कपड़ा नहीं खरीदोगे तो हम तुम्हारी चाय और सन नहीं खरीदेंगे।" गांधीजी ने कहा—"नहीं, हरगिज़ मत खरीदिए। यह तो राज़ीखुशी की बात है। हम अपनी चाय या सन ज़बरदस्ती आपपर नहीं लादना चाहते।"

तीनों दलों—मजदूर, उदार और अनुदार—के सदस्यों के साथ की मुलाक़ात तो और भी अधिक सजीव थी। क्योंकि उसमें गांधीजी ने अपील अथवा प्रार्थना करने की वजाय, भारत की आज़ादी की दलीलें ज़ोर से पेश कीं तथा 'संरक्षणों' और 'विशेष अधिकारों' की विस्तार से चर्चा की। "सेना और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिकार के विना मिली हुई स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता नहीं कही जा सकती, इतना ही नहीं, वह तो हलके रूप का स्वायत्त शासन भी न होगा। वह तो निरा भूसा होगा, जिसे छूना तक उचित नहीं।" सीमाप्रान्त के हौए का भण्डा-फोड़ करते हुए उन्होंने कहा कि पिछले ज़माने में अनेक हमलों और आक्रमणों के होते हुए भी हम उनका मुक़ाबला करके टिके रहे, उसी तरह भविष्य में भी हम उनसे अपनी रक्षा कर सकेंगे। अंग्रेज़ी शासन की शान्ति और व्यवस्था अधिकांश में काल्पनिक है, और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी रियासतों में भारतीय अधिक शान्ति से रहते हैं। "इसलिए यह ख़याल न कीजिए कि आपके विना हमें आत्म-हत्या करनी पड़ेगी अथवा हम एक-दूसरे का गला काटने लगेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि हम हरेक अंग्रेज़ सैनिक या सिपाही अथवा अफ़सर को निकाल वाहर करेंगे। हमें ज़रूरत होगी और यदि वे हमारी शर्तों पर रहना स्वीकार करेंगे तो हम उन्हें रक्खेंगे। लेकिन मुझसे कहा गया है कि एक भी अंग्रेज़ सिपाही या सिविलियन हमारी मातहती में नौकरी न करेगा। मैं स्पष्ट ही कह देना चाहता हूं कि इस जातिगत अभिमान का मतलब मैं नहीं समझ सकता। हम—अकेली कांग्रेस ही नहीं वल्कि सभी पक्ष—इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि अंग्रेज़ी

शासन अत्यधिक खर्चीला है; और फ़ौजी खर्च राष्ट्र को कुचलकर मरणासन्न कर रहा है। हलके-से-हलके दर्जे की स्वतन्त्रता मिलने की एक कसौटी इस फ़ौज पर हमारा अधिकार होना है। संरक्षणों के प्रश्न में सिविल सर्विस को मौजूदा आधार पर बनाये रखने की बात आती है। सच बात यह है कि ये सिविलियन कितने ही योग्य, उद्योगी और कितने ही कार्यकुशल हों, तो भी यदि वे अत्यधिक खर्चीले हों, तो वे हमारे लिए किसी काम के नहीं। भारत में जिस प्रकार करोड़ों मनुष्य विना डाक्टर एवं चिकित्सक की सहायता से अपना जीवन विता लेते हैं, उसी प्रकार हम आपके विशेषज्ञों की सहायता के बिना अपना काम चला लेंगे। यह कहा जाता है कि उनका भारी वेतन उन्हें रिश्वत आदि लालचों से बचाये रखने की गारण्टी है। लेकिन यह वहुत वड़ी कीमत है और हिन्दुस्तानी नौकर जो रिश्वत लेते होंगे, उसकी अपेक्षा मुट्ठी-भर सिविलियनों का भारी वेतन और अन्य खर्च कहीं अधिक हो जाता है।

"वर्तमान संरक्षणों के अनुसार ८० फ़ीसदी आमदनी तो विदेशियों के हाथों में सौंप दी जायगी और बाक़ी २० फ़ीसदी से हमें शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि विभाग चलाने होंगे। इस स्वतन्त्रता को

आर्थिक संरक्षण

मैं हाथ से छूना तक पसन्द न करूंगा। जिस सरकार का पांच-दस वर्ष में दिवाला निकलना निश्चित हो, मैं उसका चार्ज लेने की अपेक्षा वाध्य होकर परतन्त्र रहना और अपने आपको बाग़ी घोषित करना अधिक पसन्द करूंगा। मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूं कि, कोई भी आत्मगौरववाला भारतीय इस स्थिति को पसन्द न करेगा। मैं सविनय-भंग द्वारा अपना खून वहाकर भी लड़ूंगा; और मैं कहना चाहता हूं कि मैं आपके साथ एक गुलाम की तरह सहयोग करने की अपेक्षा यह अच्छा समझूंगा कि आप मुझे अपनी जेल में ठूंस दें और मुझपर लाठीप्रहार करें। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार इन दोनों संरक्षणों का अर्थ गुलामी ही है।"

इसके बाद गांधीजी ने अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण का प्रश्न

हाथ में लिया और उसके आर्थिक संरक्षणों की चर्चा की; क्योंकि इनकी मांग अंग्रेजों के हित के लिए जो भारत में अल्पसंख्यक जातियों में हैं, की जाती है। यह मांग सर्वथा असंगत है;

यूरोपियन

इसमें न तो अंग्रेजों की ही शोभा है, न हिन्दुस्तानियों की। मुट्ठी-भर अंग्रेज ३० करोड़ 'गुलामों' के पास से संरक्षण मांगें, यह विचार गांधीजी से सहा नहीं जा सकता था। शत्रु से रक्षा की गारण्टी मांगी जा सकती है, मित्र से हरगिज़ नहीं। भारतवासी उनसे जो सेवा लें, उससे जितना संरक्षण मिले उसीमें उन्हें सन्तोष मान लेना चाहिए। गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"यदि अंग्रेज़ों का व्यापार भारतीयों के लिए हितकारक हो तो उसके लिए किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं। किन्तु इसके विपरीत यदि वह भारत-हित-विरोधी हो तो चाहे कितने ही संरक्षण क्यों न हों, उनसे कुछ लाभ न होगा। विश्वास रखिए कि तीस करोड़ हिस्सेदारों के कन्धों पर से जूआ उतर जाने पर वे समृद्ध भागीदार होंगे और इंग्लैंड को किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र को लूटने में नहीं प्रत्युत सब राष्ट्रों के कल्याण के लिए, बराबरी से सहायता पहुंचाने के लिए तत्पर रहेंगे।"

बम्बई के मिल-मालिकों से समझौता या उनके शब्दों में 'सौदा' करके गांधीजी ने ज़बरदस्त भूल की। ऐसा वहां के मेम्बरों का ख़याल था। पर गांधीजी ने तो इससे भी आगे बढ़कर कहा कि, केवल बम्बई ही नहीं अहमदाबाद के मिल-मालिकों से भी समझौता या 'सौदा' किया गया है, किन्तु इस 'सौदे' की शर्तों से खादी बनानेवालों के सामने से मिलों की प्रतियोगिता दूर हो जाती है। यह ठीक है कि इनमें से कई मिलों के मज़दूरों को बुरी तरह पिसना पड़ता है; फिर भी मिल-मालिक नम्र दबाव और समझौते से झुकते जाते हैं और, स्वयं श्री टॉम शा के कथनानुसार, अहमदाबाद का मज़दूर-संघ संसार भर में आदर्श है।

मिलें

संघ-योजना-समिति के गांधीजी के दूसरे भाषण से हिन्दुस्तान में कुछ मित्र तथा यहां के कुछ मित्र चौंक उठे हैं। संघ में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक नरेश से वह कम-से-कम कितनी अपेक्षा

करते हैं यह गांधीजी ने छिपा नहीं रक्खा है; और देशी राज्यों के मित्रों को उन्होंने वचन दे दिया है कि इससे ज़रा भी कम वे हरगिज़ न लेंगे। भाषण में तो नरेशों को अपना भाग देने और समिति के सामने योजना रखने की प्रार्थना की। इसमें गांधीजी ने समर्पण कहां किया है ? समर्पण का प्रश्न तो तभी आ सकता है, जब उनकी योजना समिति के सामने आवे।

स्पष्टीकरण

भाषण के जिस अंश से यहां के मित्रों को आश्चर्य हुआ है, वह है कि जिसमें गांधीजी ने अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का तत्त्व स्वीकार किया है। पर वे भूल जाते हैं कि एक ही व्यवस्थापिका सभा और वालिग़ (केवल 'चरित्र की मर्यादा वाला') मताधिकारी उनकी योजना के अनिवार्य अंग हैं, और उनसे हम "अकेले मुसलमानों की ही नहीं वल्कि अछूत, ईसाई, मज़दूर और अन्य सव वर्गों की उचित आकांक्षाओं का समाधान कर सकते हैं।'

किन्तु ये वातें वड़े लोगों के लिए छोड़कर मुझे अव किंग्सली-हाल के अपने घर की ओर आना चाहिए। मित्र लोग इस वात की शिकायत कर रहे हैं कि गांधीजी महल और होटल छोड़कर इतनी दूर रह रहे हैं। अंग्रेज़ मित्र सेण्ट जेम्स महल के निकट के अपने घर देने के लिए तत्परता दिखा रहे हैं, किन्तु गांधीजी ने निश्चय किया है कि यह ग़रीवों का घर, जो अपना घर वन गया है, न छोड़ा जाय। मित्रों से मिलने के लिए एक दफ़्तर रखा जा सकता है—इसके लिए कई भारतीय मित्रों ने अपने घर देने की इच्छा प्रकट भी की है; किन्तु ईस्ट एण्ड में घूमने जाते समय जो मित्र उनसे मिलते हैं, और जो वालक उन्हें घेरकर उनसे किसी समय वातें कर लेते हैं, उन्हें वे छोड़ नहीं सकते। वस्तुतः इन वालकों के साथ की एक खास मुलाक़ात से गांधीजी को वड़ा आनन्द हुआ। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह स्वयं आश्रम में हों, और वालकों के सादे किन्तु गहरे और चकित करनेवाले प्रश्नों का उत्तर देते हुए सत्य और प्रेम का सन्देश फैला रहे हों। वे पूछते हैं—'मिस्टर

उनका घर

गांधी, आपकी भाषा क्या है ?' और गांधीजी उन्हें अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषाओं के समान शब्दों की व्युत्पत्ति बताते हैं और समझाते हैं कि आखिर तो हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं। उनसे वह अपने बचपन की बातें करते हैं, और यह समझाते हैं कि घूंसे का जवाब घूंसे से देने की अपेक्षा घूंसे से न देना कितना अच्छा है ! स्वयं कच्छ क्यों धारण करते हैं, और स्वयं उनके बीच यहां क्यों रहते हैं, यह भी उन्हें बताते हैं। एक दिन उन्होंने कहा—"मेरे लिए तो सच्ची गोलमेज़-परिषद् यह है। मैं जानता हूं कि ऐसे मित्र हैं, जो मुझे घर दे सकते हैं और मेरे लिए उदारता से पैसे खर्च कर सकते हैं, किन्तु मैं मिस लेस्टर के घर में सुखी हूं, क्योंकि जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का मेरा ध्येय है उसका स्वाद मुझे यहां मिलता है। मिस लेस्टर ने मेरे लिए कोई नया खर्च नहीं किया; किन्तु उन्होंने और उनके साथियों ने मेरे लिए अनेक असुविधाएं उठाई हैं और अपने सिर पर बहुत परिश्रम ले लिया है। मैंने जो कोठरियां रोकी हैं, उन्हें खाली कर वे स्वयं बरामदों में सो रहते हैं। वे अपना काम स्वयं कर लेते हैं। मैंने और मेरे साथियों ने उनका काम बढ़ा दिया है और उसे वे प्रसन्नतापूर्वक कर लेते हैं। ऐसी दशा में मुझसे यह स्थान कैसे छोड़ा जा सकता है ?" उनकी यह दलील अकाट्य है; उनके सामने श्री एण्डरूज़ तक के प्रयत्न सफल नहीं हो सके। जिस दिन स्थान बदलने का प्रश्न उठा, उसी दिन एक वृद्ध, पतली और ठिगनी महिला आई। उनकी आंखें तेज से लाल हो रही थीं। वह गांधीजी से केवल हाथ मिलाने आई थीं। वापस जाते समय उन्होंने मुझसे कहा—"इस स्थान को छोड़ने का विचार न कीजिए। यह म्यूरियल का घर नहीं है, यह यहां के रहनेवालों अथवा हमारे लिए भी नहीं बनाया गया है। यह तो गांधीजी जिस आदर्श की मूर्ति हैं, उस आदर्श के लिए जीनेवाले उसके (मिस लेस्टर के) भाई का स्मारक है। गांधीजी के योग्य ही यह स्थान है।" लगभग ८० वर्ष की अवस्था की यह महिला, 'टाम ब्राउन्स स्कूल डेज़' के लेखक की पुत्री मिस ह्यूज़ हैं।

यहां जितने ग़रीब और मामूली आदमी गांधीजी से परिचय पाने और

मिलने की सुविधा पा जाते हैं, उनकी संख्या से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह स्थान कितने महत्व का है। इस प्रकार के मिलन एवं सम्बन्ध ही जीवन को समृद्ध और जीने योग्य बनाते हैं। जिन स्त्री-पुरुषों के लिए जीवन एक शतरंज का चित्रपट (बोर्ड) है और साथी खिलाड़ी को मात देना सर्वाधिक चतुराई है, उनसे मिलने में कुछ सार नहीं। ऊपर कहे एक-दो सम्मिलनों की यहां चर्चा करना चाहता हूं। एक दिन तो ऐसा मालूम होता था, मानों वह केवल हस्ताक्षर—दस्तखत—करने का ही दिन हो। गांधीजी के हस्ताक्षर कराने में सफलता प्राप्त करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-कथा सुना जाता।

उनके मित्र

वेन प्लेटन नामक एक भाई मिस लेस्टर के साथी हैं। हमारे लिए सुबह से शाम तक निरन्तर काम करते रहते हैं; किन्तु गांधीजी की नज़र में चढ़ने का कभी प्रयत्न नहीं करते। एक दिन वह एक किताब लाये और उसमें गांधीजी के हस्ताक्षर करवाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा, "गांधीजी, मैंने यह पुस्तक एक शिलिंग में खरीदी है। उस समय मैं 'डेली हेरल्ड' में काम करता था। वहां यह पुस्तक समालोचना के लिए आई, किन्तु तुच्छ मानी जाकर समालोचना के अयोग्य समझी गई और इसीलिए बेच डालने के लिए रद्दी में डाल दी गई। इससे मुझे यह एक शिलिंग में मिल गई। मैं इसे घर ले गया और शुरू से आखिर तक पढ़कर उसका तत्काल उपयोग किया। किंग्सली-हाल में एकत्र लोगों को मैंने आपका परिचय कराया, और आपके सम्बन्ध में कई व्याख्यान दिये। उस दिन से मेरा आपके साथ परिचय आरम्भ हुआ है।

सदुपयोग

गांधीजी इससे आश्चर्यचकित हो प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"अच्छा, म्यूरियल से मेरा परिचय करानेवाले तुम थे ?"

वेन ने कहा—"मैं यह कहने की धृष्टता तो नहीं कर सकता। कदाचित् वह पहले ही आपको जानती हों। किन्तु दूसरे मित्र तो, मैंने इस पुस्तक में

से जो कुछ कहा, उसीसे आपको अच्छी तरह जान सके। इस पुस्तक में बहुत-सी बातें ऐसी थीं, जो स्वयं मेरे विचार में थीं; किन्तु मैंने कभी उन्हें शब्दों में प्रकट नहीं किया था।"

गांधीजी ने हंसते हुए कहा—"तब मैंने सब विचार तुमसे उधार लिये या तुमने मुझसे लिये। कुछ भी हो, एक शिलिंग खर्च करना अच्छा ही हुआ। ठीक है न?"

उन्होंने कहा—"इससे अच्छा उपयोग उसका हो नहीं सकता था। और आप इस बात से तो सहमत होंगे ही कि मैंने जो कुछ किया, उससे मैं आपके हस्ताक्षर पाने का अधिकारी हूं?"

यह एक शिलिंग की पुस्तक कौन-सी होगी, क्या पाठक इसका अनुमान लगा सकेंगे?

शुभ कामना

एक व्यक्ति आया; वह जल-सेना में था और मीरां बहन के पिता को जानता था। मीरां बहन अपने भूतपूर्व एडमिरल की पुत्री हैं, इस खयाल से उनपर वह अपना विशेष अधिकार समझता था। एक दिन वह घूमकर वापस लौट रही थीं कि वह आया और गांधीजी के हस्ताक्षर पाने का अधिकार बताते हुए कहने लगा—"मैं २१ वर्ष तक जल-सेना में था। मैंने तुम्हारे पिता की मातहती में नौकरी की है। और मेरा दामाद गांधीजी के लिए बकरी का दूध भेजता है। क्या वह मुझे अपने हस्ताक्षर देने की कृपा न करेंगे?" उसकी यह प्रार्थना व्यर्थ न गई। गांधीजी ने उसे अंदर बुलाया। पास पहुंचकर उसने अपनी कथा सुनाई, और कहा—

"साहब, मैं आपके और आपके उद्देश्य के लिए सचमुच शुभ कामना करता हूं। मैंने दुनिया खूब देखी है। महायुद्ध में मैंने नौकरी की; जगह-जगह फेंका गया; ठिठुरते पैरों गेली-पोली से सालेनिया के लिए कूच का हुक्म हुआ और अकथनीय कष्टों का सामना करना पड़ा। आगामी युद्ध में नौकरी करने की अपेक्षा तो मैं जेल चला जाना पसन्द करूंगा। साहब, वस्तुतः यह एक अत्यन्त भयंकर कार्य है। मैं तो आपके लिए लड़ना

अधिक पसन्द करता हूं। आपके उद्देश्य में सफलता मिले, यही मैं चाहता हूं।" वह अपने साथ अपनी लड़की और दूध पहुंचानेवाले दामाद के फोटो लाया था।

वह जाने की तैयारी में था कि गांधीजी ने उससे पूछा—"तुम्हारे कितनी सन्तान है?"

उसने कहा—"साहब, आठ; चार लड़के और चार लड़कियां।"

गांधीजी ने कहा—"मेरे चार लड़के हैं, इसलिए मैं तुम्हारे साथ आधे रास्ते तक तो दौड़ सकता हूं!"

यह सुनकर सारा घर हंसी से गूंज उठा।

चार्ली चेपलिन

कदाचित् थोड़े ही लोग इस बात पर विश्वास करेंगे कि जब गांधीजी से यह कहा गया कि चार्ली चेपलिन उनसे मिलना चाहते हैं, तो उन्होंने निर्दोष भाव से पूछा कि यह महापुरुष कौन हैं? अनेक वर्षों से गांधीजी का जीवन कुछ ऐसा हो गया है कि उन्होंने अपने लिए जो काम निश्चित कर रखा है, उसे करते-करते सामने आ जानेवाले काम के सिवा दूसरा कुछ देखने या सुनने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि श्री चार्ली चेपलिन सर्व-साधारण जनता में के ही एक व्यक्ति हैं, सर्वसाधारण जनता के लिए ही जीते हैं और उन्होंने लाखों आदमियों को हंसाया है, तब उन्होंने उनसे डा० कतियाल के घर पर, जिन्होंने गांधीजी जबतक लन्दन में रहे तबतक उनके उपयोग के लिए अपनी मोटर उनके सुपुर्द कर दी है, श्री चेपलिन से मिलना स्वीकार किया। मुझे श्री चेपलिन सिनेमा के चित्रपटों में जैसे दिखाई देते हैं, उसके विपरीत बड़े खुशमिज़ाज और निरभिमान सज्जन प्रतीत हुए; किन्तु कदाचित् अपना स्वरूप छिपाने में ही उनकी कला है। गांधीजी ने उनके विषय में कुछ न सुना था, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने गांधीजी के चर्खे के बारे में सुन रखा था। उन्होंने पहला ही प्रश्न यह किया कि गांधीजी मशीनों का विरोध क्यों करते हैं? गांधीजी इस प्रश्न से प्रसन्न हुए और उन्होंने तफ़सील के साथ बतलाया कि भारत के किसानों को छः

महीने की बेकारी में उनके पुराने घरेलू एवं सहायक धन्धे को पुनरुज्जीवित किये बिना काम नहीं चल सकता।" तब केवल कपड़े के विषय में ही यह बात है ?" गांधीजी ने कहा—"निस्सन्देह। प्रत्येक राष्ट्र को अन्न-वस्त्र तो स्वयं ही पैदा करना चाहिए। पहले हम यह सब कर लेते थे और इसलिए आगे भी वैसा ही करना चाहते हैं। इंग्लैंड बहुत अधिक परिमाण में माल तैयार करता है। और इसलिए उसे खपाने के लिए उसे बाहर के बाज़ार ढूंढने पड़ते हैं। हम इसे लूट कहते हैं। और लुटेरा इंग्लैंड संसार के लिए खतरा है। इसलिए यदि अब भारत मशीनों का उपयोग स्वीकार कर ले और अपनी आवश्यकता से अधिक कपड़ा तैयार करे, तो ऐसा लुटेरा भारत संसार के लिए कितना बड़ा खतरा साबित होगा ?"

श्री चेपलिन ने प्रश्न को तुरन्त ही पकड़ते हुए पूछा—"इसलिए यह प्रश्न केवल भारत तक ही सीमित है ? किन्तु मान लीजिए कि आपके भारत में रूस की-सी स्वतन्त्रता हो और आप अपने बेकारों को दूसरा काम दे सकते हों तथा सम्पत्ति का बराबर बंटवारा कर सकते हों, तब तो आप मशीनों का तिरस्कार न करेंगे ? क्या आप स्वीकार न करेंगे कि मज़दूरों के काम के घण्टे कम हों, और उन्हें विश्राम के लिए अधिक फुरसत मिलनी चाहिए ?"

गांधीजी ने कहा—"अवश्य।"

इस प्रश्न पर गांधीजी के सामने सैंकड़ों बार चर्चा हो चुकी है, किन्तु एक अजनबी विदेशी को इतनी तेज़ी से स्थिति को समझ लेते मैंने नहीं देखा। इसका कारण कदाचित् उनके मन में किसी प्रतिकूल भाव एवं पक्षपात का न होना और उनकी निश्चित सहानुभूति हो।

यह सहानुभूति उस समय प्रत्यक्ष दिखाई दी, जब श्रीमती सरोजनी देवी ने उन्हें विलायत की एक जेल की मुलाक़ात की याद दिलाई। उन्होंने कहा—"मैं धनवानों के गिरोह का सामना कर सकता हूं, किन्तु इन क़ैदियों के सामने खड़ा नहीं रहा जाता। मैं मन में कहता हूं, 'ईश्वर की कृपा न होती, तो तू भी इनके साथ ही होता।' वहां कुछ भी नहीं किया जा

सकता, इससे मन में बड़ी तुच्छता प्रतीत होती है। अपने और उनके बीच में लोहे की सलाख के सिवा क्या फ़र्क़ है? मैं तो जेलों को जड़-मूल से सुधारने के पक्ष में हूं। अन्य रोगों की तरह अपराध करना भी एक रोग है और इसका इलाज जेलों में नहीं वरन् शिक्षण-गृहों में होना चाहिए।"

३

साम्राज्य नहीं साझेदारी

एक विद्यार्थी के प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने कहा—"लाहौर और कराची के प्रस्ताव एक ही हैं। कराची का प्रस्ताव लाहौर के प्रस्ताव का उल्लेख करके उसे पुनः स्वीकृत करता है; किन्तु यह बात स्पष्ट कर देता है कि पूर्ण स्वतन्त्रता सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन के साथ की सम्मानयुक्त साझेदारी को अलग नहीं करती। जिस प्रकार अमेरिका और इंग्लैंड के बीच साझेदारी हो सकती है, उसी तरह हम इंग्लैंड और भारत के बीच साझेदारी स्थापित कर सकते हैं। कराची के प्रस्ताव में जो सम्बन्ध-विच्छेद का उल्लेख है, उसका अर्थ यह है कि हम साम्राज्य के होकर नहीं रहना चाहते। किन्तु भारत को ग्रेट ब्रिटेन का साझेदार आसानी से बनाया जा सकता है।

"एक समय था, जब मैं औपनिवेशिक पद पर मोहित था; किन्तु बाद में मैंने देखा कि औपनिवेशिक पद ऐसा पद है, जो एक ही कुटुम्ब के सदस्यों—आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रिका और न्यूज़ीलैण्ड आदि—को समान करनेवाला है। ये एक ही स्रोत से निकली हुई रियासतें हैं; इस अर्थ में भारत सदस्य नहीं हो सकता। इन देशों की अधिकांश जनता अंग्रेज़ी भाषा-भाषी है और उनके पद में एक प्रकार का ब्रिटिश सम्बन्ध सन्निहित है। लाहौर कांग्रेस ने भारतीयों के दिमाग़ में से साम्राज्य का ख़याल धो डाला है और स्वतंत्रता को उनके सामने रखा है। कराची के प्रस्ताव ने इसका यह सन्निहित अर्थ किया कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से भी हम ग्रेट ब्रिटेन के साथ, अवश्य ही यदि वह चाहे तो साझेदारी क़ायम कर सकते हैं। जबतक साम्राज्य का ख़याल बना रहेगा, तबतक डोर इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट के हाथ में रहेगी;

किन्तु जब भारत ग्रेट ब्रिटेन का एक स्वतन्त्र साझेदार होगा, तब सूत्र-संचालन लन्दन के बजाय दिल्ली से होगा। एक स्वतन्त्र साझेदार की हैसियत से भारत, युद्ध और रक्तपात से थकित संसार के लिए एक विशेष सहायक होगा। युद्ध के फूट निकलने पर उसे रोकना भारत और ग्रेट ब्रिटेन का साझा प्रयत्न होगा—अवश्य ही हथियारों के बल से नहीं, वरन उदाहरणीय दुर्दांत बल से। आपको यह व्यर्थ का अथवा बहुत बड़ा दावा प्रतीत होगा और आप इसपर हंसेंगे। किन्तु आपके सामने बोलनेवाला उस राष्ट्र का एक प्रतिनिधि है, जो उसके दावे को पेश करने के लिए ही आया है, और जो इससे किसी क़दर कम पर रज़ामन्द होने के लिए तैयार नहीं है; और आप देखेंगे कि यदि यह प्राप्त न हुआ तो मैं पराजित होकर चला जाऊंगा, किन्तु अपमानित होकर नहीं। मैं ज़रा भी कम न लूंगा; और यदि मांग पूरी नहीं की गई, तो मैं देश को और भी अधिक विस्तृत और भयंकर परीक्षणों में उतरने के लिए आह्वान करूंगा। और आपको भी हार्दिक सहयोग के लिए लिखूंगा।"

एक दूसरी सभा में उन्होंने कहा—"हमारे अहिंसात्मक आन्दोलन का उद्देश्य, बिना मन में कुछ पाप रखे, भारत के लिए किसी गुप्त अर्थ में नहीं वरन उसके वास्तविक अर्थ में पूर्ण स्वराज्य है। मैं मानता हूं कि प्रत्येक देश, बिना किसी योग्यता के अथवा दूसरे प्रश्न के, इसका अधिकारी है। जिस प्रकार प्रत्येक देश खाने, पीने और श्वास लेने के योग्य है, इसी प्रकार प्रत्येक देश अपनी व्यवस्था करने के योग्य है—इसकी परवा नहीं कि वह कितनी ही बुरी तरह क्यों न हो। जिस प्रकार खराब फेफड़े वाला व्यक्ति कठिनाई से सांस ले सकेगा, उसी प्रकार भारत भी अपने रोगों के कारण हज़ार ग़लतियां कर सकता है शासन की योग्यता का सिद्धान्त केवल आंसू पोंछने के समान है। स्वतन्त्रता का अर्थ विदेशी अंकुश से मुक्त होने के सिवा और कुछ नहीं है।"

भारतीय व्यापारियों की सभा में भाषण देते हुए उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में समझाया कि "विदेशी अंकुश से मुक्त होने का क्या अर्थ है।" उन्होंने

कहा, "कांग्रेस इस निश्चित निर्णय पर पहुंची है कि अपनी अर्थ-व्यवस्था पर हमारा पूर्ण अधिकार होना चाहिए। अर्थ-व्यवस्था के इस पूर्णाधिकार विना स्वराज्य-विधान नामधारी कोई भी विधान देश की मांग की पूर्ति न कर सकेगा। आप जानते हैं कि कांग्रेस ने मुझे जो आदेश दिया है, उसका यह एक भाग है कि पूर्ण स्वराज्य का कोई अर्थ न होगा, यदि उसके साथ राजस्व, सेना और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर पूर्णाधिकार न हो। कम-से-कम मैं तो केवल पूर्ण स्वतन्त्रता के सिवा किसी प्रकार के शासन को उत्तरदायी शासन अथवा स्व-शासन नहीं कह सकता—यदि सेना और राजस्व पर हमारा पूर्ण अधिकार अथवा पूरा कब्ज़ा न हो।"

यह बात कि वह पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं, और उससे ज़रा भी कम न लेंगे, गांधीजी को इस कार्य की कठिनाइयों के प्रति विशेष सजग बना देती

कठिनाइयां

हैं। क्योंकि परिषद् प्रतिदिन बहुत मन्द गति से रेंगती हुई चलती है, उन्हें अब यह स्पष्ट हो गया है कि कार्य अत्यन्त दुःसाध्य है। सर अली इमाम के शब्दों में परिषद् राष्ट्र के चुने हुए प्रतिनिधियों की नहीं प्रत्युत पार्लमेण्ट के प्रधान मन्त्री की पसन्द के प्रतिनिधियों की बनी हुई है। प्रधान मन्त्री ने कहा, "मैं अपने आपको बलिदान का बकरा न बनाऊंगा; किन्तु मैं चाहता हूं कि आप सब अपने बलिदान के बकरे बनें।" प्रधान मन्त्री के इन शब्दों में उनके योग्य अनजान मज़ाक था, जिसे यहां के विनोदी पत्रों ने एक कल्पित राक्षस के रूप में कार्टून (व्यंगचित्र) बनाकर अमर कर दिया। परिषद् के मुस्लिम मित्रों के सामने 'राष्ट्रीय मुसलमानों' का नाम तक लेना एक प्रकार का शाप है, और दस वर्ष पहले जिस व्यक्ति को स्वयं उन्होंने गांधीजी से परिचित कराते हुए सम्माननीय और बेशक़ीमती बतलाया था, और जो हमारे सब कठिन समयों में राष्ट्र के साथ खड़ा रहा है, आज मुसलमानों के एक प्रभावशाली दल के विचार प्रकट करने के लिए आवश्यक नहीं समझा जाता। गांधीजी की पूर्ण समर्पण की बात से हिन्दू मित्र भयभीत हैं, और छोटे अल्पसंख्यक वर्गों के नामधारी प्रतिनिधियों को इस समर्पण में अपने हितों के स्वाहा हो जाने का भय है। कोई आश्चर्य

नहीं, यदि गांधीजी का यह वक्तव्य अरण्य-रोदन सिद्ध हो कि जो लोग राष्ट्र-हित-साधन करना चाहते हों वे कोई अधिकार न मांगें, और जो अधिकार चाहते हैं उनके लिए सुविधा कर दें। उन्होंने ज़ोर से कहा—"क्या आप समझते हैं कि यदि मैं इसे हल कर सका तो मैं इस अभागे प्रश्न को झूलता हुआ छोड़ दूंगा और इस प्रकार अपने को संसार के सामने हास्यास्पद बनाऊंगा?"

दूसरी ओर, सरकार की ओर से कोई निर्णायक प्रेरणा नहीं हुई। कदाचित् वह तमाशा देखती रहना पसन्द करती है। जैसा कि गांधीजी ने कल रात लन्दन-निवासी भारतीयों के स्वागत के उत्तर में भाषण करते हुए यह बात सरकार के सामने स्पष्ट कर दी कि, "सरकार ने अपने मन की बात—अपनी योजना—हमारे सामने नहीं रखी है, किन्तु वह समय बहुत तेज़ी से आ रहा है, जब कि उसे किसी-न-किसी तरह अपनी नीति की घोषणा करनी होगी। क्योंकि जो सदस्य छः हज़ार मील दूर अपना घर छोड़कर यहां आये हैं, वे यहां इस प्रकार अपना समय गंवाना बरदाश्त नहीं कर सकते। जिन ब्रिटिश मन्त्रियों और ब्रिटिश जनता के विचार सुधारने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ, मैं जिस क्षण देखूंगा कि उनके साथ अब किसी हद तक समाधान नहीं हो सकता, उसी समय आप मुझे इंग्लैण्ड के किनारे से पीठ फेरते देखेंगे।"

इस सम्बन्ध में मैं गांधीजी के उस पुरज़ोर भाषण की ओर संकेत करूंगा, जो उन्होंने अपनी वर्षगांठ के अवसर पर उनका सम्मान करने के लिए एक चार पांच सौ मित्रों की उपस्थिति में दिया था, और जिसमें इन मित्रों की ओर से श्री फेनर ब्राकवे ने गांधीजी को विश्वास दिलाया था कि यदि निकट-भविष्य में भारत को कोई आंदोलन करना पड़े तो उसमें वे हार्दिक सहायता देंगे। कदाचित् श्री ब्राकवे जानते थे कि हवा का रुख किधर है; और यह उनके भाषण की पारदृश्य एवं मार्मिक शुद्ध अन्तःकरणता का ही कारण था कि गांधीजी को अपने मस्तिष्क के सर्वोच्च विचारों का नहीं प्रत्युत उनके अन्तरतम में गहराई से बैठे हुए भावों का प्रवाह बहाने

के लिए तत्पर होना पड़ा।

किन्तु यदि श्री फेनर ब्राकवे और उनके दल ने अपने आपको वास्तविक मित्र सिद्ध कर दिया है, तो गांधीजी बड़ी तेज़ी से नये मित्र बना रहे हैं, जो आवश्यकता के समय मित्र साबित होंगे और श्री ब्राकवे के बहादुर दल की शक्ति बढ़ावेंगे।

भावी मित्र

यद्यपि झूठे इतिहास की शिक्षा और अखबारों के अत्यन्त हानिकर प्रचार के कारण बहुत अज्ञान फैला हुआ है, फिर भी भारत के सम्बन्ध में सच्ची जानकारी प्राप्त करने के लिए चारों ओर लोग व्यापक इच्छा प्रदर्शित कर रहे हैं और नवयुवकों के अनेक दल गांधीजी से मिलकर कांफ्रेंस या सभा और बातचीत करने की प्रार्थना कर चुके हैं। इनमें आक्सफ़ोर्ड हाउस के सदस्य—आक्सफ़ोर्ड वालों का एक दल उल्लेखनीय है, जो या तो ईस्ट-एण्ड (ग़रीबों का निवास-स्थान) में बस गये हैं, या अपने समय का सर्वोच्च भाग ईस्ट-एण्ड निवासियों की सेवा में लगाते हैं। गांधीजी के संक्षेप में भारत की मांग पेश करने के बाद, शुद्ध भाव से जानकारी के लिए, उनसे कुछ प्रश्न पूछे गए। उनमें से कुछ उत्तर सहित नीचे देता हूं—

प्र०—क्या आप ब्रिटिश अंकुश को एकदम हटा देना चाहते हैं ?

उ०—अवश्य। मैंने धीरे-धीरे हटाये जाने की कभी कल्पना नहीं की। किन्तु इसका अर्थ ग्रेट ब्रिटेन से सर्वथा पृथक्करण नहीं है। यदि ग्रेट ब्रिटेन पूरी साझेदारी करेगा, तो मैं उसे संग्रह कर रखूंगा; किन्तु वह वास्तविक साझेदारी होनी चाहिए, शासन अथवा संरक्षकता के बुर्क़े की ज़रूरत नहीं। मैं जानता हूं कि आपमें से कुछ ईमानदारी के साथ यह मानते हैं कि अंग्रेज़ यदि भारत से हट जायं तो वहां तुरन्त ही अराजकता और खून-खराबी मच जायगी। अच्छा, यदि अंग्रेज़ ऐसा करें तो जिस गड़बड़ एवं अव्यवस्था के पैदा करने में उन्होंने सहायता दी है, उसके दूर करने में भी वे हमारे सहायक हो सकते हैं। जुदी-जुदी जातियों की अधिकांश फूट के लिए वे जिम्मेदार हैं, और समस्त जाति एवं राष्ट्र को नपुंसक बना देने की ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है। और, मैं स्वीकार कर

संक्रमण काल

सकता हूं कि, यदि आप एकदम चले जायं तो सम्भव है हमें कुछ अस्थायी कठिनाइयों का अनुभव हो। किन्तु आपके लिए हमारी सहायता करने का मार्ग खुला हुआ है, वशर्ते कि आप हमारे अधिकार में रहना स्वीकार करें। किन्तु आपके अक्षम्य जातीय अभिमान को कौन जीत सकता है? मैं अपनी राष्ट्रीय सरकार में ब्रिटिश सोल्जर–सिपाही–और अफ़सर खुशी से रख लूंगा, हम उनकी सलाह के अनुसार चलना भी पसन्द कर लेंगे; किन्तु अन्तिम नीति-संचालन का अधिकार हमारा होना चाहिए। यदि आप भारत से अलग हो जायं, और हमें किसी प्रकार की व्यवस्थित सहायता अथवा अनुशासित सेना न भी मिले, तो अपनी अहिंसा में हमारा काफ़ी विश्वास है। मैं नहीं समझता कि जो ब्रिटिश शक्ति और ब्रिटिश सहायता हमपर ज़बरदस्ती लाद रखी गई है, उसके हट जाने से हम ज़िन्दा न रह सकेंगे। इस ज़बरदस्ती लादी हुई शक्ति और सहायता के रहते मैं स्वतन्त्रता का प्रकाश नहीं देख सकता। और यदि आपकी आंखें खोलने के लिए आवश्यक हो, तो मैं चाहता हूं कि स्वतन्त्रता पर मर मिटने के लिए हमें लड़ाई का अवसर मिले। इसका क्या कारण है कि आप अफ़ग़ानों की योग्यता के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं करते? हमारी संस्कृति उनसे हीन नहीं है। अथवा क्या आप यह खयाल करते हैं कि किसीके स्वभाव में खूंख्वारी हुए विना स्वतन्त्रता प्राप्त करना और उसका उपयोग करना कठिन है? अच्छा, यदि हम कायर जाति हैं, तो आप हमें हमारे भाग्य पर जितनी जल्दी छोड़ दें उतना ही अच्छा है। यह अच्छा है कि इस पृथ्वी से कायरों का वोझ हट जाय। किन्तु कायर सदैव के लिए कायर नहीं रह सकते। आप नहीं जानते कि युवावस्था में मैं कितना कायर था, पर आप स्वीकार करेंगे कि आज मैं ज़रा भी कायर नहीं हूं। मेरे उदाहरण का गुणा कीजिए, आप सारे राष्ट्र की कायरता दूर हुई देखेंगे।

प्र०—क्या भारत को ईसाइयों से कुछ लाभ पहुंचा है?

उ०—अप्रत्यक्ष रूप में। मैं इस सम्बन्ध में एक से अधिक वार वोल चुका हूं। कुछ सज्जन ईसाइयों के संसर्ग से हमें अवश्य लाभ पहुंचा है।

हमने उनके जीवन का अध्ययन किया, हम उनके संसर्ग में आये और उन्होंने स्वभावतः ही हमें ऊंचा उठाया। किन्तु पादरियों के प्रचार-कार्य के सम्बन्ध में मुझे सावधानी से बोलना होगा। कम-से-कम मैं जो कह सकता हूं वह यह कि मुझे संदेह है कि उन्होंने हमें किसी तरह लाभ पहुंचाया हो। अधिक-से-अधिक मैं यह कहूंगा कि उन्होंने भारत को ईसाइयत से पीछे हटाया है और ईसाई-जीवन तथा हिन्दू अथवा मुस्लिम-जीवन के बीच दीवार खड़ी कर दी है। जब मैं आपकी धर्म-पुस्तकें पढ़ता हूं, तो मुझे कोई ऐसी दीवार खड़ी नहीं दिखाई देती; किन्तु जब मैं एक प्रचारक पादरी को देखता हूं, तो मेरी आंखों के सामने दीवार उठी हुई दिखाई देती है। क्योंकि मैं एक अर्से तक इनके प्रभाव में आकर्षित रहा हूं, इसलिए मैं चाहता हूं कि आप मेरे इस प्रमाण को स्वीकार करलें। कालेज और अस्पतालों में काम करनेवाले पादरियों ने मन में यह पाप रखकर हमारी सेवा की है कि इन कालेज और अस्पतालों के द्वारा वे लोगों को ईसाई बनाना चाहते थे। मेरी यह निश्चित धारणा है कि यदि आप चाहते हैं कि हम ईसाइयत की महक को अनुभव करें तो आपको गुलाब की नकल करना चाहिए। गुलाब लोगों को इस प्रकार अपनी ओर खींचता है कि उस ओर गये बिना रुक नहीं सकते, और वह अपनी सुगन्धि उन्हें देता है। ईसाइयत की महक गुलाब से भी तीव्र है और इसलिए वह और भी अधिक शान्त और यदि सम्भव हो तो अधिक अदृश्य रूप से फैलाई जानी चाहिए।

ईसाइयों का प्रभाव

शराब तैयार करने के स्थानों की जांच के लिए नियुक्त महत्वपूर्ण शाही कमीशन के सदस्य और मद्य-निषेध के प्रबल प्रचारक श्री कार्टर आज प्रातःकाल घूमने के समय गांधीजी के साथ थे। वह भारत में शराब के व्यवसाय के प्रश्न को समझने और इस उद्देश्य से की जानेवाली सभा के लिए तफ़सील की बातें निश्चित करने आये थे। जिस क्षण उन्होंने उक्त लोगों को गांधीजी को प्रणाम करने के लिए तेजी से आते देखा, उन्होंने कहा—"आप उनके सच्चे प्रतिनिधि हैं

"चचा गांधी"

और वे यह चाहेंगे कि आप यहीं रह जायं।" मिस लेस्टर ने कहा— "वे आपके निर्वाचक मण्डल हैं।" गांधीजी की जन्मगांठ पर मिली हुई बधाइयों में अनेक इन नये मित्रों की भेजी हुई हैं; जिनमें बहुत-से बालक हैं, जिन्होंने साथ में फूल—"अपने साथी"—भेजे हैं और "चचा गांधी" को इस अवसर की मुबारकबादियां दी हैं।

भारतीय विद्यार्थियों की सभा में, जहां गांधीजी बड़ी रात तक मज़ाक और सभ्य व्यंगों से उन्हें ख़ुश करते रहे, विद्यार्थियों ने कई बड़े दिलचस्प सवाल किये। मैं सब तो दे नहीं सकता, किन्तु कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण यहां देता हूं। कुछ उत्तर पहले दिये जा चुके हैं।

संगीन बनाम प्रेम

प्र०—क्या मुसलमानों से एकता की आपकी मांग वैसी ही बेहूदा नहीं है, जैसी कि एकता की मांग सरकार हमसे करती है? ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न का हल रोकने के बजाय आप अन्य सब बातों को क्यों नहीं छोड़ देते?

उ०—आप दुहेरी भूल करते हैं। मैंने जो मुसलमानों से कहा है, उसके साथ सरकार जो हमसे कहती है, उसका मुक़ाबिला करने में आपने भूल की है। ऊपर से देखने में कोई यह ख़याल कर सकता है कि वस्तुतः यह एक ही सी मिसाल है, किन्तु यदि आप गहराई से विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इनमें ज़रा भी समानता नहीं है। ब्रिटिश व्यवहार या मांग को संगीन के बल का सहारा है, जब कि मैं जो कुछ कहता हूं वह हृदय से निकला होता है और प्रेम के बल के सिवा उसका और कोई सहारा नहीं है। एक डाक्टर और एक हत्याकारी दोनों एक ही शस्त्र का उपयोग करते हैं, किन्तु परिणाम दोनों के भिन्न होते हैं। मैंने जो कुछ कहा है, वह यही है कि मैं कोई ऐसी मांग पूरी नहीं कर सकता, जिसका सब मुस्लिम-दल समर्थन न करते हों। मैं केवल बहुसंख्यक वर्ग से ही किस प्रकार संचालित हो सकता हूं? गहरा सवाल तो यह है कि जब एक़ दल के मित्र एक चीज़ मांग रहे हैं, मेरे साथ एक दूसरे दल के साथी हैं, जिनके साथ मैंने इसी चीज़ के

लिए काम किया है और जिनका कुछ अर्से पहले इसी पहले दल के मित्रों ने मुझे अत्यन्त प्रतिष्ठित साथी कार्यकर्त्ता कहकर परिचय कराया था, क्या मैं उनके साथ गद्दारी करने का अपराधी बनूं ?

और आपको यह समझ रखना चाहिए कि मेरे पास कोई शक्ति नहीं है, जो कुछ दे सके। मैंने उनसे सिर्फ़ यही कहा है कि यदि आप कोई सर्व-सम्मत मांग पेश करेंगे तो मैं उसके लिए प्रयत्न करूंगा। रहा जो लोग अधिकार मांगते हैं उन्हें समर्पण कर देने का प्रश्न तो यह मेरा जीवन-भर का विश्वास है। यदि मैं हिन्दुओं को अपनी नीति ग्रहण करने के लिए रज़ामन्द कर सकूं, तो प्रश्न तुरन्त हल हो सकता है; किन्तु इसके लिए मार्ग में हिमालय पहाड़ खड़ा है। इसलिए मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा मूर्खतापूर्ण नहीं है, जैसी कि आप कल्पना करते हैं। यदि केवल मेरे हाथ में कुछ शक्ति होती तो, मैं इस प्रश्न को कदापि इस प्रकार निराधार छोड़कर अपने आपको संसार के सामने अपमानित होने का पात्र न बनाता।

अन्त में, मैं कहूं जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा कोई धर्म नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं हिन्दू नहीं हूं; किन्तु मेरे प्रस्तावित समर्पण से मेरे हिन्दूपन पर किसी प्रकार का धक्का या चोट नहीं पहुंचती। जब मैंने अकेले कांग्रेस का प्रतिनिधि होना स्वीकार किया, मैंने अपने आपसे कहा कि मैं इस प्रश्न का विचार हिन्दूपन की दृष्टि से नहीं कर सकता, प्रत्युत राष्ट्रीयता की दृष्टि से, सब भारतीयों के अधिकार और हित की दृष्टि से ही इसपर विचार किया जा सकता है। इसलिए मुझे यह कहने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि कांग्रेस सब हितों की रक्षक होने का दावा करती है—अंग्रेज़ोंतक के हितों की वह रक्षा करेगी, जबतक कि वह भारत को अपना घर समझेंगे और लाखों मूक लोगों के हितों के विरोधी किसी हित का दावा न करेंगे।

प्र०—आपने गोलमेज़ परिषद् में देशी राज्यों की प्रजा के सम्बन्ध में कुछ क्यों नहीं कहा ? मुझे भय है कि आपने उनके हितों का बलिदान कर दिया।

उ०—वे लोग मुझसे गोलमेज़ परिषद् के सामने किसी शाब्दिक घोषणा की आशा नहीं करते थे, प्रत्युत नरेशों के सामने कुछ बातें रखने की आशा अवश्य रखते थे, जोकि मैं रख चुका हूं। असफल होने पर ही मेरे कार्य की आलोचना करने का समय आवेगा। अपने ढंग से काम करने की इजाज़त तो मुझे होनी ही चाहिए। और मैं देशी राज्यों की प्रजा के लिए जो कुछ चाहता हूं, गोलमेज़-परिषद् वह मुझे दे नहीं सकती। वह मुझे देशी नरेशों से लेना होगा। इसी तरह का प्रश्न हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का है। मैं जो कुछ चाहता हूं, उसके लिए मैं मुसलमानों के सामने घुटने टेक दूंगा, किन्तु वह मैं गोलमेज़-परिषद् के पास नहीं कर सकता। आपको जानना चाहिए कि मैं कुशल एडवोकेट या वकील हूं और कुछ भी हो, यदि मैं असफल हुआ तो आप मुझसे मेहनताना वापस ले सकते हैं।

प्र०—आपने चुनाव के अप्रत्यक्ष तरीके पर अपनी सहमति क्यों प्रकट कर दी? क्या आप नहीं जानते कि नेहरू-रिपोर्ट ने इसे अस्वीकार कर दिया है?

उ०—आपका प्रश्न अच्छा है, किन्तु यह तर्क की भाषा में आपके संदिग्ध मध्य को प्रकट करता है। अप्रत्यक्ष चुनाव को नेहरू-रिपोर्ट में अकेला छोड़ दीजिए। वह एक सर्वथा जुदी वस्तु है। मैं आपको बता देना चाहता हूं कि मैंने जिस तरीके का प्रतिपादन किया है, उसकी नित्य प्रति मुझमें वृद्धि हो रही है। आपको जो कुछ भी समझना चाहिए वह यह है कि यह सर्वथा बालिग़ मताधिकार से बंधा हुआ है, जिसका इसके बिना असरकारक उपयोग नहीं हो सकता। कुछ भी हो, आपके पास भारत की सब बालिग जनता में से स्वयं निर्वाचित ७,००,००० निर्वाचक होंगे। बिना मेरे तरीक़े के यह एक दुःसाध्य और अत्यन्त ख़र्चीला निर्वाचक-मंडल होगा। मेन के शब्दों में प्रत्येक ग्राम्य प्रजातन्त्र अपना मुख़्तियार पसन्द करेगा और उसे देश की सर्वप्रधान व्यवस्थापिका सभा के लिए प्रतिनिधि चुनने की हिदायत करेगा।

कुछ भी हो, यह आवश्यक नहीं है कि जो कुछ इंग्लैण्ड अथवा पाश्चात्य

जगत के लिए उपयुक्त हो, वही भारत के लिए भी उपयुक्त हो। हम पश्चिमी सभ्यता के नक्काल क्यों बनें ? हमारे देश की स्थिति सर्वथा भिन्न है। तब, हमारे चुनाव का हमारा अपना विशेष तरीका क्यों न हो ?

४

काले बादल

भारत के मित्रों की एक खास सभा में, जहां पहली बार ही सब श्रोता-गण ज़मीन पर बैठे थे, पलथी मारकर हमने प्रार्थना की। गांधीजी ने सबसे भारत के लिए और उसके ध्येय की सफलता के लिए प्रार्थना करने को कहा। "जहांतक मनुष्य का प्रयत्न चल सकता है, वहांतक तो मैं अभी असफल होता हुआ ही दिखाई देता हूं। मेरे ऊपर वह बोझ डाला जा रहा है, जिसे उठाने में मैं असमर्थ हूं। जिसके करने के बाद, कुछ भी करने को न रहे और प्रयत्न करने पर भी जिसका कुछ परिणाम न हो, ऐसा यह काम है। परन्तु इसकी कोई पर्वाह नहीं। कोई भी प्रामाणिक और सच्चा प्रयत्न कभी असफल नहीं होता।" अल्पसंख्यक समिति में किये गये इक़रार में भी यही बातें राजनैतिक भाषा में कही गई थीं। ज़हर का प्याला क़रीब-क़रीब पूरा भर गया था। उसे पूरा करने के लिए प्रतिनिधियों में से कुछ लोगों के भाषण और उनका समर्थन करता हुआ प्रधानमन्त्री का भाषण हुआ। सरकार के नामज़द प्रतिनिधि कितना ही विरोध क्यों न करें, जिनके कि प्रतिनिधि होने का वे दावा करते हैं, वे भी गांधीजी के इस विश्लेषण के सच होने के संबन्ध में गम्भीरतापूर्वक शंका नहीं कर सकते हैं—"भारतीय प्रतिनिधियों के चुनाव में ही असफलता का कारण छिपा हुआ है। हम अपने को जिनके प्रतिनिधि मान बैठे हैं, उन दलों के या पक्षों के चुने हुए प्रतिनिधि हम सब नहीं हैं। हम सरकार की पसन्दगी से यहां आये हैं, सब पक्षों को मंजूर हो, ऐसा समझौता करने के लिए जिनकी हाज़िरी यहां होनी चाहिए, वे भी यहां नहीं दिखाई देते हैं। और आप मुझे यह कहने की इजाज़त दें कि अल्पसंख्यक समिति बुलाने का यह समय नहीं था। हमको क्या मिलेगा, यह हम नहीं जानते; और इतने अंश में इसमें सचाई का अनुभव

नहीं होता है। यदि हम यह निश्चय रूप से जानते होते कि हमें जो चाहिए वह मिलेगा, तो इस पापी झगड़े में उसे फेंक देने के पहले हम पचास वार विचार करते।"

और इन शव्दों का विरोध करने के लिए प्रतिनिधियों ने जो कहा उसीसे इनकी सचाई सावित हुई। सर मुहम्मद शफ़ी और डा० अम्वेडकर ने जो कहा वह सरकार के पसन्द किये हुए प्रतिनिधियों के सिवा और कोई नहीं कह सकता था। सर मुहम्मद ने कहा—"हम लोग जिनका कि यह विश्वास हो चुका है कि व्रिटिश कामनवेल्थ से ही भारत का भविष्य वँधा हुआ है, वाहर के न्याय करनेवालों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। उस कामनवेल्थ की प्रधान शाही सरकार ही न्याय करनेवाली हो सकती है, जो इस प्रश्न का अच्छा निर्णय कर सकती है; और वह इस प्रश्न में न्याय करनेवाली वने, इसमें हम पूर्णतया राज़ी हैं।" डा० अम्वेडकर ने कहा—"शासन के तमाम अधिकार अंग्रेज़ों से लेकर भारतीयों को दिये जायँ, इसका दावा करने का दलित वर्गों (अछूतों) ने कोई आन्दोलन नहीं किया, न कोई पुकार मचाई, और न वे उसके लिए आतुर ही हैं।" वह स्पष्टतः यह मानते हैं कि उनकी जाति का हित स्वराज्य-प्राप्त और स्वतन्त्र भारत के वनिस्वत व्रिटिश सरकार के हाथों में ही अधिक सुरक्षित रहेगा।

शून्य आत्मा

अपने सामने इन मित्रों के ऐसे वक्तव्य होने पर प्रधानमन्त्री का काम तो वड़ा आसान हो गया। प्रधान-मन्त्री का भाषण, जिसमें सत्य का अभाव था, सुनकर तो वन्दर और दो विल्लियों की कहानी का एकदम स्मरण होता है। उस व्याख्यान का स्वर, उसके शव्दों का वज़न 'प्रामाणिकता से' और 'मुझमें विश्वास रखिए' के वरावर प्रयोग ने उनकी वाज़ी खुली करदी। "लेकिन मान लो कि मैं सरकार की तरफ़ से आपसे कहूँ और पार्लमेंट ने भी उसको स्वीकार कर लिया कि काम का भार आप ही उठा लें, तो आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप छः इंच भी न जा सकेंगे कि अटक जायँगे।" क्या कभी

विल्ली और वन्दरवाली मसल

सच्चे दिल से यह प्रस्ताव रखा गया था ? इसी भाषण में वह अभिमानपूर्वक कहते हैं, "यह सरकार अपने प्रस्ताव पेश करेगी तो वह आखिरी शब्द होगा, उसी अंश में कि जिस अंश में सृष्टि की परिस्थिति किसीको किसी विषय पर आखिरी शब्द कहने देती है।" ! ! !

जब हम बुरे-से-बुरे परिणाम के लिए तैयार हैं, तो, कुछ भी हो, उसमें हमारी कोई हानि नहीं। इसलिए जब गांधीजी के पास कुछ क्रोध में भरे हुए और कुछ दुःख अनुभव करते हुए मित्र आये, तो उन्होंने उनसे कहा—"यह सब भले के लिए है। हम उस सीमा के निकट आ रहे हैं, जहां से हमारा रास्ता अलग हो जायगा, और पद-पद पर मामला अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है। डा० अम्बेडकर जो कुछ भी कहें, उससे दुःख अनुभव करना या उनपर क्रोध करना तो असम्भव है। क्या आप यह नहीं देखते कि आज सुबह उन्होंने जो कहा, उसमें हमारे पाप (अर्थात् हिंदू समाज के पाप) मूर्त्त होते दिखाई देते हैं।" जब तमाम विवादों का अन्त हो जायगा, और आगे लोग जब बिना किसी जोश-खरोश के भूतकाल की आलोचना कर सकेंगे, तब कदाचित् यह निर्णय स्पष्ट होगा कि गांधीजी से बढ़कर अंत्यजों का और कोई प्रतिनिधि नहीं हो सकता, जिन्होंने कि इन शब्दों में घोषणा करते हुए अपना व्याख्यान समाप्त किया था—"व्यवस्थापिका-सभा में निर्वाचन के अधिकार के बनिस्बत इन लोगों को सामाजिक और धार्मिक संरक्षण की ही अधिक आवश्यकता है। उसने इनका जो अधःपात किया है उसके लिए हरेक विचारशील हिंदू को शर्म आनी चाहिए और उसे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। इसलिए ऊंचे वर्ग के कहे जानेवाले लोगों की तरफ़ से मेरे इन देशवासी भाइयों पर जो सामाजिक अत्याचार होता है, उसे जुर्म करार देने के लिए सख्त क़ानून बनाये जाना मैं पसन्द करूँगा। ईश्वर की यह कृपा है कि हिन्दुओं का अन्तरात्मा हिल उठा है और अब अस्पृश्यता हमारे पापी भूतकाल का स्मरण-मात्र रह जायगी।"

भारत के मित्रोंवाली सभा में गांधीजी ने कहा—"परन्तु यदि मैं ये बेहद कठिनाइयां अनुभव कर रहा हूँ, तो भी, जहांतक मेरे काम

से सम्बन्ध ह, इन परिषद् और समितियों के वाहर मैं अखण्ड आनन्द का ही अनुभव करता हूँ। लोग स्वयं-स्फूर्ति से ही वस्तु-स्थिति को समझ लेते हैं। यद्यपि मैं विलकुल विदेशी हूँ, तो भी मेरा और मेरे काम का वे भला चाहते हैं। वे जानते हैं कि मैं और मेरा काम एक ही है और इसलिए वे, छोटे से लेकर वड़े दर्जे के, सब मुस्कराते हुए मेरा स्वागत करते हैं और मुझे आशीर्वाद देते हैं। और इसलिए मुझे यह आश्वासन मिलता है कि मेरा ध्येय सच्चा है और उसके साधन स्वच्छ और अहिंसक हैं, अतः सव भला ही होगा।"

प्रकाश की एक किरण

विद्वान् तथा वुद्धिमानों में से भी अच्छे-अच्छे लोग गांधीजी से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। श्री ब्रेल्सफ़ोर्ड और श्री लास्की ने गांधीजी के साथ वड़ी देर तक वातचीत की। श्री शा डेस्माण्ड भी उनसे मिले। वातचीत में राजनीति में से, जिसे वह कहते थे कि वह धिक्कारते हैं, वह साफ़ निकल गये और उन्होंने इसी विपय पर वातचीत की कि पश्चिम जिस गहरे दलदल में फँसा हुआ है और जिसमें वह अधिकाधिक डूवता जाता है, उसमें से उसे कैसे निकालें। उन्होंने वच्चों की पढ़ाई के सम्बन्ध में चर्चा की और जव गांधीजी ने उनसे संयम के मूल्य के विपय में अपने जीवन के अनुभव कहे, और यह कहा कि वच्चों के या वड़ों के जीवन में वह कितना वड़ा काम करता है, तो वह वड़े ध्यान से सुनते रहे! उन्होंने पूछा—"वर्तमान अन्धाधुन्धी का कारण क्या है?" गांधीजी ने कहा—"एक का दूसरे को चूसना। कमजोर राष्ट्रों का शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा चूसा जाना मैं न कहूंगा, परन्तु एक राष्ट्र का अपने भाई दूसरे राष्ट्र को चूसना। और मशीन का मेरा मूल विरोध इसी वात पर आधार रखता है कि उसीके कारण एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को चूस सकता है। अपने तईं तो वह निर्जीव वस्तु है और उसका अच्छा और वुरा दोनों उपयोग हो सकते हैं। लेकिन, जैसाकि हम जानते हैं, उसका वुरा उपयोग आसानी से होता है।" श्री डेस्माण्ड ने कहा—"क्या आप यह खयाल नहीं करते कि यहां के लोग ज़रूरत से ज्यादा भोजन पाते हैं? उन्हें कम खाना कैसे खिलाया जाय?" गांधीजी ने हँसते हुए कहा—"परिस्थिति

उन्हें यह सिखायेगी; इन दिनों उन्हें यह अवश्य मालूम हो जायगा कि इंग्लैंड अपनी पुरानी समृद्धि पर फिर नहीं लौट सकेगा। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि आज बहुत से राष्ट्र लूट में उनका हाथ बँटाने के लिए आगे आये हैं। और जब उन्हें यह मालूम हो जायगा तो पहले वे अपनी चादर को देखकर ही फिर अपने पांव पसारेंगे।" श्री डेस्माण्ड ने बड़ा ज़ोर देकर कहा कि "यह संकट बहुत बड़ी बात है, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है।"

उस दिन लन्दन विश्वविद्यालय के संस्कृत के अध्यापक चुपचाप आये, गांधीजी के प्रति अपना आदर प्रकट करने के लिए वह आतुर थे। उन्होंने कहा—"मैं भारत से प्रेम करता हूँ और आपका बड़ा आदर करता हूँ; मेरी सब शुभेच्छाएं आपके साथ हैं।" गांधीजी ने उनसे पूछा—"आप बड़े विद्वान् हैं?" वह मुस्कराये। गांधीजी ने उनका संकोच छुड़ाते हुए कहा—"बिना किसी संकोच के आप कहिए, क्या आप मैक्समूलर के समान बड़े विद्वान् हैं?" उन्होंने कहा, "हां, मुझे अपनी शक्ति में विश्वास है; और यदि मुझे यह विश्वास न होता, तो मैं संस्कृत का अध्यापक बनने की हिम्मत न करता। सारी गीता मेरे कंठस्थ है और उपनिषदों का काफ़ी गहरा अभ्यास मैंने किया है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तयैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

यह मेरा मन्त्र है।"

गांधीजी ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, पर उच्चारण में हम आपको बहुत-कुछ सिखा सकते हैं।"

बात यह है। इस मुलाक़ात में ऐसे अनेक सम्बन्ध जुट रहे हैं। कल एक मित्र कहते थे कि उन्होंने गांधीजी के लेखों को पढ़ा था, परन्तु गांधीजी सचमुच कैसे होंगे, इसका उन्हें ज़रा भी खयाल न था। उन्होंने कहा—"इंग्लैंड की मुलाक़ात के परिणाम, गोलमेज़-परिषद् को छोड़ दें तो भी,

कल्पनातीत होंगे ।"

बेशक, विदेशों के मुलाक़ातियों में सबसे अधिक अमेरिकन ही हैं, और जबसे गांधीजी ने अमेरिका को रेडियो द्वारा सन्देश दिया है तबसे प्रति सप्ताह

अमरीका से— अमरीका से सैंकड़ों पत्र आ रहे हैं । गांधीजी के मुख से ही अहिंसा के सन्देश को सुनकर वे आनन्दित हुए हैं और एक भी पत्र ऐसा नहीं होता, जिसमें उसका उल्लेख न किया गया हो । एक पत्र-लेखक लिखते हैं—"आपका रेडियो-सन्देश महासागर के उस पार से जैसे घंटी बजती हो ऐसा स्पष्ट सुनाई दिया । मैंने उसे आसानी से सुना । आपकी बातों की आध्यात्मिकता और उत्तमता के लिए मैं आपको मुबारिकबाद देता हूँ । हमें तो उसकी अत्यन्त ही आवश्यकता है, क्योंकि हम शांति के गीत गाते हैं । आपसे एक प्रार्थना करता हूँ । क्या आप मुझे यह वाक्य लिख भेजेंगे कि 'खून बहाने से संसार मौत से भी ज्यादा ऊब गया है ।' और उसपर अपने नाम के दस्तखत करेंगे ? मैं उसे आपके ही दस्तखतों में अपने ८ नम्बर के केलेण्डर में निकालना चाहता हूँ । यह दिन युद्धविराम-दिन के पहले का रविवार है ।"

एक आयरिश मित्र ने कहा—"हम आप ही के जैसे हैं । हमें भय है कि अभी आप चौखट के पास ही हैं और अभी आपको बहुत कुछ कष्टों में

आयलैंण्ड से— से गुजरना होगा । इसलिए आप जरूर आवें और जो राष्ट्र भारत जैसी ही स्थिति में है और जिसे उसके जितना ही चूसा और विनष्ट किया गया है उससे भेंट करें । डबलिन की ग़रीबी के उदाहरण से मैं आपको आयर्लैण्ड की गरीबी का खयाल कराऊँगा । उस छोटे शहर में ही कम-से-कम २८,००० ऐसे घर हैं, जो मनुष्यों के रहने लायक़ नहीं हैं । पैदावार बहुत होने पर भी हमारे किसान बहुत ग़रीब हैं । आप जरूर आइए और हमारी स्थिति का अध्ययन कीजिए ।"

वर्नर जिमरमैन एक स्विस हैं, तो भी वह 'ताऊ' नामक एक जर्मन मासिक-पत्र के सम्पादक हैं । उसमें वह अहिंसा के तत्त्वज्ञान और राजनीति की व्याख्या और चर्चा करते हैं । उन्होंने कहा—"फ्रेंकफुर्त के पास पाल और

एडिथ गेहीव का एक स्कूल है, जिसमें कई जुदी-जुदी जगह और जाति के

जर्मनी से— २०० वच्चे हैं। वे प्रति सप्ताह 'यंग इंडिया' पढ़ते हैं और आपके तमाम जीवन के कार्यों में आपसे सहमत हैं। हम अपने ही जीवन के उदाहरण से उन्हें अहिंसा का तत्व सिखाने का प्रयत्न करते हैं। जिस कार्य के लिए आप ईश्वर के हाथ में सवसे वड़े हथियार हैं उस कार्य में लगे हुए कई कार्यकर्त्ता आपको वहां मिलेंगे। यहां आप जवतक रहें तवतक के लिए हम यह स्कूल आपके सिपुर्द कर देंगे। और अपने साथ आप अपने भारतीय कार्यकर्त्ताओं को भी लावेंगे तो हमें वड़ा आनन्द होगा। रोम्यां रोला और दूसरे मित्र जो यूरोप में और खासकर जर्मनी में आपके आदर्शों का प्रचार करते हैं, उन्हें आने के लिए और आपसे मुलाक़ात करने के लिए हम कहेंगे।"

हैमवर्ग से कुछ मित्र तार द्वारा कहते हैं—"मिशनरी की हैसियत से हमने भारत की आत्मा को समझने का प्रयत्न किया है। आपके (गांधीजी के) वारे में जो कुछ भी मिला वह सव पढ़ चुकने के वाद, ईसाई होने के कारण, हम आपसे सम्वन्ध जोड़ना चाहते हैं। हमारे जीवन में यह वड़े महत्व की वात होगी। क्या आपकी पुस्तकें पढ़ने के वनिस्वत अधिक निकट का सम्वन्ध जोड़ना सम्भव हो सकेगा? क्या हम आपसे कभी किसी जगह मिल सकते हैं?"

और मेडम मांटिसोरी की गांधीजी से जो मुलाक़ात हुई उसे मैं कैसे भुला सकता हूं? गांधीजी ने उनका स्वागत करते हुए कहा, 'हम एक ही कुटुम्व के हैं।' मैडम मांटिसोरी ने कहा, 'मैं आपका वच्चों की तरफ़ से स्वागत करती हूं।' गांधीजी ने कहा, "आपके वच्चे तो मेरे भी वच्चे हैं। हिन्दुस्तान में मित्र लोग मुझे आपका अनुकरण करने को कहते हैं। मैं उनसे कहता हूं, 'नहीं'। मुझे आपका अनुकरण नहीं करना चाहिए, परन्तु आपको और आपके तरीक़े के अन्तर्गत सत्य को पचा जाना चाहिए।" मैडम मांटिसोरी ने मीठी इटालियन भाषा में, जिसका अर्थ दुभाषिये ने गांधीजी को समझाया, कहा—"जैसा कि मैं गांधीजी के हृदय को पचा जाने के लिए

अपने बच्चों को कहती हूं ।" कृतज्ञतापूर्वक उन्होंने कहा—"मैं जानती हूं कि यहां की बनिस्वत आपकी तरफ़ की दुनिया में मेरे प्रति अधिक भाव है ।" गांधीजी ने कहा—"हां, यूरोप के बाहर भारत में सबसे अधिक लोग आपके पक्ष में हैं ।" एकाएक मेडम मांटिसोरी को जमु दानी का स्मरण हो आया, और उन्होंने कहा कि मैं उन्हें अपना भारतीय पुत्र कहना पसन्द करती हूं । अस्तु, उन्होंने एक दिन अपने अंग्रेज बच्चों को लेकर फिर आने का वायदा किया है ।

५

यह स्मरण होगा कि गांधीजी ने अल्पसंख्यक समिति में समझौते की निष्फलता के सम्बन्ध में जो व्याख्यान दिया वह चर्चा में दूसरी महत्व की बात थी । संघ-योजना-समिति का उनका व्याख्यान पहली बात थी । इस व्याख्यान ने कुछ बड़े-बड़े लोगों को सचेत कर दिया है, परन्तु इससे उन्हें यह विश्वास भी हो गया है कि गांधीजी किसी भी कारण से बात पर परदा नहीं डालेंगे । 'मैंचेस्टर गार्जियन' जैसे पत्र भी यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि अल्पसंख्यक समिति संघ-योजना-समिति के विचार-कार्य के बीच में बिना किसी आवश्यकता के ही घुसा दी गई थी, और क़ौमी अर्थात् साम्प्रदायिक प्रश्न को अत्यधिक महत्व दिया गया था । जिनका इससे सम्बन्ध था उन्हें यह समझाने में कि गांधीजी ने सच्चे दिल से यह कहा था कि सरकार को अपनी बाज़ी खोल देनी चाहिए, यह उनका फ़र्ज है, उनका एक सप्ताह चला गया ।

साम्प्रदायिक प्रश्न

यहां कुछ सवाल-जवाब दिये जाते हैं :

प्र०—यदि सब बातों से क़ौमी प्रश्न का अधिक महत्व नहीं है, तो आपने ही एक समय यह क्यों कहा था कि जबतक यह प्रश्न हल न हो जायगा, आप गोलमेज-परिषद् में जाने का विचार भी न करेंगे ?

उत्तर—"आप ठीक कहते हैं । परन्तु आप यह भूल जाते हैं कि भारत में मेरे अंग्रेज मित्र और दूसरे मित्रों ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि

मुझे जाना ही चाहिए और मैं दब गया। मुझे यह भी समझाया गया कि लार्ड इरविन को दिये गए वचन की रक्षा करने के लिए भी मुझे जाना चाहिए। अब यहां मैं अपने को उन लोगों के सामने पाता हूं, जो राष्ट्रवादी नहीं हैं और केवल साम्प्रदायिक होने के कारण ही चुने गए हैं। इसलिए मैंने कहा कि निर्णय न कर सकना यद्यपि हमारे लिए शरम की बात है, फिर भी इसका कारण तो इस समिति के सदस्य जिस तरह चुने गये हैं उसीमें है। स्थिति ऐसी अस्वाभाविक है कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसमें ऐसे लोग हैं, जो किसी क़ौम के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं परन्तु यदि वे भारत में होते और उस क़ौम का मत लिया जाता तो वह उन्हें अस्वीकृत कर देती।''

प्र०—अस्पृश्यों के विषय में क्या बात है? डा० अम्बेडकर आपपर बहुत बिगड़े थे और कहा था कि कांग्रेस को अस्पृश्यों के प्रतिनिधि होने का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है?

उ०—आपके इस प्रश्न से मुझे बड़ी खुशी हुई। डा० अम्बेडकर के बोलने का मैं कुछ खयाल नहीं करता। डा० अम्बेडकर को, जैसे हरेक अस्पृश्य को भी, मुझपर थूकनेतक का अधिकार है। और वह मुझपर थूकें तो भी मैं हंसता ही रहूंगा। परन्तु मैं आपको बताना चाहता हूं कि डा० अम्बेडकर देश के उसी एक भाग की तरफ़ से बोलते हैं जिसमें कि वे रहते हैं। हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की तरफ़ से वे नहीं बोल सकते। मुझे देश के कई भागों से अस्पृश्यों की तरफ़ से असंख्य तार मिले हैं, जिनमें उन्होंने डा० अम्बेडकर को अपना प्रतिनिधि मानने से इन्कार किया है और कांग्रेस में अपना पूरा विश्वास प्रकट किया है। इस विश्वास का कारण है। कांग्रेस उनके लिए जो काम करती है उसे वे जानते हैं, और वे यह भी जानते हैं कि यदि उनकी आवाज़ सुनाने में वे सफल न होंगे तो उनकी तरफ़ से मैं उनके सत्याग्रह-युद्ध का अगुआ बनूंगा और हिन्दुओं के विरोध को, यदि ऐसा कोई विरोध हुआ तो, ठण्डा कर दूंगा। दूसरी तरफ़, जैसा कि डा० अम्बेडकर मांग रहे हैं, अगर उन्हें खास चुनाव का हक़ दिया जाय तो उससे उस क़ौम

को ही बड़ी हानि पहुंचेगी। इससे हिन्दू जाति दो सशस्त्र छावनियों में बंट जायगी और उससे अनावश्यक विरोध ही बढ़ेगा।

प्र०—मैं आपकी बात को समझता हूं। और इसमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं कि आप न्यायतः अस्पृश्यों की तरफ़ से बोल सकते हैं। परन्तु, मालूम होता है, आप इस बात पर ध्यान नहीं देते कि दुनिया में सब जगह सब क़ौमें अपने लोगों को ही अपना प्रतिनिधि बनाने का आग्रह रखती हैं। उत्तर के एकनिष्ठ उदार मतवाले मज़दूरों के सच्चे प्रतिनिधि बन सकते हैं, परन्तु वे अपने लोगों में से ही अपने प्रतिनिधि भेजना पसन्द करते हैं। और आपके विरुद्ध जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि आप अस्पृश्य नहीं हैं।

उ०—मैं यह अच्छी तरह जानता हूं। परन्तु मैं उनका प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। इसके यह मानी नहीं हैं कि मैं व्यवस्थापिका सभाओं में भी उनका प्रतिनिधि बन कर जाऊंगा। किसी तरह नहीं। व्यवस्थापिका-सभा में तो मैं यही चाहूंगा कि उन्हींमें से कोई उनका प्रतिनिधि बन कर आवे; और यदि वे रह जायंगे, तो मैं उनके लिए ऐसा क़ानून चाहूंगा कि चुने गए सदस्य ऐसे प्रतिनिधियों का क़ानूनन सहयोग प्राप्त करें। जब मैं उनके प्रतिनिधि होने की बात कहता हूं तब मैं गोलमेज़-परिषद् के प्रतिनिधि की बात कहता हूं। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि किसी को हमारे इस दावे से इन्कार हो तो मैं ख़ुशी से मत-गणना का सामना करूंगा और उसमें सफल होऊंगा।

प्र०—मुसलमानों के बारे में भी आप जो कुछ कहेंगे, उपर्युक्त दृष्टि से, वह सुनने में भी आनन्द आवेगा। आप यह तो नहीं कहते कि जो मुसलमान यहां हैं वे अपनी क़ौम के प्रतिनिधि नहीं हैं ?

उ०—वे चुने नहीं गये हैं, और मैं आपसे यह कहता हूं कि मैंने सच्चे राष्ट्रवादी मुसलमानों को दूर रहने को कहा है। मैं दो का ही नाम लेता हूं, एक श्री ख्वाजा, दूसरे श्री शेरवानी। इन-जैसे युवक नेताओं की एक बहुत बड़ी संख्या है। मेरा इनसे परिचय उन्हीं लोगों के ज़रिये हुआ था

जो आज कांग्रेस के विरोध में खड़े हुए हैं। ये तरुण नेता सांप्रदायिक हल के खिलाफ़ हैं। मैं खुद तो मुसलमानों को जो कुछ भी वे मांगते हैं देने को तैयार हूं और हिन्दुओं को और सिखों को मेरे साथ सहमत होने के लिए समझाने को मैं आधी रात तक जागा हूं, किन्तु मैं असफल हुआ। यदि सिख, सिखों के द्वारा चुने गए होते और सरकार के पसन्द किये न होते, तो क्या आप खयाल करते हैं कि मैं असफल हुआ होता? मास्टर तारासिंह यहां होते। मैं उनके विचारों को जानता हूं; श्री जिन्ना की १४ मांगों के सामने उनकी १७ मांगें हैं। परंतु मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें समझा लेता, क्योंकि आखिर को वे हाथ-में-हाथ मिलाकर काम करनेवाले साथी ही तो हैं। वर्तमान परिस्थिति में समझौता करने में यदि हम असफल हुए तो क्या यह कोई आश्चर्य की बात है? इसीलिए तो मैंने यह कहा कि पहले ही हमारे मार्ग में प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं और अब यह कहकर कि शासन-विधान की रचना के प्रश्न का निर्णय होने के पहले सांप्रदायिक प्रश्न का निर्णय होना चाहिए, हमारे मार्ग में और अधिक रुकावटें मत डालिए। मैं उनसे कहता हूं कि हमें यह जान लेने दो कि मिलेगा क्या, ताकि उसीके आधार पर मैं इस बेमेल चुने हुए मंडल में एकता लाने का प्रयत्न करूं। ईश्वर के लिए हमारे पास कोई ठोस बात होने दो। हमारे धनुष की यह दूसरी डोरी होगी और वह मामले को हल करने में मदद करेगी, क्योंकि फिर मैं उनसे यह कह सकूंगा कि वे एक बड़ी कीमती चीज़ का नाश कर रहे हैं। परन्तु आज मैं उनके सामने कुछ भी नहीं रख सकता हूं। मसला हल न भी हो तो मैंने खानगी पंच, न्यायधिकरण आदि कई मार्ग सूचित किये हैं।

प्र०—तो इससे क्या मैं यह समझ लूं कि आप क़ौमी प्रश्न को अधिक महत्व नहीं देते हैं?

उ०—मैंने यह कभी नहीं कहा। मैं यह कहता हूं कि मुख्य बात जिसपर खास ज़ोर देना चाहिए था, उसे इस प्रश्न के द्वारा दब जाने दिया गया है।

सेवॉय-होटल में अमरीका के पत्रकारों की तरफ़ से गांधीजी को बात-

चीत करने के लिए आमंत्रण दिया गया था और उसके उपलक्ष्य में एक निरामिष भोज का आयोजन किया गया था। वहां गांधीजी से सबसे अधिक सीधे प्रश्न पूछे गये। भोज सर्वथा निरामिष था (उसमें मांस, मच्छली, अंडे कुछ नहीं थे) यह इस अवसर के योग्य बात थी, और गांधीजी ने इसे सूक्ष्म विवेक का नाम दिया। पत्रकारों ने उनके व्याख्यानों की कितनी ग़लत रिपोर्ट भेजी और एक बार तो उनकी ऐसी ग़लती के कारण कैसे उनकी जान पर आ पड़ी थी, यह कहकर उन्होंने कुछ मिनटों तक उन्हें आनन्दित किया। उन्होंने उनसे सत्य, सम्पूर्ण सत्य और केवल सत्य को ही कहने की सिफ़ारिश की और उनके प्रश्नों के जवाब दिये। वे शायद साधारण और सर्व-जनसाधारण के हित के प्रश्न ही पूछेंगे, ऐसा ख़याल होता था; परन्तु वे लोग जिस परिस्थिति में थे, उसका उनपर इतना गहरा असर था कि वे इससे बाहर निकल नहीं सकते थे।

प्र०—आप परिणाम में सफलता की आशा रखते हैं?

उ०—मैं आशावादी हूं, इसलिए कभी आशा नहीं छोड़ता। परन्तु मुझे यह कहना चाहिए कि मसले को हल करने के बारे में बम्बई में जो बात थी, उससे मैं कुछ भी आगे नहीं बढ़ सका हूं। उसमें बड़ी कठिनाइयां हैं। जो वातावरण आज यहां पाया जाता है, उसमें कांग्रेस की मांगें बहुत बढ़ी हुई मानी जा सकती हैं, यद्यपि मैं ऐसा ख़याल नहीं करता।

प्र०—इस कठिनाई में से निकलने का कोई उपाय नहीं है?

उ०—कई उपाय हैं। परन्तु जिन लोगों का इनसे सम्बन्ध है वे उन्हें ग्रहण करेंगे या नहीं मैं यह नहीं जानता। हम लोगों से यह कहा गया है कि शासन-विधान का प्रश्न साम्प्रदायिक प्रश्न के हल होने पर आधार रखता है। यह सच नहीं है; और मेरा ख़याल है कि इस तरह बात को उलटी करके कहने से ही प्रश्न को अधिक कठिन बना दिया गया है और उसे सर्वथा कृत्रिम महत्व दिया गया है। और क्योंकि इसीको मूलाधार बनाया गया है, इसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले पक्षों का ख़याल है कि उन्हें अपनी मांगें जितनी वे बढ़ा सकें उतनी बढ़ाकर रखनी चाहिएं। इस तरह हम बुरी तरह

गोल-गोल फिर रहे हैं और समझौते का काम अधिकाधिक मुश्किल होता जाता है। मैं इन दोनों प्रश्नों में कोई सम्बन्ध नहीं देखता हूं। सांप्रदायिक प्रश्न हल हो या न हो, भारत स्वतन्त्र होगा ही। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद बेशक हमारे लिए बड़ा कठिन समय आवेगा। परन्तु इस प्रश्न के लिए स्वतन्त्रता रोकी नहीं जा सकती। क्योंकि जैसे ही हम उसके लायक़ होंगे स्वतन्त्रता हमें मिल जायगी। और उसके लायक होने के मानी हैं उसके लिए काफ़ी कष्ट उठाना, स्वतन्त्रता के कीमती इनाम के लिए उसकी बड़ी क़ीमत देना। परन्तु यदि हमने उसके लिए कष्ट नहीं उठाया है, उसकी कीमत नहीं चुकाई है, तो यह प्रश्न हल होगा तो भी इससे हमें मदद न मिलेगी। यदि हमने काफ़ी कष्ट उठाया है, काफ़ी बलिदान किया है, तो कोई दलील या समझौते की आवश्यकता न होगी। हमने काफ़ी कष्ट उठाया है, इसका निर्णय करनेवाला मैं कौन हूं? यह समझकर कि हमने काफ़ी कष्ट उठाया है, मैं यहां आया और यहां आने के लिए मुझे ज़रा भी दुःख नहीं है, क्योंकि मैं देखता हूं कि मेरा काम तो परिषद् के बाहर है। और इसीलिए मैं अपना समय भरा हुआ होने पर भी यहां आने को राज़ी हुआ, क्योंकि इसे भी मैं अपने काम का ही एक अंग मानता हूं।

प्र.—इंग्लैण्ड के चुनाव के कारण आपका कार्य मुश्किल नहीं होगा?

उ.—नहीं होना चाहिए। यदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह समझ जायं कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड में, अहिंसात्मक ही क्यों न हो, लड़ाई होने पर आर्थिक स्थिति अधिक कठिन हो जायगी, तो वे उनके चुनाव को हमारे प्रश्न को हल करने में बाधा-रूप न होने देंगे। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि यदि हिन्दुस्तान की मांग पूरी नहीं की गई तो उनके माल का भयंकर बहिष्कार होगा और भारत में उसके शीघ्र नाश होनेवाले व्यापारी हित पर ही ग्रेट ब्रिटेन को अपना तमाम ध्यान लगाना होगा। इसके बदले यदि दोनों में सम्मानपूर्ण साझेदारी हुई तो अपने मामलों को सुधारने का उसे अधिक समय मिलेगा। परन्तु हमारे मार्ग में एक और बड़ी कठिनाई है। जबतक बन्दूक से हिन्दुस्तान को कब्ज़े

ब्रिटेन के हित में

में रखा जायगा, तबतक ब्रिटिश सचिव भारत के भूखों मरनेवाले लोगों के प्रति अपनी भूखी नजर डालेंगे ही, और भारत में एक तोला भी सोना-चांदी रहने तक उसे वहां से खींच लाने के लिए नये-नये साधन तैयार करेंगे—दुष्ट बुद्धि से नहीं, परन्तु आवश्यकता से मजबूर होकर। क्योंकि जब देश में बेकारी और अन्नादि का अभाव हो, और जब किसी जगह से मदद मिल सकती हो, तो चाहे वह दूसरे देश को चूसकर ही क्यों न हो, ऐसे समय में आप राजनीतिज्ञों से न्याय की तराजू में हरेक बात को तौलने की और शुद्ध नीति के अनुसार व्यवहार करने की आशा नहीं रख सकते। उससे वे भारत की मुद्रा को घटाने-बढ़ाने जैसे अनेक साधनों का उपयोग करने पर मजबूर होंगे। इससे कुछ समय के लिए उनका दुःख दूर होगा, परन्तु अन्तिम विनाश के आने में अधिक देर न लगेगी।

गॉवर स्ट्रीट में हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में भारतीय वातावरण था। भारत के राष्ट्रीय गीत और वन्देमातरम् हमने यहां पहली बार ही सुने। वातावरण अनुकूल था, इससे हमने सभा में ही प्रार्थना की। सभा में पूर्ण गौरव और शोभा थी। दूसरी सभा में गोल्ड कोस्ट के एक हबशी

विद्यार्थियों के साथ

विद्यार्थी एक रूसी विद्यार्थी एक कोरिया के विद्यार्थी और एक अंग्रेज़ विद्यार्थी ने प्रश्न पूछे थे। यदि समय होता तो और विद्यार्थी भी पूछते। विद्यार्थियों में सत्य की शोध का भाव था, यह इस सभा की विशेषता थी। इसका गांधीजी पर बड़ा अच्छा असर पड़ा; उन्होंने अपना हृदय खोल दिया और वर्त्तमान उद्योगप्रधान युद्ध में आत्मा को हिला देनेवाले प्रेम और सत्य के रहस्य के सन्देश दिये। इन दोनों सभाओं में उनको ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह अपने प्रिय पुत्रों के बीच हों। वहां उन्होंने यह महसूस किया कि उनको कोई ऐसा सन्देश देना चाहिए, जिसे वह अपने हृदय में रखे रहें और उसको अपने जीवन के व्यवहार में लावें। इस प्रवचन की प्रस्तावना के रूप में उन्होंने सत्याग्रह-युद्ध की विशेषताएं बताते हुए स्पष्ट किया कि किस प्रकार कांग्रेस ने दूसरों पर प्रहार करके चोट पहुंचाने का सदियों पुराना तरीक़ा छोड़कर स्वतन्त्रता

प्राप्ति के लिए स्वयं अपने पर प्रहार सह लेने का रास्ता अख्तियार किया है, और कष्ट-सहन की एक मंज़िल तय कर लेने के वाद देश ने उन्हें इस आशा से अपना एक मात्र प्रतिनिधि वनाकर भेजा है कि "भारत ने जो कष्ट-सहन किया है, उसका व्रिटिश मन्त्रियों पर और आमतौर पर व्रिटिश जनता के मन पर काफ़ी असर हुआ है, और इसलिए अव दलील, तर्क, वाद-विवाद और समझौते के लिए कुछ जगह रही होगी," और इसलिए किस प्रकार वह भारत में भयंकर परिणाम वाले उत्पात को रोकने के लिए अपनी शक्ति-भर उपायों का अवलम्वन कर रहे हैं। इस सवके वाद जो वाक्य उनके मुंह से निकले, उससे अविक हृदय-भेदक दूसरी वात क्या हो सकती है?

एक आशा

गोलमेज-परिषद् के वाहर वे जो काम कर रहे हैं, उसके सम्वन्ध में वोलते हुए उन्होंने कहा—"यह हो सकता है कि इस समय जो वीज वोये जा रहे हैं, उनके फलस्वरूप अंग्रेजों के दिल नरम हों और मनुष्यों का पशु वनना रुक जाय। पंजाव में अंग्रेज़ों के विकराल स्वभाव का मुझे अनुभव हो चुका है। इसके सिवा पन्द्रह वर्ष के अनुभव और इतिहास द्वारा अन्यत्र भी ऐसी ही वातों के होते रहने का परिचय मुझे मिल चुका है। मेरा यह संकल्प है कि मैं अपनी शक्ति-भर सव प्रकार के उपायों से इस प्रकार की आपदाओं की पुनरावृत्ति को रोकूं। मेरे अपने देशवन्धुओं को कष्टों से वचाने की अपेक्षा मानव-स्वभाव को पशु-स्वभाव वनने से रोकने की मुझे अविक चिन्ता है। अपने देशवन्धुओं के कष्टों को देखकर तो मैं कई वार हर्षोन्मत्त हो गया हूं। मैं जानता हूं कि जो लोग स्वेच्छा से कष्ट सहन करते हैं, वे अपने को और समस्त मानव-जाति को ऊंचा उठाते हैं; किन्तु मैं यह भी जानता हूं कि जो लोग अपने विरोधी पर विजय प्राप्त करने अथवा दुर्वल राष्ट्रों अथवा निर्वल मनुष्यों को लूटने के उद्दण्ड प्रयत्न में पशु-समान वन जाते हैं वे न केवल स्वयं ही गिरते हैं, प्रत्युत मानव-समाज को भी गिराते हैं। और मनुष्य-स्वभाव को पतित हुआ देखने में मुझे अथवा अन्य किसी को आनन्द

हो नहीं सकता। यदि हम सब एक ही प्रभु के पुत्र हैं, और यदि हम सबमें एक ही ईश्वर का अंश है, तो हमें प्रत्येक मनुष्य के—फिर वह सजातीय हो अथवा विजातीय—पाप का भागीदार होना ही चाहिए। आप समझ सकते हैं कि किसी मनुष्य के हृदय में पाशविक वृत्ति को जगा देना कितना अप्रिय एवं दुःखद कार्य है, तब फिर अंग्रेजों में, जिनमें कि मेरे अनेक मित्र हैं, इस वृत्ति को जगाना तो और भी कितना अधिक दुःखद होगा? इसलिए मैं जो प्रयत्न कर रहा हूं, उसमें आपसे जितनी हो सके उतनी सहायता करने की मैं आपसे याचना करता हूं।

"भारतीय विद्यार्थियों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रश्न का पूरी तरह से अध्ययन करें। यदि सत्य और अहिंसा की शक्ति पर आपका सचमुच विश्वास हो तो ईश्वर के नाम पर इन दोनों को—केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं—अपने दैनिक जीवन में प्रकट करें, और आप देखेंगे कि इस दिशा में आप जो-कुछ भी करेंगे, उससे मुझे आन्दोलन में मदद मिलेगी। यह सम्भव है कि आपके निकट सम्पर्क में आनेवाले अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष संसार को यह विश्वास दिलावें कि भारतीय विद्यार्थी जैसे भले और सत्यनिष्ठ विद्यार्थी उन्होंने कभी नहीं देखे। क्या आप नहीं समझते कि इससे हमारे देश की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ जायगी? सन् १९२० की कांग्रेस के एक प्रस्ताव में 'आत्म-शुद्धि' शब्द आये थे। उसी क्षण से कांग्रेस को यह अनुभव हुआ कि हमें अपने आपको शुद्ध करना है। हमें आत्म-बलिदान के द्वारा शुद्ध बनना है, जिससे कि हम स्वतन्त्रता के अधिकारी बन सकें और ईश्वर हमारे साथ रहे। यदि ऐसा हो तो प्रत्येक भारतीय, जिसके जीवन से आत्म-बलिदान की शिक्षा मिलती हो, बिना कुछ अन्य कार्य किये स्वदेश की सेवा करता है। यह मेरे मत से कांग्रेस के स्वीकृत साधन की शक्ति है। इसलिए स्वतन्त्रता के युद्ध में यहां के प्रत्येक विद्यार्थी को इसके सिवा और कुछ अधिक करने की आवश्यकता नहीं कि वह स्वयं शुद्ध हो और अपने चरित्र को आक्षेप अथवा सन्देह से ऊंचा उठावे।"

पाठक देखेंगे कि गांधीजी को हमारे आत्म-बलिदान-रूपी बहती गंगा की झांकी अधिकाधिक होती आती है, और कोई सभा ऐसी नहीं होती कि जिसमें वे अपने हृदय के गम्भीर गह्वर में सुनाई देनेवाली भावी तूफ़ान की गर्जना श्रोताओं को न सुनाते हों।

नेशनल लेबर क्लब की ओर से की गई स्वागत-सभा में गांधीजी से पूछा गया—"क्या आप उग्र राष्ट्रवादी की प्रवृत्ति प्रकट नहीं करते ? और क्या आप नहीं समझते कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए दस लाख प्राणों का बलिदान कर देना ख़तरनाक आदर्श होगा ?"

आज़ादी का मूल्य

उ.—मैं नहीं समझता कि अपने निज के जीवन का बलिदान करना कोई ख़तरनाक आदर्श है, और इन बहुमूल्य प्राणों का बलिदान तो वह देश करेगा, जिसे ज़बरदस्ती अनिवार्य रूप से शस्त्र-त्याग करना पड़ा है। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत अहिंसा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है और इसलिए किसी दूसरे के प्राण लेने का वहां कोई प्रश्न ही नहीं है। हम अपने प्राणों को इतना सस्ता या फ़ालतू नहीं समझते कि व्यर्थ के लिए उन्हें गंवा बैठें; किन्तु साथ ही हम अपने प्राणों को स्वयं स्वतंत्रता से महंगा नहीं समझते, इसलिए यदि हमें दस लाख प्राणों का भी बलिदान करना पड़े तो हम कल ही करने को तैयार होंगे और इसपर आकाश में से ईश्वर यही कहेगा—'शाबाश, मेरे पुत्रो, शाबाश !' हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके विपरीत आप साम्राज्यवादी प्रकृति के लोग हैं। आपको दूसरे को भयभीत करने की आदत पड़ी हुई है। भूतपूर्व जनरल डायर से जब हण्टर-कमीशन ने पूछा, तो जवाब में उसने कहा था—"हां, मैंने यह भयभीतपन—आतंक—जान-बूझकर पैदा किया था।" मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि यह आतंक दिखाने की शक्ति अकेले डायर में न थी। हम इस क्रिया को उलट कर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के प्रयत्न में अपने-आपको बलिदान कर सकते हैं। यदि ब्रिटिश राष्ट्र की इज़्ज़त के रक्षक आप लोग इस अनर्थ से उसे बचा सकें तो इसे बचाना आपका धर्म है।

प्र.—क्या आपको स्वतन्त्रता देना हमारी भूल न होगी ?

उ०—मेरा ख़याल है कि यदि आप किसी को स्वतन्त्रता दें तो आपकी भूल होगी और इसलिए कृपाकर यह स्मरण रखिये कि मैं स्वतन्त्रता की भिक्षा मांगने नहीं आया हूं, प्रत्युत पिछले वर्ष के कष्ट-सहन के परिणामस्वरूप आया हूं। और इस कष्ट-सहन के अन्त में ऐसा अवसर आया, जिससे हम भारत छोड़कर यहां यह देखने के लिए आये हैं कि हमने अपने कष्ट-सहन द्वारा अंग्रेज़ों के मन पर काफ़ी असर डाला है या नहीं, जिससे कि मैं सम्मानपूर्ण समझौते के साथ जा सकूं। किन्तु यदि मैं किसी सम्मानपूर्ण समझौते के साथ जाऊं, तो मैं इस विश्वास के साथ नहीं जाऊंगा कि मुझे इस राष्ट्र से कोई दान मिला है। कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को स्वतन्त्रता का दान नहीं दे सकता। वह तो अपना खून देकर ही प्राप्त करनी अथवा खरीदनी पड़ती है, और मैं समझता हूं कि जो क्रिया सन् १९१९ से अपने आप चल रही है उसमें हम अपना खून काफ़ी दे चुके हैं। किन्तु यह हो सकता है कि ईश्वर की कृपालु दृष्टि में अभी ऐसा प्रतीत होता हो कि आत्म-शुद्धि की क्रिया में हम अभी पूरे नहीं उतरे। अतः मैं यहां इस वात की साक्षी देता हूं कि जवतक कोई भी अंग्रेज़ भारत में शासक की तरह रहना अस्वीकार न करेगा, हम आत्म-वलिदान की इस क्रिया को वरावर जारी रखेंगे।

प्र.—कहा जाता है कि लार्ड अर्विन ने सेण्ट्रल-हाल में भाषण देते हुए कहा था कि वह जानते थे कि आप पूर्ण स्वराज्य का आग्रह न करेंगे। क्या यह वात ठीक है ?

उ.—पहली वात तो यह है कि मैं नहीं जानता कि लार्ड अर्विन के जिस भाषण की वात कही जाती है, वह उन्होंने दिया भी या नहीं। दूसरे, मुझे लार्ड अर्विन की ओर से वोलने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह प्रश्न तो उन्हींसे पूछा जाय तो अच्छा हो। किन्तु मैंने लार्ड अर्विन से यह कभी नहीं कहा कि मैं पूर्ण स्वतन्त्रता का आग्रह नहीं करूंगा। इसके विपरीत, यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा अच्छी तरह साथ देती हो, तो मैंने उनसे कहा

या कि मैं पूर्ण स्वतंत्रता का आग्रह करूंगा, और मेरे लिए इसका यह अर्थ नहीं कि अंग्रेज़ नौकरों की जगह भारतीय नौकरों द्वारा शासन-कार्य चलाया जाय। मेरे मत से पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ है राष्ट्रीय सरकार।

प्र.—अंग्रेज़ी फ़ौज रखने के साथ आप पूर्ण स्वतंत्रता का मेल किस तरह मिलाते हैं ?

उ.—अंग्रेज़ सेना भारत में रह सकती है और यह निर्भर है दोनों साझेदारों की परस्पर की योजना पर। इससे एक मर्यादित समय तक भारत का हित होगा, क्योंकि भारत को नपुंसक बना दिया गया है, और अंग्रेज़ सेना अथवा अधिकारियों का एक अंश राष्ट्रीय सरकार की नौकरी में रखा जाना ज़रूरी है। मैं साझेदारी की हिमायत करूंगा, और फिर भी इस सेना के रखे जाने की भी हिमायत करूंगा।

प्र.—स्वतंत्र भारत की बात करते हुए आप वाइसराय की कल्पना करते हैं या नहीं ?

उ.—वाइसराय रहेगा या नहीं, यह प्रश्न दोनों दलों को मिलकर तय करने का है। अपनी ओर से तो मैं वाइसराय के रखे जाने की कल्पना नहीं करता। किन्तु भारत में एक ब्रिटिश एजेण्ट के रखे जाने की कल्पना मैं कर सकता हूं, क्योंकि वहां अंग्रेज़ों ने कई हित-सम्बन्ध स्थापित किये हैं, जिन्हें मैं कष्ट नहीं कहना चाहता, इसलिए इन हित-सम्बन्धों की हिमायत करने के लिए ब्रिटिश एजेण्ट की आवश्यकता होगी, और जब कि वहां अंग्रेज़-सैनिकों और अफ़सरों की सेना होगी, तब मैं यह नहीं कह सकता कि नहीं, यहां ब्रिटिश एजेण्ट नहीं रह सकता। और नरेशों का भी प्रश्न है; मैं इसका निश्चय नहीं कर सकता कि ये राजा लोग क्या करेंगे, और इसलिए मैं नहीं कह सकता कि मेरी कल्पना की योजना में ब्रिटिश एजेण्ट—फिर उसे वाइसराय कहा जाय या गवर्नर-जनरल, होगा ही नहीं। किन्तु मैं उसकी हिमायत इस तरह करूंगा कि इस साझेदारी की यह शर्त है कि सम्पूर्ण समानता के सिद्धांत पर दोनों में से जो चाहे कोई भी पक्ष उससे अलग अथवा मुक्त हो सकता है। मैं ऐसी स्लेट पर लिख रहा हूं जिसपर से मुझे बहुत-

सी बातें मिटा देनी हैं।

प्र.—ऐसी साझेदारी से कौन-से समान हित साधे जा सकते हैं ?

उ.—इस साझेदारी मे जो समान-हित साधा जानेवाला है वह है पृथ्वी पर की जातियों की लूट को रोकना। यदि भारत इस लूट के अभिशाप से मुक्त हो सके, जिसके नीचे कि वह वर्षों से कुचला जा रहा है, तो उसका यह धर्म हो जायगा कि वह इस लूट को सदैव के लिए वन्द करवा दे। सच्ची साझेदारी से दोनों को लाभ होगा। यह साझेदारी ऐसी दो जातियों में होगी, जिनमें एक अपनी मर्दानगी, वहादुरी, साहस और अनुपम संगठन-शक्ति के लिए प्रसिद्ध है, जिसकी संस्कृति का कोई मुक़ाविला नहीं कर सकता और जो स्वयं ही एक महाद्वीप है। इन दो राष्ट्रों की साझेदारी के परिणाम में दोनों का हित और मानव-जाति की भलाई हुए विना रह नहीं सकती।

* * * *

गांधीजी की परिषद् के वाहर का कार्यक्रम मैं ज़रा विस्तार के साथ यहां देता हूं क्योंकि उनका और उसी तरह मेरा भी विश्वास है कि उनका सवसे महत्व का काम इन परिचयों और खानगी वातचीतों तथा सब वर्ग और श्रेणी के लोगों के साथ के विशुद्ध सम्भाषणों द्वारा हो रहा है। भारत की तरह यहां भी गांधीजी का एक-एक क्षण देश के लिए अर्पित है। और इनके जितना परिश्रम कदाचित् कोई भी नहीं करता। उनके चौवीसों घण्टे का विवरण इस प्रकार है :—

रात के १ वजे	किंग्सली-हाल पहुंचना
,, १-४५	यज्ञार्थ १६० तार सूत कातना
,, १-५०	डायरी लिखना
,, २ से ३-४५	सोना
,, ३-४५ से ५	उठकर प्रार्थना करना
सुवह ५ से ६	सोना
,, ६ से ७	घूमना और घूमते हुए वातचीत
,, ७ से ८	प्रातःकर्म और स्नान

सुबह ८ से ८-३०	पहला खाना
,, ८-३० से ९-१५	किंग्स्ली हाल से नाइट्सब्रिज
,, ९-१५ से १०-४५	एक पत्रकार, एक कलाकार, एक सिख प्रतिनिधि और एक व्यापारी के साथ बातचीत
,, १०-४५ से ११	सेण्ट जेम्स को जाने में
,, ११ से १	सेण्ट जेम्स में
,, १ से २-४५	अमेरिकनों के भोज में
तीसरे पहर ३ से ५-३०	मुसलमानों के साथ
शाम को ५-३० से ७	भारत मन्त्री के साथ
,, ७ से ७-३०	प्रार्थना और सन्ध्या के खाने के लिए घर जाना
रात को ८ से ९-१०	मद्य-निषेध के कार्यकर्त्ता की परिषद् में भारत के मद्य-निषेध के प्रश्न के बारे में बातचीत
,, ९-१०	नवाब साहब भोपाल के मिलने के लिए सिडकप को जाना

किंग्सली-हाल वे कब पहुंचेंगे कोई नहीं जानता है। परन्तु १ बजे के पहले कभी नहीं पहुंचते। यह भी मुझे कहना चाहिए कि यह एक साधारण दिन है। यह उग्र तपस्या है। शरीर यह कबतक सहन कर सकेगा!

६

वस्तु-स्थिति

'चर्च हाउस' में योर्क के आर्कबिशप की अध्यक्षता में हुई सभा में, जिसमें इंग्लैण्ड के मुख्य पादरी और दूसरे चर्च के अधिकारी भी थे, गांधीजी ने कहा—"मैं तमाम अंग्रेजों से भारत के मामले का अध्ययन करने को कहता हूं और यदि उनको यह मालूम हो कि मेरी स्थिति वाजिब है तो उन्हें गोलमेज-परिषद् को सफल परिणाम वाली बनाने में जितनी भी वे कर सकें मदद करनी चाहिए। लेकिन मुझे कोई

आशा नहीं दिखाई देती। लार्ड सेंकी समय बिता रहे हैं और आज न हम सफलता के निकट पहुंचे हैं और न इस बड़े मुद्दे के नजदीक ही पहुंचे हैं कि, 'भारत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता पानेवाला है या नहीं। वह सेना, राजस्व और वैदेशिक नीति पर अपना अधिकार पायेगा या नहीं ?' हम लोगों ने इन बातों का विचार तक नहीं किया है। हम लोग महत्व में दूसरे और तीसरे दर्जे की बातों पर चर्चा करने में ही समय खर्च कर रहे हैं। सांप्रदायिक सवाल का, जो यह कहा जाता है कि प्रगति का रास्ता रोके हुए है, इस तरह उपयोग नहीं होना चाहिए था।"

एक मित्र से उन्होंने कहा—"मैं ऐसी दीवाल से सर टकरा रहा हूं, जहां कोई रास्ता नहीं है।"

प्र.—"क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं है कि आज यद्यपि आप विचार की एक बड़ी मज़बूत संस्था के प्रतिनिधि हैं, फिर भी आप संयुक्त भारत के नेता नहीं हैं ?"

उ.—"मैं नहीं हूं। परन्तु इसका कारण यह है कि यहां ऐक्य होना असम्भव है। क्या आप यह नहीं देखते कि यह परिषद् सरकार के चुने हुए लोगों से भरी हुई है ? यदि हमें हमारे प्रतिनिधि चुनने को कहा गया होता तो मैं सबका प्रतिनिधि बनता और सबकी तरफ़ से बोल सकता था। बेशक राजाओं की तरफ़ से नहीं। राजा लोग सरकार की कृपा से जीते हैं इसलिए वे सरकार के आश्रितों की हैसियत से ही बोल सकते हैं। और आज मुसलमान भी, जो कुछ दिन पहले किसी भी शर्त पर ब्रिटिश सम्बन्ध को स्वीकार करने के लिए तैयार न थे, राज्यभक्तों से भी बढ़कर बातें कर रहे हैं।"

प्र.—"तो, क्या 'डेली हेरल्ड' ने जो कहा वह सही है ?"

उ.—"नहीं, मेरे खयाल में प्रधान मन्त्री यह ठीक कहते हैं कि सरकार विचारपूर्वक परिषद् को तोड़ डालने का प्रयत्न नहीं करती है। परन्तु सम्भव है उन्हें उसे जल्दी पूरा करना पड़े; क्योंकि सभ्यता के लिए भी वे इस पीड़ा को अधिक दिनों तक यों ही नहीं चलने दे सकते हैं। यह

पीड़ा से कुछ कम नहीं है। हम ऐसे मुद्दों पर बातें-ही-बातें कर रहे हैं, जो मुख्य विषय को स्पर्श भी नहीं करते। जब कि हम यही नहीं जानते हैं कि हमारे पास क्या धन होगा, हमारा अधिकार क्या होगा और कितनी सेना का खर्च हमें देना होगा, तब संघ-शासन और प्रान्तिक सरकारों में अर्थविभाग करने का क्या उपयोग हो सकता है?"

मेरे खयाल में वस्तुस्थिति का यही ठीक वर्णन है। गोलमेज़-परिषद् में उन्होंने यह बात अच्छी तरह स्पष्ट की थी। संघ-योजना समिति में बड़ी अदालत की चर्चा में उन्होंने इस प्रश्न को पूरा-पूरा स्पष्ट कर दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि वे अब उस पुराने रास्ते को छोड़ दें—जिसके अनुसार ब्रिटिश राजशाही का दृष्टिकोण ही यह रहा है कि भारत बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दे और उसके ग़रीब लोग भूखों मरें। नाम कैसा भी अच्छा क्यों न हो, कांग्रेस ऐसी किसी व्यवस्था से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रख सकती, जिसमें किसी भी रूप में और किसी भी प्रकार से ब्रिटिश क़ब्ज़ा और ब्रिटिश आधिपत्य को मान लिया गया हो। यदि आप सचमुच ही कुछ करना चाहते हैं तो आपको स्वतन्त्र भारत की परिभाषा में विचार करना चाहिए। भारत में अपनी स्वतन्त्र अदालत हो, उसमें जो न्यायाधीश हों उन्हें वह अपनी शक्ति के अनुसार तनख्वाह दे सकें और उसके लोगों की स्वतन्त्रता की रक्षा के सच्चे साधन हों। यह, जैसा कि लार्ड सेंकी ने कहा, 'महत्व का और निर्भीक' भाषण था। इससे वायुमण्डल स्वच्छ होना ही चाहिए। उससे लोग विचार करने लगेंगे; कम-से-कम वे लोग जो लार्ड सेंकी की तरह ऐसे शख्स से, जो 'उसे क्या चाहिए जानता है,' खरी बात सुनना पसन्द करते हैं। इस बीच कांग्रेस और उसके प्रतिनिधि को बदनाम करने के लिए हलका प्रचार-कार्य किया जा रहा है। पंडित जवाहरलालजी ने युक्त प्रान्त की स्थिति के बारे में एक लम्बा तार भेजा है। जवाब में गांधीजी ने ठीक ही कहा है कि पंडितजी बिना किसी हिचकिचाहट के परिस्थिति के उपयुक्त जो-कुछ आवश्यक हो कार्य कर सकते हैं; क्योंकि यहां कोई आशा नहीं है। स्वार्थ-साधु पत्र भले-बुरे किसी

भी ज़रिये से ऐसे समाचार जान लेते हैं और फिर उसको भयंकर रूप से विकृत करके छापते हैं; जैसे कि 'मि० गांधी, जवाहरलाल को सविनय-भंग का युद्ध शुरू करने को लिखते हैं।' इसी तरह "पायोनियर" ने यह बे-पर की उड़ाई थी कि 'गांधीजी मुसलमानों को रुपया देकर असहयोग के आन्दोलन में साथ देने को ललचा रहे हैं।'

लार्ड रोचेस्टर की अध्यक्षता में मद्य-निषेध के कार्यकर्त्ताओं की जो सभा हुई वह भी बड़े महत्व की थी। ऐसा मालूम होता था कि तीन-

मद्य-निषेध

चार सौ मित्रों में से प्रत्येक मित्र ने यह बात समझ ली थी कि भारत के अनिच्छुक लोगों को मद्यपी बना देने में इंग्लैंड का कितना बड़ा अपराध था! गांधीजी ने कहा—"संसार में ऐसा कोई देश नहीं है, जो सरकार के ख़िलाफ़ होने पर भी मद्यनिषेध का प्रयत्न कर रहा हो, जहां आम लोगों का बड़ा हिस्सा मद्यनिषेध के लिए पुकार उठता हो और सरकार उसका इन्कार करे, और जहां सब प्रकार के गुप्त उपायों से मद्यपान को प्रोत्साहन दिया जाता हो।" और भाषण के अन्त में गांधीजी की जो प्रशंसा की गई उसपर से अगर मैं कुछ अन्दाज़ लगा सकूं तो, मैं कह सकता हूं कि वे बात को फ़ौरन ही समझ गये थे, ऐसा मालूम होता था। गांधीजी ने कहा—"महसूल का सवाल न हो तो मद्यनिषेध का प्रश्न हमारे लिए अत्यन्त सरल है" और उन्होंने समझ लिया कि भारत के लिए उसके अर्थ पर उसका क़ब्ज़ा होना कितना आवश्यक है, जिससे कि वह अपने बजट के दोनों पहलू बराबर कर सके और मद्यनिषेध भी कर सके।

७

जहां तक हमारे देश का प्रश्न है, सरकार में परिवर्तन हो जाने से, हमारे लाभ-हानि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें यह न भूल जाना

चुनाव का असर

चाहिए कि भारत के इतिहास में कभी न सुने गये घृणित-से-घृणित अत्याचार—स्त्रियों पर लाठियों के प्रहार तक—मज़दूर सरकार के शासन में ही हो चुके हैं। अनुदार दल के शासन में

इससे वदतर और क्या हो सकता है ? गोली-वारूद का खुलकर प्रयोग होगा ? लाठियों के कायर-प्रहार से तो यह कहीं अधिक स्वच्छ और सीधा मार्ग होगा ।

पार्लमेंट के इस सशंकित चुनाव अथवा एक महिला के शब्दों में, 'सबसे पहले हिफ़ाजत' (Safety First) के चुनाव और इंग्लैंड तथा यूरोप के आर्थिक संकट का कुछ विशेष अर्थ है, जिसे सर विलियम लेटन ने सुन्दर शब्दों में इस प्रकार रखा है—"किसी भी देनदार या ऋणी राष्ट्र के लिए अब यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह अपने ही प्रयत्न से क़र्ज़ की अदायगी कर सके। लेनदार देशों को यह निश्चय करना चाहिए कि वे अपना लेना माल के रूप में लेने के लिए तैयार हैं, अथवा क़र्ज़ की रकम घटाना अधिक पसन्द करते हैं। यदि प्रत्येक राष्ट्र केवल आयात को रोकने के लिए ही अपने-अपने प्रतिवन्ध लगावे, तो धीरे-धीरे चारों ओर से निर्यात वन्द हो जायगा और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय अपंग हो जायगा।"

दूसरे लेखक ने चुनाव के परिणाम का विश्लेषण इस ढंग से किया है कि भारतवासी उसे आसानी से समझ सकेंगे—"जॉन वुल को विश्वास दिला दीजिए कि उसके देश पर कोई वास्तविक भयंकर खतरा मंडरा रहा है; एक वार उसे यह विश्वास हो जाने दीजिए कि उसकी वचत को ज़ब्त कर लेने और बैंक आफ़ इंग्लैंड (जो उसके लिए अचल दुर्ग है) की जड़ उखाड़ने और इसलिए उसके आश्वासन, आर्थिक रक्षा, आर्थिक प्रगति की सव आशाओं पर पानी फेरने के लिए कोई दुष्ट शक्ति काम कर रही है, तो जॉन वुल अपनी सारी शक्ति लगाकर उठ खड़ा होगा और एक वार फिर दुनिया को विस्मय में डाल देगा।"

भारत इस प्रत्यक्ष उदाहरण से शिक्षा लेना न चूकेगा। भारत में दूसरा प्रसंग उपस्थित होने पर—जिसके कि शीघ्र होने की सम्भावना है—यदि हम चाहें, तो जॉन वुल को आसानी से भयंकर खतरे का दर्शन करा सकते हैं, और उस समय वह फिर अपने मन्त्रियों से यह कहकर कि

भारत के साथ सुलह करो, संसार को विस्मित कर देगा।

आक्सफ़ोर्ड में कुछ विद्यार्थियों ने एक प्रश्न यह पूछा था—"हिन्दू संयुक्त निर्वाचन क्यों चाहते हैं ?" उत्तर में (श्रोताओं के अट्टहास के बीच) उन्होंने कहा—"क्योंकि वे मूर्ख हैं। पृथक् निर्वाचक मण्डल देकर वे मुसलमानों का सब जोश एकदम उतार सकते हैं और पृथक् निर्वाचन में हो-न-हो कुछ बुरी बात तो नहीं है इस असमंजस में उन्हें डाल दे सकते हैं।"

मूर्ख हिन्दू

एक अंग्रेज़ विद्यार्थी ने पूछा—"आप शराब पीनेवालों के प्रति इतने अनुदार क्यों हैं ?"

उ०—"इसलिए कि इस अभिशाप के असर से पीड़ित लोगों के प्रति मैं उदार हूं।"

कई लोगों को इस बात का आश्चर्य है कि गांधीजी इतने विचित्र कामों में सुबह से लेकर आधी रात तक अपने दिमाग़ को आवेश से मुक्त रखकर अपने-आपको किस प्रकार प्रसन्न रख सकते हैं। श्रीमती यूस्टेस माइल्स ने पूछा—"क्या कभी आपको चिड़चिड़ापन महसूस होता है ?" गांधीजी ने उत्तर दिया—"मेरी पत्नी से पूछो। वह आपको बतलायगी कि दुनिया के साथ तो मेरा वर्त्ताव बड़ा अच्छा रहता है किन्तु उसके साथ नहीं।" इस विनोदपूर्ण उत्तर को सराहते हुए श्रीमती माइल्स ने कहा—"मेरे पति तो मेरे साथ बड़ा अच्छा वर्ताव करते हैं।"

प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"तब मेरा विश्वास है कि श्री माइल्स ने आपको गहरी रिश्वत दी है।"

प्र०—"क्या चरखा मध्ययुग का औज़ार नहीं है ?"

उ०—"मध्ययुग में हम बहुत-सी ऐसी बातें करते थे, जो सर्वथा बुद्धिमानीपूर्ण थीं। किन्तु यदि हममें से अधिकांश ने उन्हें छोड़ दिया तो मुझपर मेरी बुद्धिमत्ता का आक्षेप क्यों करते हो ? यह औज़ार कितने ही मध्ययुग का क्यों न हो, किन्तु अपने दरिद्र ग्रामवासियों की आय में इसके द्वारा ५० प्रतिशत वृद्धि करते हुए मुझे ज़रा भी लज्जा प्रतीत नहीं

होती। महायुद्ध के समय आप लोगों ने आलू की खेती की और लिसियम-क्लब की शौक़ीन-मिज़ाज रमणियों ने पुरुषों को सादे सूई और डोरे से सैनिकों के सोने के समय की पोशाक सीने के लिए आमन्त्रित किया था। क्या वे बातें मध्ययुग की न थीं ? मैंने तो यह मध्ययुगीन-युक्ति लिसियम-क्लब की युवतियों से सीखी है।"

किन्तु जिस प्रकार पिछला सत्याग्रह-आन्दोलन इतना अकस्मात् और इतना अचानक उठ खड़ा हुआ, उसी तरह गांधीजी कई बार प्रसंग आने पर चमक उठते हैं और ज्वाला के रूप में फट पड़ते हैं।

प्र०—स्वराज्य के मार्ग में मुख्य विघ्न क्या है ?

उ०—"ब्रिटिश अधिकारियों के अधिकार छोड़ने की अनिच्छा, अथवा अनिच्छित हाथों में से अपने अधिकार धरा लेने की हमारी अयोग्यता ही मुख्य विघ्न है। आपको इस बात का खेद है कि मैंने आपका मनचाहा उत्तर नहीं दिया।

स्वराज्य में बाधा

मैं आपको यह बात समझा देना चाहता हूं कि हममें कितना ही अनैक्य होने पर भी हम अधिकार छीन ले सकते हैं और जिन लोगों को अधिकार छोड़ना है, वे राज़ी-खुशी से छोड़ने को तैयार हो जांय तो हमारा अनैक्य तुरन्त मिट जायगा। आप कहते हैं कि अंग्रेज़ तो तटस्थ प्रेक्षक हैं। किन्तु मैंने तो भारत-सरकार पर फच्चर की तरह आड़ लगाने और ब्रिटिश सरकार पर अपने मनचाहे लोगों की कान्फ्रेंस अथवा परिषद् बुलाने का आक्षेप लगाने की धृष्टता की है। विवेकशील मुसलमानों के साथ मिलकर कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय की अपनी योजना तैयार की है। किन्तु यदि दुर्भाग्यवश बहु-संख्यक मुसलमानों के प्रतिनिधि होने का दावा करनेवाले कुछ मुसलमान सन्तुष्ट नहीं हैं, और इसलिए यदि सरकार यह कहे कि हमारे गले में बांधी हुई ज़ंजीर को वह बंधी ही रखेगी, तो मेरा कहना है कि हम एकसाथ एक ही प्रहार से इस ज़ंजीर और अनैक्य दोनों के ही टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।" इसके बाद कामनवेल्थ आफ़ इण्डिया लीग के स्वागत के अवसर पर उन्होंने कहा:—

"सवसे अच्छा मार्ग तो यह है कि अंग्रेज़ लोग भारत से अलग हो जायं। जिस तरह इंग्लैंड कर रहा है, उसी तरह भारत को अपने घर की व्यवस्था या कुव्यवस्था करने दे। किन्तु भारत में अंग्रेज़ जेलर की तरह वनकर भारतवासियों को नेकचलनी के नियम सिखाते हैं, और भारत एक विस्तृत जेलख़ाना बन गया है। हम अपना हिसाब वतावेंगे और आपको भी अपना हिसाव वताना होगा। आपके लिए सवसे अच्छी बात तो यह है कि आप इस अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक सम्वन्ध का अन्त कर दें। यदि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा हुई, तो हम आपके अनिच्छित हाथों से स्वतन्त्रता वरवा लेंगे। मैंने ख़याल किया था कि हम लोगों ने काफ़ी कष्ट-सहन किया है; किन्तु मैं देखता हूं कि हमारा कष्ट-सहन इतना व्यापक और वास्तविक नहीं है, जिससे कि उसका असर हो सके, इसलिए मुझे भारत जाकर अपने देशवासियों से गत वर्ष की अपेक्षा अधिक उग्र अग्नि-परीक्षा में से गुज़रने के लिए कहना होगा। चटगांव और हिजली की घटनाएं मेरे भारत लौटने के लिए प्रकाश-स्तम्भ की तरह काफ़ी चेतावनी हैं। किन्तु मुझे धैर्य रखना और अपने क्रोध को दवाना चाहिए। कभी-कभी मुझे अपने पर वेहद क्रोध आता है; किन्तु मैं इस शत्रु से अपना छुटकार पाने की प्रार्थना भी करता हूं और ईश्वर ने मुझे अपना क्रोध दवाने की शक्ति दी है। किन्तु क्रोध हो या न हो, मैं इंग्लैंड अकस्मात् न छोड़ूंगा। मैं प्रतीक्षा करूंगा, देखूंगा और प्रार्थना करूंगा। किन्तु अन्त में यदि गोलमेज़-परिषद् टूट जायगी, तो हमें क्या करना होगा, यह मैं जानता हूं। मैं जानता हूं कि हम तराजू पर हलके नहीं उतरेंगे, अथवा पीछे नहीं हटेंगे और उस समय आपका यह कर्त्तव्य होगा कि आप हमारी मदद करें।

वर्नार्ड शॉ

वर्नार्ड शॉ वहुत दिन से गांधीजी से मिलना चाहते थे और वे काफी हिचकिचाहट के उपरान्त मिलने आये। वे गांधीजी के पास प्रायः एक घण्टे तक वैठे और इस समय में अगणित विषयों पर प्रश्न पूछते रहे। उनके प्रश्न धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और प्राणिशास्त्र और अर्थशास्त्र-सम्बन्धी सभी विषयों पर थे। उनके

वार्तालाप में गम्भीर मनोरंजन के छींटे भी थे। वे कहने लगे—"मैं आपके विषय में कुछ जानता था और आपमें अपने साथ कुछ विचार-साम्य होना भी अनुभव करता था। हम लोगों की संसार में एक छोटी-सी जाति है।" उनके अन्य सब प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के थे; परन्तु गोलमेज़-विषयक एक प्रश्न पूछे बिना वे न रह सके। उन्होंने पूछा—"क्या गोलमेज़-परिषद् आपके धैर्य को नहीं तोड़ रही है?" और इसके उत्तर में गांधीजी ने खेद-सहित स्वीकार किया—"इसके लिए तो असाधारण धैर्य की आवश्यकता है। यह तो एक बड़ा घोटाला है। जो भाषण वहां होते हैं वे सब टरकाऊ नीति वाले हैं। मैं तो उनसे यही कहता हूं कि अपनी नीति साफ़ क्यों नहीं प्रकट कर देते, जिससे हम अपना निश्चय तो कर सकें। परन्तु यह तो ब्रिटेन की राजनीति में ही नहीं है; वह तो जो-कुछ करता है सब वृथा कष्टदायक घुमाव-फिराव के साथ ही करता है।"

शायद कोई कहेंगे कि मुख्य घटना बकिंघम (सम्राट् के) राजप्रासाद के स्वागत की थी, परन्तु सम्राट् क्षमा करें, मैं तो यह नहीं कहूंगा। क्या इन स्वागतों में कोई सार है? क्या सम्राट् और सम्राज्ञी लोगों से दिल खोलकर मिलते हैं? क्या इस बातचीत में कुछ निश्चय करते हैं या करने की सामर्थ्य उनमें है भी? क्या यह एक मूक नाटक-मात्र नहीं था? परन्तु अब तो लोग कहेंगे कि गांधीजी भी तो वहां गए थे। यदि यह सब निरर्थक ही था तो वे वहां क्यों गए? क्या मैं गांधीजी की मानसिक दशा पर यहां थोड़ा प्रकाश डालूं? मित्रों की एक सभा में गांधीजी ने कहा था, "मैं तो यहां बड़ी कठिन अवस्था में हूं। मैं यहां इस राष्ट्र का मेहमान होकर आया हूं, अपने राष्ट्र का चुना हुआ प्रतिनिधि होकर नहीं। अतः मुझे बहुत सम्हल कर चलना चाहिए और आप नहीं जानते कि मैं कितना सम्हल कर चलता हूं। आप समझते होंगे कि अल्पसंख्यक-समिति में प्रधान-मन्त्री के धमकी देनेवाले भाषण को मैंने पसन्द किया। मैं तो वहीं उसका विरोध करता, परन्तु चुप रहा और घर आकर एक हलका विरोध-सूचक पत्र लिख भेजा। अब इस सप्ताह एक और

सम्राट् जार्ज

नैतिक समस्या उपस्थित हो गई है। सम्राट् के स्वागत का निमन्त्रण मुझे मिला है। भारत में होनेवाली घटनाओं ने मुझे इतना क्षुब्ध और दुःखी बना दिया है कि मेरा मन नहीं चाहता कि मैं इस स्वागत में सम्मिलित होऊं और यदि मैं स्वच्छन्द रूप से यहां आता तो अपनी इच्छानुसार ही करता। परन्तु मैं तो मेहमान हूं, अतः हिचकिचा रहा हूं; शीघ्र कुछ निश्चय भी नहीं कर सकता। मुझे इसके नैतिक पहलू पर भी विचार करना है—खाली न्यायोचित निश्चय पर ही दृढ़ नहीं रहना है।" नैतिक जिम्मेवारी ने ही गांधीजी से वहां जाने का निश्चय कराया। जब वह यह निश्चय कर चुके तो उन्होंने लार्ड चेम्बरलेन को एक विनम्र पत्र लिखा, जिसमें निमन्त्रण के लिए धन्यवाद दिया और लिखा कि वह और उनके एक साथी (जिनको भी आमन्त्रित किया था) अपनी सदा की पोशाक में उस स्वागत में सम्मिलित होंगे। साधारणतया गांधीजी ऐसे उत्सवों में भाग नहीं लेते, परन्तु इस अवसर पर, जैसा कि अन्य कुछ अवसरों पर भी हुआ है, उन्होंने नियम ढीला कर दिया; क्योंकि वह ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते, जिससे कोई निरादर प्रकट हो। वह ऐसा मौक़ा नहीं देंगे, जिससे लोग उन्हें कोई दोष दें।

८

अब आगे

"इस वक्त तो ऐसा मालूम पड़ता है कि परिषद् टांय-टांय-फिस होनेवाली है। इस घोर अन्धकार में आशा की किरणें दीख नहीं पड़ रही हैं। लेकिन आप में से कुछ बड़े लोग परिषद् को असफलता के घाट न उतरने देने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। यदि वे लोग असफल रहे और यदि यह परिषद् आखिर नाकामयाब साबित हुई—मुझे तो ऐसा ही अन्देशा है—तब लाखों लोग कष्टों का आह्वान करने के लिए कटिबद्ध हो जायंगे और भीषण दमन से भी विचलित न होंगे। हमसे कहा जा रहा है कि गत वर्ष की अपेक्षा अबकी बार का दमन दसगुना भयंकर होगा। परन्तु मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा कि हे भगवान्! पाशविक बल के ऐसे प्रदर्शन से मानव-समाज को दूर ही

रखना ।"

उपर्युक्त वाक्य महात्माजी के उन विचारों का अन्तिम भाग है, जो उन्होंने वेस्टमिन्स्टर स्कूल में उस दिन की संध्या को प्रकट किये, जिस दिन उन्होंने गोलमेज़-परिषद् के समक्ष अपना तीसरा स्मरणीय व्याख्यान दिया था। उनका यह भाषण साम्प्रदायिक समस्या के उस प्रयत्नपूर्वक तैयार किए समाधान के उत्तर में था, जिसका यह दावा था कि मुसलमानों, अछूतों, भारतीय ईसाइयों तथा भारत में रहनेवाले गोरों के बीच, जिनकी संख्या हिन्दुस्तान की आबादी की ४६ फ़ीसदी बताई जाती है, लगभग पूरा ऐक्य है। उपर्युक्त भिन्न-भिन्न जातियों के नामज़दों की इस अनोखी और गुस्ताखाना सूझ में कुछ ऐसा बेतुकापन था, जिसे महसूस करने में मेहनत दरकार नहीं है। उस मसविदे के पेश होते ही उसके खिलाफ़ जोरों से आवाजें उठने लगीं। सरदार उज्जलसिंह का विरोध सबसे ज्यादा पुरजोर था। उन्होंने तो काने को साफ़-साफ़ काना कह दिया और उन लोगों की हरकत के बारे में अपना यह मत प्रकट किया कि वह दूसरे की सम्पत्ति को बांट खाने के उद्देश्य से खड़ी की गई जालसाजी नहीं तो और क्या है? जब गांधीजी ने इसपर अपना सात्विक रोष प्रकट करते हुए उसका भंडा-फोड़ किया और कहा कि यह हरकत तो राष्ट्र के प्रति अत्याचार-रूप है, तब उस जालसाजी का काम तमाम हो गया। गांधीजी ने इतना ही नहीं किया बल्कि उन्होंने उस तजवीज के तैयार करनेवालों के इन व्यर्थ के दावों की भी, यह कहकर कि वे लोग उस जाति के प्रतिनिधि हैं भी कि नहीं, जिसकी ओर से वे बोलने का साहस कर रहे हैं, पोल खोल दी? इससे प्रधानमन्त्री की आंखें खुल गई होंगी।

"न्यू स्टेट्समेन" के आज के अंक में प्रकाशित हुआ निम्नलिखित वाक्य गांधीजी की बात को मानों दुहरा रहा है—

"बिना इस बात के जाने हुए कि मुख्य प्रश्न के विषय में कुछ तय होनेवाला है या नहीं, कोई साम्प्रदायिक प्रतिनिधि, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा सिख, साम्प्रदायिक मामले में दबने और कम स्वीकार

करने के लिए तैयार नहीं है।"

आगे चलकर उसमें यह भी लिखा है कि "परिषद् के असफल होने का कोई वास्तविक कारण नहीं है। यदि टरकाने की नीति का अनुसरण किया गया तो जानबूझकर किया जायगा, क्योंकि इंग्लैंड के मन्त्रिमंडल ने निश्चय किया है कि यही सबसे अच्छा रास्ता है।"

ग़नीमत तो यह है कि गांधीजी ने ब्रिटेन की जनता को भारतवर्ष की स्थिति से परिचित कराने का जो अ ट परिश्रम किया है, उसके फलस्वरूप यहां के लोगों से, खासकर समझदार अंग्रेजों के दिलों से वे गलतफ़हमियां और धारणायें मिट गई हैं, जो यहां अधिकारियों ने फैला रखी हैं। और जब कुछ ही दिनों के भीतर यह परिषद् असफलतापूर्वक समाप्त होगी, तब किसी को यह खयाल न होगा कि इस बाधा के कारण स्वयं प्रतिनिधि लोग ही हैं।

प्रधानमन्त्री ने यह दलील पेश करते हुए इस प्रश्न के बारे में कहा है कि संरक्षण के विषयों पर बहस न करने का कारण यह था कि स्वयं संघ-योजना-समिति की ओर से बहस मुलतवी रखी जाने का प्रस्ताव हुआ था। इस वक्तव्य का विरोध बहुतेरों ने एक-स्वर से किया और फलतः प्रधानमन्त्री को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह प्रस्ताव समस्त संघ-योजना-समिति की ओर से नहीं बल्कि उसके एक भाग की ओर से ही आया था। यदि वास्तव में वह इसी बात पर अड़ जाते (जैसे आज दोपहर को वह अड़े) कि प्रतिनिधियों की राय बहुमति के रूप में नहीं बल्कि सर्व-सम्मति के रूप में आनी चाहिए, तो उन्हें लाजिम था कि वह इसी प्रकार यह भी कहते कि जबतक सर्वसम्मति से प्रस्ताव न किया जायगा तबतक विधान-सम्बन्धी प्रश्न स्थगित न किया जायगा। और किसी बात से सरकार की स्थिति के थोथेपन को प्रकट कर देना इतना संभव न था, जितना कि आज की घटित कई बातों से हो सका है। और इन बातों में प्रधान-मन्त्री की उपर्युक्त स्वीकृति भी शामिल है।

परन्तु यह बात न तो यहां पर है और न वहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि हम एक महान् विपत्ति के द्वार पर खड़े हुए हैं, जिसके खतरों को सिर्फ़

वही देख सकते हैं, जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का तरीक़ा अख्तियार किया है। तथापि, जैसा कि भेंट करने को आये हुए एक सज्जन से कल रात गांधीजी ने कहा, "यदि गोलमेज़-परिषद् विधान-सम्बन्धी मामलों पर असफल हो गई, तो सविनय-अवज्ञा का फिर से आरंभ होना अनिवार्य है। इसके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं हो सकता। क्योंकि यदि आज हम इसे नहीं पाते, तो फिर इसका मतलब ही अनिश्चित काल के लिए इसे टाल देना है। परन्तु इसकी प्राप्ति की आशा के लिए बहुत गुंजायश नहीं है, हालांकि मैं यह नहीं कह सकता कि आखिरी वक्त तक किसी-न-किसी हल पर पहुँच जाने की आशा को मैंने सर्वथा त्याग दिया है। और, कम-से-कम मैं तो उस वक़्त तक चैन न लूंगा, जबतक कि इसके लिए हर तरह की तदबीर न कर लूंगा।"

गांधीजी के भाषण पर जो ग़ौर करेंगे वे रास्ते में जो बाधाएँ हैं उन्हें अच्छी तरह देख पायँगे। हमारे आपस में जो वाद-विवाद हुए वही काफ़ी प्रत्यक्ष हैं—जैसा कि उन्होंने एकसे अधिक बार कहा, हम सब इस सम्बन्ध में मूर्ख ही रहे हैं। किन्तु सरकार ने हमारे अनैक्य के लिए ज़मीन तैयार कर ली और सत्ता छोड़ने के लिए अनिच्छित शक्तिमान दल की सारी चतुराई लगाकर हमारे भेदभावों को बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

कांग्रेस सर्वसाधारण की प्रतिनिधि है

परन्तु कांग्रेस ही वस्तुतः राष्ट्र है, और एक-मात्र बहु-संख्यक वर्ग है, कि जो सरकार के साथ सौदा कर सकता है; इसलिए सरकार को चाहिए था कि वह सब दलों की बातें सुन लेने के बाद उसके साथ बातचीत करती। लेकिन, यह प्रत्यक्ष है कि, कांग्रेस का जो महत्व है और समस्त देश की तरफ़ से बोलने का वह जो दावा करती है, उसकी छाप वह सरकार पर नहीं डाल पाई है। "ऐसी हालत में मैं वापस चला जाऊँगा और इससे भी अधिक कष्ट-सहन के द्वारा यह प्रदर्शित करूँगा कि एक-मात्र कांग्रेस ही ऐसी है, जो भारतवर्ष के विस्तृत जन-समूह की प्रतिनिधि है।"

परन्तु, जैसा कि गांधीजी ने "लन्दन स्कूल आफ़ इकोनॉमिक्स" (लन्दन

का अर्थशास्त्र विद्यालय) के विद्यार्थियों से कहा था, वास्तविक और अंतिम अड़चन है—भारत की परिस्थिति के बारे में अंग्रेज़ों की नितान्त अनभिज्ञता। हम लोगों को अँग्रेज लोग अहसानफ़रामोश और ऐसे लोग मानते हैं कि जो उन नेकियों को भुलाये हुए हैं, जो ब्रिटेन ने भारत के साथ की हैं। यह धारणा यहां के अधिकारी वर्ग में ही नहीं बल्कि उनमें भी प्रचलित है, जो सार्वजनिक विचारों की बागडोर थामे हुए हैं। एक बात और है। बहुत अर्सा गुज़रा, स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अंग्रेज़ों के चरित्र का एक विशेष लक्षण बतलाते हुए कहा, "मुझसे हमेशा अंग्रेज़ों द्वारा यह बात पूछी जाती है कि "जब कि हिन्दुस्तान में इतनी ज़्यादा ग़रीबी है, तो वहां दंगे और बलवे क्यों नहीं होते ? खिड़कियां क्यों नहीं तोड़ी-फोड़ी जाया करतीं ?" आजकल भी अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति लगभग वैसी ही बनी हुई है। उनकी समझ में अहिंसा का तरीक़ा जल्दी नहीं आता। तो फिर इसका अर्थ यह है कि गत वर्ष जो किया गया था, उससे अधिक प्रदर्शन की अब आवश्यकता है। बाहर के हमलों और भीतरी फिसादों के ख़तरे इतने बढ़ा-चढ़ाकर और ऐसे सयानेपन से लोगों के दिमाग़ों में जमा दिये गये हैं कि साधारण अंग्रेज़ लोग शुद्ध भावना से यह मानने लग गये हैं कि हिन्दुस्तान की रक्षा बिना अंग्रेज़ी बन्दूक के हो ही नहीं सकती। कुछ अंश तक तो यह शासक-जाति के स्वाभाविक अभिमान की बात है—क्योंकि दूसरे राष्ट्र पर हुकूमत करनेवाली जाति अपने ऊपर कुछ ज़िम्मेवारियां और हुकूक योंही ओढ़ लेती है और इसके विपरीत शासित जाति को साधारण-से-साधारण स्वत्व भी बरतने नहीं देती। आप प्रत्येक सड़क के आसपास, दीवारों पर, दूकानों के झरोखों पर, रेलगाड़ियों के रास्तों पर और समाचारपत्रों के पृष्ठों पर लिखी या चिपकी हुई अपीलें पढ़ते हैं कि 'केवल इंग्लैंड की बनी हुई चीज़ का इस्तेमाल कीजिए, बाहर का कोई भी माल न खरीदिए।' परन्तु हिन्दुस्तान में इसी बात को कहना—सिर्फ़ देशी चीज़ें खरीदने की अपील करना—ख़तरनाक और विद्रोहात्मक माना जाता है ! एक विदुषी महिला तो—जो कि एक सुशिक्षित एवं घटनाओं से सुपरिचित व्यक्तियों की सभा में बैठी थीं—गम्भीरता से पूछ उठीं कि जो

राष्ट्र आपस में ही झगड़ रहा हो, क्या उसे स्वतन्त्रता के बारे में सोचने तक का भी न्यायोचित अधिकार है ? लोगों की आम चिल्लाहट यही है कि "तुम लोग पहले स्वतन्त्र होने की योग्यता तो प्राप्त करो !"

जन्मसिद्ध अधिकार

परन्तु मैं यहां शासक जाति की पहले से बनी हुई धारणाओं और उसके अज्ञान के सब पहलुओं पर, चाहे वे वास्तविकताओं से सम्बन्ध रखते हों या इतिहास से, बहस करने के लिए तैयार नहीं हूं। ये बातें तो उन लोगों के लिए अनिवार्य हैं, जो अपने को विजयी जाति ठहराते हैं। परन्तु जिसके पैर में कांटा चुभता है, वही पराई पीर जान सकता है। श्री जे० दबलीन महाशय ने, जो कि एक आइरिश देशभक्त हैं, एक सभा में, जिसमें कि गांधीजी का खानगी भाषण हो रहा था, स्वातन्त्र्य-प्रेमी के नाते इन खरे शब्दों में अपना मत प्रकट किया था, "आप हमसे भारतीय परिस्थितियों को समझने के लिए कह रहे हैं, परन्तु दरअसल बात यह है कि किसी भी राष्ट्र के स्वातन्त्र्य-स्वत्व को स्वीकार करन के लिए किसी अध्ययन की आवश्यकता नहीं है। वह तो देश या राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है।" गांधीजी ने इस मत में फ़क़त एक बात और जोड़ दी है, वह यह कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं है, बल्कि हमने इसे आत्मत्याग के बल पर कमाया भी है।

परन्तु प्रत्यक्षतः बात ऐसी मालूम होती है कि स्वेच्छापूर्वक किये गये आत्मबलिदान के रूप में इसकी शिक्षा की आवश्यकता अभी इंगलैंड की जनता को बनी हुई है। गांधीजी अभी तक कुछ हजार अंग्रेजों से मिल चुके हैं और वह अनेक बार उनके कानों में यह डाल चुके हैं कि अंग्रेज़ लोगों के इरादे चाहे जितने साफ़ क्यों न हों, लेकिन अंग्रेजी हुकूमत से हिंदुस्तान को नुक़सान ही पहुंचा है और हम उससे अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं। यह शिक्षा बेअसर साबित हुई हो सो बात नहीं है, लेकिन उसकी जो रफ़्तार है वह धीमी है और इतनी धीमी है कि डर पैदा करती है; क्योंकि हिन्दुस्तान के लोग सर्वत्र बेमौत मर रहे हैं, यातनाएं भोग-भोग कर पामाल हो रहे हैं। यह बात बंगाल, संयुक्तप्रान्त और बारडोली की रिपोर्टों से साफ़ साबित

हो रही है। इसी वजह से गांधीजी ने कई सभामंचों से इस बात को दुहराया है कि दस-बारह लाख मनुष्यों का स्वाहा करना, करोड़ों की उपर्युक्त प्रकार की मौत से अधिक बेहतर है। उनकी मुक्ति के बारे में निरन्तर सोचे बिना मेरा जीना दुश्वार है। अन्तर केवल इतना है कि हम लोग अपने प्रतिद्वन्द्वियों के रक्त से अपनी अंगुलियां कलुषित न करेंगे और हम असत्य का सहारा न लेंगे। हम लोगों ने तो सब आशाओं को तिलांजलि दे दी है। हम अपनी पीठ दीवार की ओर करके लड़ रहे हैं और जबतक भारतीय ग्राम-निवासियों के लिए जीवन-संचारिणी स्वतन्त्रता प्राप्त न हो जायगी तबतक हमें चैन न होगा।

९

निरुद्देश्य गोलमेज़

गोलमेज़-परिषद् को सब तरह की उपमाओं का शिकार होना पड़ा। कुछ लोगों ने उसे उस मुर्दे की उपमा दी थी, जिसे प्राणप्रद वायु देकर जीवित करने का प्रयत्न किया जाता हो। कुछ ने उसे डूबे हुए मनुष्य को निकालकर कृत्रिम श्वासोच्छ्वास द्वारा सजीव करने के समान बताया था। कुछ ने तो यहां तक खयाल किया था कि परिषद् मर चुकी है, और प्रधान मन्त्री तथा लार्ड चान्सलर इस बात की फ़िक्र में हैं कि उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया किस प्रकार की जाय। किन्तु मेरा खयाल है कि यह कहना ही सबसे अधिक ठीक है कि अबतक के इतने सप्ताहों तक जानबूझकर आवश्यकीय बातों की ओर से आंखें बन्द किये रखने के बाद अब अन्तिम घड़ी में परिषद् के संचालकों का ध्यान उनकी ओर गया है। किसी-न-किसी बहाने से उन्होंने मध्यबिन्दु अर्थात् मुख्य बात पर आने की किसी भी इच्छा के बिना इधर-उधर चक्कर काटना ही पसन्द किया। श्री वेजवुड बेन के शब्दों में "प्रश्न के मध्यबिन्दु पर आये बिना ही हम लोग संघ-योजना-समिति की अन्तिम बैठक में आ पहुंचे हैं।" अथवा, जैसा कि श्री बेल्सफ़ोर्ड ने अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा था—"गौण बातों पर उकता देनेवाली सम्पूर्णता के साथ बहस की जाने दी गई। इस

/351

वात पर सव सहमत हो गये कि व्यवस्थापिका-सभा के उच्च-विभाग में एक-सौ और निम्न-विभाग में दो-सौ सदस्य रखे जायं। किन्तु तीन-सौ सदस्यों की यह व्यवस्थापिका-सभा पार्लमेंट होगी अथवा वाद-विवाद सभा, यह अभी तक शंकास्पद ही है; क्योंकि कोई भी इस वात को नहीं जानता कि राजस्व, सेना अथवा वैदेशिक नीति के विषय में वे हस्तक्षेप कर सकेंगे अथवा नहीं, और यदि कर सकेंगे तो कव और किस हद तक।"

गांधीजी ने तो संघ-योजना-समिति के अपने सर्वप्रथम भा ण में ही इस वात की चेतावनी दे दी थी और उसके वाद भिन्न-भिन्न कई अवसरों पर आवश्यक वातों की ओर परिषद् का ध्यान खींचने का प्रयत्न किया और छोटी-मोटी तफ़सील की चर्चा में भाग लेने से इन्कार कर दिया था। अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाले कुछ प्रतिनिधियों और मुसलमान प्रतिनिधियों की अनुचित गुटवन्दी तथा अल्पसंख्यक समिति में प्रधान-मन्त्री के भापण से तो इस वाल की खाल निकालने की नीति की हद्द हो गई और इसलिए गांधीजी के लिए तो सव वातों को खोल देनेवाले और सच्चे भावनायुक्त भापण द्वारा सवको कोड़े लगाकर अपने कर्तव्य के प्रति जागृत करने के सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। परिषद् वुलाने वालों ने देखा कि यदि हम मौलिक विषयों पर प्रतिनिधियों के मत जाने विना ही उन्हें भारत वापस भेज देंगे तो इससे हम अपने आपको सर्वथा ग़लत परिस्थिति में डाल लेंगे। श्री वेजवुड वेन के भापण का उद्धरण तो मैं अभी दे ही चुका हूं। श्री ली स्मिथ ने उनका समर्थन किया और अंग्रेज़ों की ओर से कदाचित पहली ही वार परिषद् को याद दिलाया कि गांधीजी और लार्ड अर्विन के वीच हुए समझौते के अनुसार संरक्षणों के सम्वन्ध की चर्चा आवश्यक हो गई है। श्री वेन ने इस सुन्दर वाक्य में कहा—"क्या यह एक ऐसी वात है, जो कि एक हाथ में व्रेड शा (रेल्वे, हवाई जहाज़ आदि का टाइम टेवल) और दूसरे हाथ में घड़ी रखकर समाप्त की जा सके ?" अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, प्रधानमन्त्री, लार्ड सैंकी तथा मुसलमानों को भी इसपर विचार करना पड़ा और नतीजा यह हुआ कि अन्त में जिस वात से

भारत के करोड़ों मूक प्राणियों का सम्बन्ध है, अब हम उसकी चर्चा के मध्य में हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि परिषद् को अन्त में आवश्यकीय बातों का ध्यान हुआ है और दिन-प्रति-दिन जो भाषण हो रहे हैं उनका प्रधानमन्त्री की भावी घोषणा पर कुछ वास्तविक असर हो या न हो, कम-से-कम उनसे यह लाभ अवश्य होगा कि ब्रिटिश सरकार के सामने जनता की मांग जितनी भी सम्भव हो सके उतनी स्पष्टता के साथ आ जायगी।

मूल विषय

संघ-योजना-समिति में अपने दो लाक्षणिक भाषणों द्वारा गांधीजी ने लोगों की आंखें खोलीं। उन्होंने इतनी स्पष्टता के साथ, जितनी पहले किसीने नहीं की थी, यह बात साफ़ कर दी थी कि प्रत्येक बात इस मूल विषय पर निर्भर है कि ब्रिटेन ने भारत पर जो क़ब्ज़ा किया, आज जो वह उसे अपनी अधीनता में रख रहा है, और आगे जो वह उसपर अपना क़ब्ज़ा बनाये रखना चाहता है, वह उचित है या नहीं ? और कांग्रेस की ओर से इस तत्व को रखने के बाद कि ब्रिटेन ने भारत पर जो क़ब्ज़ा किया, आज जो वह उसे अपनी अधीनता में रख रहा है, और आगे भी जो वह उसपर अपना क़ब्ज़ा बनाये रखना चाहता है, वह अनुचित है, यह बात ज़ोर से कहने में उन्हें कुछ भी कठिनाई नहीं है कि 'यदि सारी सेना हमारे अधिकार में न आती हो तो उसे तोड़ देना चाहिए।' सच बात तो यह है कि हमें अपनी सत्ता सौंपने की ब्रिटेन की सच्ची नीयत ही नहीं है, और हममें से भी कुछ लोग सत्ता एवं अधिकार-सूत्र प्राप्त करने और भारत के पद-दलित और करोड़ों मूक जनता के हित में ही उसका सर्वथा उपयोग करने के लिए तैयार नहीं हैं। दोनों ओर के भाषणों, साथ ही लार्ड सैंकी के इस प्रश्न का कि 'क्या भारत चाहता है कि ब्रिटिश-सेना वापस खींच ली जाय ?' सर तेजबहादुर सप्रू तथा श्री शास्त्री जी के श्रद्धाहीन भाषणों तथा व्यापारिक भेद-भाव की नीति पर हुए गांधीजी के भाषणों से हमारे ही दलों में जो खलबली मच गई थी, उसका इस बात से खुलासा हो जाता है। क्योंकि इस भाषण में गांधीजी केवल व्यापार में भेद करने की नीति पर ही नहीं बोले थे, वरन् उन्होंने प्रजा द्वारा

प्रजा के लिए ही शासित उस भारत का चित्र सामने खड़ा कर दिया, जो कि केवल विदेशियों की लूट से ही स्वतन्त्र न होगा वल्कि देश के पूंजी-पतियों और ज़मींदारों और बौद्धिक तथा सामाजिक निरंकुश अमीर-उमरावों की लूट से भी, जो कि अभी तक विदेशियों की ही तरह ग़रीबों की गाढ़े पसीने की कमाई पर ही ज़िन्दा रहते आये हैं, मुक्त होगा। इसीलिए उनके इस भाषण को 'वोलशेविक भाषण' का नाम दिया गया। किन्तु कांग्रेस की अहिंसा की नीति उसको दूसरे किसी भी मार्ग से पृथक् कर देती है। साथ ही गांधीजी ने परिषद् के सामने यह वात छिपी न रखी कि कोई भी स्वार्थ जो न्यायपूर्वक प्राप्त न किया गया होगा, अथवा जो राष्ट्र के सर्वोत्तम हित के विरुद्ध होगा, उसे न्याय की दृष्टि से विचार किये जाने और तदनुकूल निर्णय के खतरे में पड़ना होगा। इसीलिए 'डेली मेल' ने आज यह पोस्टर अथवा विज्ञापन प्रकाशित किया है—"गांधीजी को घर वापस भेज दो।"

आज एक प्रमुख सार्वजनिक व्यक्ति के पुत्र ने गांधीजी से पूछा—"तव भारत के भविष्य में क्या है? क्या परिषद् का असफल होना निश्चित है?" उत्तर में गांधीजी ने कहा—"ऐसा कहना कृतघ्नता होगी। किन्तु मुझे सफलता की आशा वहुत कम है।" फिर पूछा गया—"क्या आप नहीं समझते कि सरकार ने इस विषय पर चर्चा करने दी, इसलिए वह अव कुछ करेगी? क्या सरकार में परिवर्तन हो जाने से कुछ अन्तर पड़ेगा?" गांधीजी ने तुरन्त ही विना किसी संकोच के स्थिति का सार वताते और दोनों ही प्रश्नों का एक-साथ जवाव देते हुए कहा—"अवश्य ही मैंने तो उससे अधिक अच्छाई की आशा की थी; किन्तु मुझे यह प्रतीत नहीं होता कि उसने सत्ता हमारे हाथ में सौंप देने का निश्चय कर लिया है। रहा दोनों दलों (मज़दूर और अनुदार) के संवंध में, सो मेरा खयाल है कि भारत के लिए तो दोनों में इतना ही अन्तर है जितना कि 'आवा दर्जन और छः कहने में।' सच पूछा जाय तो मुझे इस वात की खुशी है कि अनुदार-दल की इतनी अधिक वहुमति के साथ मुझे निपटना है। क्योंकि मैं यहां से कुछ चुराकर नहीं ले जाना

चाहता, मुझे तो इतनी बड़ी और अच्छी बात चाहिए, जिसे ग़रीब आदमी आसानी से देख और समझ सकें, और इसलिए यह अच्छा है कि मुझे एक मज़बूत दल के साथ लड़ना है और जो मैं चाहता हूँ वह उस मज़बूत दल से जीत लेना है। मुझे तो स्थायी चीज़ चाहिए। मुझे सम्बन्ध तोड़ना नहीं उसे बदल देना है। भारत और इंग्लैंड के बीच समान साझेदारी का सम्बन्ध तभी टिक सकता है, जब कि प्रत्येक पक्ष कमज़ोरी के कारण नहीं, बल्कि अपनी शक्ति का ज्ञान रखकर दोनों का हित-साधन करे। और इसलिए मैं यह अनुभव करना पसन्द करूँगा कि अनुदार दल के शासनकाल में हम अनुदार मतवादियों को वह समझा सकें कि न तो हम अयोग्य प्रतिपक्षी हैं, न अयोग्य साझेदार।"

किन्तु जैसा कि मैं हाल ही में कह चुका हूँ, मूल तत्व का ही प्रश्न विकट है। और अंग्रेज़ जनता की ओर से 'डेली मेल' उसे इस प्रकार रखता है—"भारत के बिना ब्रिटिश-राष्ट्रसंघ के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। व्यापारिक, आर्थिक, राजनैतिक और भौगोलिक दृष्टि से यह हमारे साम्राज्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। किसी भी अंग्रेज़ के लिए, इसपर के अधिकार को खतरे में डालना, बड़े-से-बड़े राजद्रोह का पाप करना होगा।"

श्री लायड जार्ज

श्री लायड जार्ज ने गांधीजी को अपने यहां चर्ट में निमन्त्रित करने का सौजन्य बताया था। गांधीजी को लाने और ले जाने के लिए उन्होंने अपनी मोटर भेजी और उनके साथ अपनी तीन घंटे की मुलाक़ात में अत्यन्त मधुरता और सर्वथा निष्कपटता के साथ बातचीत की।

भारतीय स्त्रियां

स्त्रियों की विभिन्न संस्थाओं की ओर से गांधीजी से भाषण के लिए प्रार्थनायें आई थीं, किन्तु मिस आगाथा हैरिसन ने उन सबको 'स्त्री-भारत-समाज' के अन्तर्गत इकट्ठी कर गांधीजी को संयुक्त-स्त्री-सभा में बोलने के लिए मार्ले-कालेज-भवन में निमन्त्रित किया। इस सभा में गांधीजी ने भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक बेहूदी धारणाओं को दूर करने का अवसर साधा और गत सत्या-

ग्रह-संग्राम में उन्होंने जिस वहादुरी से भाग लिया, उसका तादृश चित्र उपस्थित किया। उन्होंने कहा, "कई तरह से वे कदाचित आपसे कहीं अधिक उच्च हैं। आपको अपना मताधिकार प्राप्त करने में अनेक अवर्णनीय कष्टों का सामना करना पड़ा था। भारत में वह स्त्रियों को मांगते ही मिल गया। उनके सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के मार्ग में किसी प्रकार की कावट नहीं आई और स्त्रियां केवल कांग्रेस की अध्यक्षा ही नहीं हुई हैं, प्रत्युत् श्रीमती सरोजनी नायडू उसकी कार्यसमिति की सदस्या तक हैं। कई वर्षों से और गत सत्याग्रह-संग्राम में जव हमारी समितियां ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दी गई और उनके ज़िम्मेदार कार्यकर्त्ता जेल में भेज दिये गये, तव हमारी स्त्रियां ही थीं, जो मोर्चे पर सामने आईं। उन्होंने डिक्टेटरों—सर्वाधिकार-युक्त अध्यक्षों—का स्थान लिया और जेलें भर दीं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुषों के हाथों उन्हें कष्ट-सहन न करना पड़ा हो। उन्हें भी कड़वी घूंटें पीनी पड़ी हैं। किन्तु मैं आपको विना किसी हिचकिचाहट के कहना चाहता हूँ कि मिस मेयो की भारत-सम्वन्धी पुस्तक में आपने जो कुछ पढ़ा है, उसका ९९ प्रतिशत झूठ है। मैंने इस पुस्तक का एक-एक पृष्ठ पढ़ा है और उसे समाप्त करते ही मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा कि यह तो सर्वथा एक गन्दी नालियों के इन्सपैक्टर की रिपोर्ट है। मिस मेयो की कथित कुछ वातें सच हैं; किन्तु यह कहना कि वे वातें सर्व-साधारण में आमतौर पर प्रचलित हैं, सर्वथा झूठ है; और कुछ वातें तो उसने केवल अपनी कल्पना से ही घड़ ली हैं।"

इसके वाद गांधीजी ने वतलाया कि किस प्रकार गत वर्ष स्त्रियों के झुंड-के-झुंड घर से वाहर निकल आये और उन्होंने अपूर्व एवं आश्चर्यजनक जागृति का परिचय दिया। उन्होंने जलूसों में भाग लिया, क़ानून तोड़े, अंगुली तक उठाये विना और पुलिस को विना कुछ अपशब्द कहे लाठियों के प्रहार सहे, और अपनी विनय-शक्ति का उपयोग कर शरावियों से शराव और विदेशी वस्त्र के व्यापारियों तथा ग्राहकों से विदेशी वस्त्र वेचना और खरीदना छुड़वाने में सफलता प्राप्त की। वह स्त्री सरोजिनी नायडू की तरह

सुशिक्षिता नहीं, सर्वथा निरक्षर थी, जिसने अपने सिर पर लाठी के प्रहार सहन किये और रक्त की धारा बहते रहने पर भी अविचल भाव से डटी रहकर अपने साथ की बहनों को अपने स्थान से न हटने का आदेश देती रही और इस प्रकार बोरसद जैसे छोटे-से गांव को थर्मापोली बना दिया। गत वर्ष की विजय का मुख्य श्रेय इन्हीं स्त्रियों को है।

प्रश्नों के लिए बहुत कम समय रह गया था। किन्तु जो एक-दो प्रश्न पूछे गए; उनसे पता चलता था कि ये बहनें गोलमेज़-परिषद् के काम को कितनी आतुरता से देख रही हैं। गांधीजी ने उनसे कहा—"अब भी समय है कि यह दोनों देश संसार के कल्याण के लिए परस्पर समानता की शर्त पर संयुक्त रह सकते हैं। यह मेरी आत्मा के लिए सन्तोषप्रद न होगा कि भारत के लिए स्वतन्त्रता तो प्राप्त कर ली जाय और संसार की शान्ति में सहायता न दी जाय। मेरा विश्वास है कि जिस समय इंग्लैंड भारत को अपना शिकार बनाना छोड़ देगा, उस समय वह दूसरे देशों का शिकार भी बन्द कर देगा। कुछ भी हो, भारत तो इस रक्तशोषण के अपराध में भाग नहीं लेगा।"

१०

विविध वार्त्ता

पिछले कुछ दिनों में गांधीजी लन्दन अथवा अन्य स्थान की सभाओं में इस समय प्रायः सभी निर्णायक प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। प्रश्नों के उत्तर के रूप में उन्होंने जो-कुछ कहा है, वह सब मैं उन्हींके शब्दों में यहां दे देना चाहता हूं।

उनसे पूछा गया—क्या आप अपने बजट को बराबर करने के लिए नमक पर टैक्स न लगाते ? क्या आप संघ को कुछ वस्तुओं पर, जिनमें नमक भी शामिल है, टैक्स लगाने की अमर्यादित सत्ता दिये जाने से सहमत न होंगे ?

गांधीजी ने जवाब दिया—संघ-शासन को नमक पर कर लगाने का कोई हक़ नहीं होगा। जबतक मैं ग़रीबों पर टैक्स लगाने का पाप न

करूं, मैं नमक पर कर लगाकर वजट को वरावर करने की कल्पना तक नहीं कर सकता। यदि आप वजट को वरावर करना चाहते हैं तो सैनिक व्यय को कम क्यों नहीं करते ? पहले से ही अत्यधिक कर के वोझ से दवे हुए ग़रीव भारतीय करदाताओं पर और कर लगाना मानवता के विरुद्ध अपराध करना होगा। आप चाहें तो हवा और पानी पर भी टैक्स लगाकर भारत के ज़िन्दा रहने की कल्पना कर सकते हैं।

* * * *

गांधीजी को जितना दुःख इंग्लैंड में भारत के सम्बन्ध में फैले हुए अज्ञान से होता है, उतना और किसी वात से नहीं होता। इंग्लैंड के सब भागों से एकत्र, और अनेक संस्थाओं और प्रतिनिधि अंग्रेज़ पुरुषों और स्त्रियों के, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्मेलन में वोलते हुए उन्होंने कहा—"वह कौन है, जो यह कहता है कि आपने भारत का भला किया है ? हम या आप ? हल की नोक से दवनेवाला मेंढ़क ही जानता है कि नोक कहां चुभ रही है। क्या आप जानते हैं कि दादाभाई नौरोज़ी, फ़ीरोजशाह मेहता, रानडे, गोखले जैसे व्यक्ति, जो आपपर फ़िदा थे और ब्रिटिश-सम्बन्ध तथा आपकी सभ्यता द्वारा होनेवाले लाभों के लिए गर्वित थे, वे सव इस वात के कहने में सहमत थे कि कुल मिलाकर आपने भारत को हानि ही पहुंचाई है ? आप जव जायेंगे, हमें दरिद्रताग्रस्त और नपुंसक वने हुए छोड़कर जायेंगे; और जो लोग आपसे प्रेम करते हैं, उनकी परछांई आपसे पूछेगी—'शिक्षा के इन वर्षों में आपने क्या किया है ?' आपको यह वात समझ लेनी चाहिए कि आपके वेतन की दर से हम चौकीदार नहीं रख सकते; क्योंकि आप चौकीदारों से वढ़कर नहीं हैं और जिस राष्ट्र की औसत आमदनी दो आने रोज़ प्रति व्यक्ति हो, वह इतनी तनख्वाह नहीं दे सकता। मैं वार-वार इस वात को नहीं दुहराना चाहता कि जव कि आपके प्रधान मन्त्री का वेतन आपकी औसत आमदनी का ५० गुना है, भारत का वाइसराय एक भारतीय की औसत आमदनी का ५,००० गुना लेता है। आप कहते हैं कि हम एक दुर्वल जाति हैं। ठीक है, लेकिन हमारा दिल वड़ा मजवूत

है। श्रीमती सरोजिनी नायडू का दूसरा या तीसरा संस्करण नहीं, प्रत्युत् अक्षरज्ञान तक से अपरिचित और अशिक्षित दुबली-पतली भारतीय स्त्रियों तक ने छाती आगे कर लाठियों के प्रहार सहे हैं। आपके मत से हम शासन-कार्य में प्रवीण नहीं हैं। ठीक है, किन्तु क्या सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैन ने यह नहीं कहा कि सुशासन स्वशासन अथवा स्वराज्य का स्थानापन्न नहीं है? क्या आप, जो कि भूलें या ग़लतियां करने में सिद्धहस्त हैं, आप जो कि लार्ड सेलिस्बरी के शब्दों में भूलों के ज़रिये सफलता प्राप्त करना जानते हैं, हमें भूलें करने की स्वतन्त्रता न देंगे? हम विदेशी अंकुश से पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। असंख्य पुरुष और स्त्रियों की आत्मा में, जो विदेशी नियन्त्रण से उकता गये हैं, यह लौह-निष्ठा बन चुकी है कि हम यह स्वतन्त्रता, आप चाहें तो आपकी सहायता से, अन्यथा उसके बिना ही, प्राप्त करने के लिए उतावले हो रहे हैं।

"और अल्पसंख्यकों के प्रश्न के इस हौवे का क्या अर्थ है? मैं अपने जीवन-भर इसे नहीं समझ सकता। आप कांग्रेस को अनेक संस्थाओं में से एक अथवा सबसे बड़ी संस्था मानते हैं। किन्तु मैं आपसे कहता हूं कि कांग्रेस न केवल सबसे बड़ी संस्था है वरन् केवल वही सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रधान संस्था है, जो स्वतंत्रता के लिए लड़ी है। इस कांग्रेस की पुकार पर ही सैंकड़ों गांववालों ने प्रायः अपनी हस्ती तक को मिटा दिया, हज़ारों रुपये की फसल जला दी गई या कौड़ियों के मोल बेच दी गई और लाखों रुपये के मूल्य की ज़मीन ज़ब्त करली गई और बेच दी गई। क्या आप समझते हैं कि ये सब आपदायें हमने केवल टुकड़ों के ही लिए सही हैं? कहा जाता है कि कांग्रेस एक हिन्दू-संस्था है। क्या आप समझते हैं कि गतवर्ष जो लोग लड़े, जेल गये और मरे वे सब हिन्दू थे? उनमें कई हज़ार मुसलमान थे, और बहुत से सिख, ईसाई, पारसी और अन्य सब लोग थे। बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक जातियों की बात न कहिए। अकेली कांग्रेस ही सबसे बड़ी बहुसंख्यक जाति है। आप हमसे अल्पसंख्यक जातियों के दावों का सम्मान करने के लिए

सेवा की कसौटी

कहते हैं। क्या आप चाहते हैं कि कांग्रेस एंग्लो-इण्डियन और भारतीय ईसाइयों के लिए, और फिर मैं समझता हूं, उनमें प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक सम्प्रदायों के लिए, और अंग्रेज़ों के लिए और उनमें भी प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिकों के लिए, और हिन्दुओं में जैन, वौद्ध, सनातनी, आर्यसमाजी आदि जितनी उपजातियों में वांटना चाहें, उनके लिए भारत के टुकड़े-टुकड़े कर डालें ? कम-से-कम मैं तो अंग-विच्छेद के इस हृदयहीन कार्य में सम्मिलित न होऊंगा। क्या आप इसी तरह फूट डालकर शासन करने की अपनी नीति से भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं ? छोटी अल्पसंख्यक जातियों को पूर्ण नागरिक अधिकार मांगने का पूरा हक़ है; किन्तु इसके लिए उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व के लिए उत्साहित न कीजिए। वे कौंसिलों में चुनाव के खुले हुए द्वार से प्रवेश कर सकते हैं। एंग्लो-इंडियनों को अपने हितों के भुला दिये जाने का डर क्यों हैं ? क्या इसलिए कि वे एंग्लो-इण्डियन हैं ? नहीं, उनका डर इसलिए है कि उन्होंने भारत की कुछ सेवा नहीं की है। उन्हें पारसियों के उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए, जिन्होंने भारत की सेवा की है और जो पृथक्-निर्वाचन की मांग न करेंगे और यह इसलिए क्योंकि वे जानते हैं कि वे केवल अपनी सेवा के अधिकार से ही कौंसिलों में पहुँच जायँगे। दादाभाई नौरोज़ी का सारा जीवन भारत की सेवा में वीता और किसी भी अंग्रेज़ लड़की की तरह शिक्षित और सुसंस्कृत उनकी चारों पोतियां किसानों के लिए ग़ुलामों की तरह काम कर रही हैं। उनमें से एक-एक प्रान्त की डिक्टेटर थीं, और जव वह प्रान्तीय कौंसिल के लिए खड़ी हुईं तो उन्हें सवसे अधिक मत मिले। इस समय वह सरहद के पठानों में चरखे का सन्देश फैलाकर उनके हृदयों पर अधिकार कर रही हैं। इसी तरह एंग्लो-इंडियनों को भी सेवा के राजमार्ग द्वारा कौंसिलों में प्रवेश करना चाहिए। यही वात अंग्रेजों के सम्वन्ध में है। क्या यह लज्जा की वात नहीं है कि जिस देश को अंग्रेजों ने दरिद्र वनाया है, वे वहां अव भी रियायत चाहते हैं और दरिद्र देश की कौंसिल के लिए पृथक्-निर्वाचन का दावा करते हैं ? नहीं, मैं इन दलों के लिए भारत के टुकड़े-टुकड़े करने का गुनाह हरगिज़ नहीं कर सकता।

यह सारे राष्ट्र का अंग-विच्छेद अथवा टुकड़े-टुकड़े करने के सिवा और कुछ न होगा ।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने, जो लोकप्रसिद्ध प्राचीन रोम की स्त्रियों के समान किंचित् मल्लयुद्ध में अनुराग तथा बच्चों के ऊपर अभिमान करती हैं, एक दिन भारतीय नवयुवक साम्यवादियों के दल को गांधीजी से परिचित कराया। लगभग ये सब नवयुवक अपनी मातृभूमि से निर्वासित और उत्कट शोषक वृत्तिवाले थे। उन्होंने एक भीषण प्रश्नावलि, जिसको वे कुछ दिन पहले छोड़ गये थे, गांधीजी से पूछी। कुछ प्रश्न और गांधीजी के उत्तर यहां दिये जाते हैं।

प्र०—"किस रीति से भारतीय नरेश, जमींदार, मिल-मालिक, साहूकार और दूसरे नफ़ाख़ोर धनी हो जाते हैं, यह ठीक-ठीक बताइए।"

उ०—"वर्तमान काल में सर्वसाधारण को लूटकर।"

प्र०—"क्या ये वर्ग भारतीय मजदूरों और किसानों को बिना लूटे धनवान हो सकते हैं ?"

उ०—"हां, किसी अंश तक।"

प्र०—"क्या इन वर्गों को साधारण मजदूरों और किसानों से अधिक आराम से रहने का कोई सामाजिक अधिकार है, जब कि उनके श्रम से धनी मालदार होते हैं ?"

उ०—"कोई भी अधिकार नहीं है। मेरा विचार समाज के विषय में यह है कि यद्यपि जन्म से हम सबके समान अधिकार हैं, अर्थात् हम सबको

समाज

समान अवसर मिलने का अधिकार है, पर सबकी एक-सी योग्यता नहीं होती। यह बात सम्भवतः असम्भव है, जैसे सबकी ऊंचाई, रंग आदि एक-से नहीं होते। इस कारण सम्भवतः कुछ में कमाने की योग्यता अधिक और कुछ में कम होगी। बुद्धिमान मनुष्य अधिक कमा सकेंगे और इसके लिए वे अपनी बुद्धि काम में लायेंगे। यदि वे अपनी बुद्धि का सदिच्छापूर्वक उपयोग करेंगे तो वे राष्ट्र की सेवा करेंगे। वे अपनी कमाई बतौर संरक्षक के ही रख सकेंगे। हो सकता है कि इसमें मुझे बिलकुल सफलता न

मिले। परन्तु मैं तो इसीके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ और मौलिक अधिकारों के घोषणा-पत्र में भी यही बात समाविष्ट है।"

प्र०—"क्या आप यह नहीं मानते कि अपनी आर्थिक और सामाजिक मुक्ति के लिए किसानों और मज़दूरों का वर्ग-युद्ध जारी करना न्यायसंगत है, जिससे कि वे हमेशा के लिए समाज के परोपजीवी वर्गों को सहायता पहुंचाने के बोझ से मुक्त हो सकते हैं?"

उ०—"नहीं। उनकी तरफ़ से मैं स्वयं एक क्रान्ति कर रहा हूं। हां, वह है अहिंसात्मक क्रान्ति।"

प्र०—"युक्त प्रान्त में भूमिकर कम कराने के अपने आन्दोलन के द्वारा आप किसानों की स्थिति में कुछ सुधार भले ही करें, पर उस पद्धति के मूल पर आप आघात नहीं करते?"

उ०—"हां। किन्तु सभी बातें एकसाथ हो भी तो नहीं सकतीं।"

प्र०—"तब आप उनमें संरक्षकता का भाव कैसे पैदा करेंगे? क्या उन्हें समझा-बुझा कर?"

उ०—"कोरे शब्दों से समझाकर नहीं, बल्कि एकाग्र होकर अपने साधनों का व्यवहार करूंगा। कई लोगों ने मुझे अपने समय का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कहा है। सम्भव है कि ऐसा न हो, किन्तु मैं स्वयं भी अपने को क्रान्तिकारी मानता हूं—अहिंसात्मक क्रान्तिकारी। असहयोग मेरा साधन है। और तबतक कोई भी व्यक्ति धन-संग्रह नहीं कर सकता, जबतक कि उसे तत्सम्बन्धी व्यक्तियों का स्वेच्छापूर्ण या बलात् सहयोग न प्राप्त हो।"

प्र०—"पूंजीपतियों को संरक्षक बनाया किसने? उन्हें कमीशन लेने का क्या हक है? और आप वह कमीशन कैसे निश्चित करेंगे।"

उ०—"उन्हें कमीशन लेने का हक है, क्योंकि पूंजी उनके क़ब्ज़े में है। उन्हें संरक्षक किसीने नहीं बनाया है। मैं उनसे संरक्षक बनने को कह रहा हूं। आज जो अपने को सम्पत्ति का मालिक मानते हैं, मैं उनसे कहता हूं कि वे सम्पत्ति के संरक्षक बनें, अर्थात् अपने खुद के हक से उसके मालिक

बनें। मैं उनसे यह नहीं कहूंगा कि वे कितना कमीशन लें, किन्तु जो उचित हो वही उन्हें लेना चाहिए। मिसाल के तौर पर जिस आदमी के पास १००) होंगे उससे मैं कहूंगा कि वह ५०) खुद रखकर बाकी के ५०) मज़दूरों को दे दे। परन्तु जिसके पास एक करोड़ रुपया होगा उससे शायद मैं सिर्फ़ १ फी सदी सैकड़ा ही अपने लिए लेने को कहूंगा। इस प्रकार आप देखेंगे कि कमीशन की मेरी दर निश्चित नहीं होगी, क्योंकि उसका परिणाम तो घोर अन्याय होगा।

सुविधाप्राप्त वर्ग

"आम लोग (सर्वसाधारण) तो, ज़मींदारों और अन्य मुनाफ़ेदारों को आज भी अपना शत्रु नहीं मानते। परन्तु इन वर्गों ने उनके साथ जो अन्याय किया है उसका भान उनमें जाग्रत करना होगा। मैं आम लोगों को यह नहीं सिखाता कि वे पूंजीपतियों को अपना शत्रु मानें, किन्तु मैं तो उन्हें यह सिखाता हूं कि वे खुद ही अपने शत्रु हैं। असहयोगियों ने लोगों से यह कभी नहीं कहा कि अंग्रेज़ या जनरल डायर खराब हैं, किन्तु यह कहना था कि वे इस पद्धति के शिकार हुए कि जो बुरी है। अतः नाश उस पद्धति का होना चाहिए, न कि व्यक्ति का। और यही कारण है, जो स्वतन्त्रता की अग्नि से प्रज्वलित जनता के बीच में अंग्रेज़ अफ़सर ऐसी निर्भयता के साथ रह सकते हैं।"

प्र०—"अगर आप पद्धति पर ही हमला करना चाहते हैं तो फिर भारतीय और अंग्रेज़ पूंजीपतियों के बीच कोई भेद नहीं हो सकता। तब आप ज़मींदारों को कर देना क्यों नहीं बन्द करते ?"

उ०—"ज़मींदार तो उस पद्धति के एक औज़ार मात्र हैं अतः जब हम ब्रिटिश शासन से लड़ रहे हों तभी उनके खिलाफ़ भी आन्दोलन करें, यह ज़रूरी नहीं है। दोनों के बीच भेद किया जा सकता है। परन्तु फिर भी हमें लोगों को कहना पड़ा था कि वे ज़मींदारों को कर न दें, क्योंकि उसी रकम में से ज़मींदार सरकार को देते हैं। किन्तु वस्तुतः ज़मींदारों से खुद से हमारा कोई झगड़ा नहीं है, जबतक कि किसानों के साथ उनका

वर्ताव अच्छा हो।"

प्र०—"किसानों और मजदूरों को अपने भाग्य का अपने आप निर्णय करने योग्य पूर्ण शक्ति प्राप्त हो, ऐसा ऐस कार्यक्रम आपके पास क्या है?"

उ०—"मेरा कार्यक्रम तो वही है, जिसे कि कांग्रेस के द्वारा मैं अमल में ला रहा हूं। मेरा विश्वास है कि उसके कारण वर्तमान काल में किसी भी समय उनकी जैसी स्थिति थी उससे आज उनकी स्थिति कहीं वेहतर हुई है। यहां मैं उनकी आर्थिक स्थिति की वात नहीं कर रहा हूं, किन्तु उनमें जो अपार जागृति और उसके फलस्वरूप अन्याय एवं लूट का प्रतिरोध करने की शक्ति आ गई है उसका ज़िक्र कर रहा हूं।"

प्र०—"किसानों पर जो पांच अरव का क़र्ज़ है, उसमें से आप उन्हें किस प्रकार मुक्त करना चाहते हैं?"

उ०—"क़र्ज़ की ठीक रक़म क्या है, यह कोई नहीं जानता। किन्तु वह कुछ भी हो, अगर कांग्रेस के हाथ में सत्ता आई तो वह किसानों के कहे जानेवाले क़र्ज़ की भी उसी तरह जांच करेगी, जैसे कि वह इस वात की जांच पर ज़ोर दे रही है कि शासन छोड़नेवाली विदेशी सरकार से शासन ग्रहण करनेवाली भारतीय सरकार को क़र्ज़ का कितना वोझ स्वीकार करना चाहिए।"

* * * *

ऐसा ही मजेदार जवाव गांधीजी ने उस प्रश्न का दिया, जो कि उसके वाद उनसे पूछा गया। प्रश्न यह था कि आपने गोलमेज़ में देशी रियासतों की प्रजा के प्रतिनिधि रखने पर ज़ोर क्यों नहीं दिया? और अगर संघ-शासन के समय देशी रियासतों की प्रजा अपने हक़ स्थापित करने के लिए सत्याग्रह शुरू करे तो संघ-शासन की सेना उस विद्रोह को दवाने में राजाओं को मदद करेगी या नहीं? गांधीजी ने इसपर कहा, कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में सत्याग्रह को दवाने के लिए मैं सेना का उपयोग नहीं करूंगा, और न करने ही दूंगा; क्योंकि सत्याग्रह मानव-जीवन का शाश्वत धर्म

है और हिंसा जो कि पशु-धर्म है उसका वह सम्पूर्ण स्थान ले लेने वाला है। जहांतक पहले प्रश्न से सम्बन्ध है, जिस परिषद् की रचना में कांग्रेस को कोई सत्ता प्राप्त नहीं थी उसमें किसीको भी शामिल करने की मांग करने की न तो उन्हें छूट थी और न ऐसा करना कांग्रेस की प्रतिष्ठा के ही अनुकूल था। अतः उन्होंने कहा:—"कांग्रेस की ओर से मैं कोई प्रार्थना नहीं कर सकता था, और न यह बात शोभा ही दे सकती थी कि जो कांग्रेस सरकार के विरुद्ध सतत विद्रोही की स्थिति में रही है वह किसी को भी परिषद् में शरीक करने के लिए अरज़ो-मिन्नत करे।"

हमारे यहां आने के कुछ ही दिन बाद एक चिट्ठीरसां अपनी एक अजीब पुस्तक पर गांधीजी के हस्ताक्षर कराने के लिए संकोच के साथ मीराबहन के पास पहुँचा। इस पुस्तक में पृष्ठों के जुदे-जुदे भाग किये गए थे, और उनमें सैनिक, राजनीतिज्ञ, विद्वान्, दयाभावी और परोपकारी, इस प्रकार सबके हस्ताक्षर (उनके फोटो-सहित) यथास्थान दिये गये थे। और जब हमें यह मालूम हुआ कि यह पुस्तक हस्ताक्षर कराने आनेवाले की नहीं, बल्कि एक ऐसे साहसी चिट्ठीरसां की है, जिसने अपना जीवन भारत के कोढ़ियों की सेवा करने के लिए अर्पित कर दिया है, तो हमें कुछ आश्चर्य हुआ। इसलिए स्वभावतः ही हमारी इस ओर दिलचस्पी हुई और हमने श्री गुर से श्री कार्डिनल की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में पूछा, जो कि भारत में सैनिक बनकर आये थे, किन्तु जिनके मन में भारत के कोढ़ियों की सेवा की प्रेरणा हो गई थी। हस्ताक्षर प्राप्त करने और हमारे साथ सम्बन्ध स्थापित करने के बाद श्री गुर कभी-कभी हमारे पास आते और इंग्लैंड की पोस्टल-यूनियन की प्रवृत्तियों का हाल सुनाते और यूनियन के अन्तर्राष्ट्रीय मुखपत्र 'दि पोस्ट' की प्रतियां भेजते थे। उन्हींके प्रयत्न से यूनियन के प्रधान कार्यालय में इस सभा की योजना की गई।

ब्रिटिश पोस्टल यूनियन

उनके कार्यालय, उनके सभा-भवन, उनके सभा-संचालन के तरीक़े और उनके भाषणों से आपको एक क्षण के लिए भी यह संदेह न होगा कि

वह चिट्ठीरसां है। किन्तु वह सच्चे प्रामाणिक चिट्ठीरसां हैं, जो अपना काम करते हैं और उसके बाद समय निकालकर न केवल अपने देश के मामलों में ही प्रत्युत हमारे जैसे पद-दलित राष्ट्रों के प्रश्नों में भी दिलचस्पी रखते हैं। उनकी और हमारे देश के, गांधीजी के शब्दों में, 'अत्यन्त छोटी तनख्वाह वाले अज्ञान और अत्यन्त भारी काम के बोझ के नीचे दबे हुए' चिट्ठीरसाओं की कुछ तुलना ही नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है। वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र के निवासी और हमारे चिट्ठीरसां एक ग़ुलाम देश के वासी हैं, और उनके बीच जो भारी अन्तर है उसका परिचय कराने के लिए गांधीजी ने उन्हें बताया कि भारत की औसत आय का जितना गुना वेतन वाइसराय को मिलता है चिट्ठीरसां की आय का उतना ही गुना वेतन पोस्टमास्टर जनरल को मिलता है। ऐसी दशा में भारत के चिट्ठीरसां 'दि पोस्ट' जैसा सर्वांग-पूर्ण साप्ताहिक पत्र निकालें, अथवा ऐसा भव्य कार्यालय रखकर यूनियन अथवा संघ स्थापित करें, अथवा भारत में कोढ़ियों के लिए चन्दा देकर अस्पताल जारी करें, इसकी स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती। गांधीजी ने कहा—"भारत में एक पोस्टमैन्स-यूनियन है और कांग्रेस के अध्यक्ष उसके प्रेसीडेण्ट हैं। किन्तु यह यूनियन स्वभावतः ही केवल उनकी शिकायतें सुनाने का ही काम करती है।"

सैनिक से दानी यद्यपि इस प्रकार की तीव्र असमानता देखकर स्वतन्त्रता की भूख बढ़ती है और जबतक वह मिल नहीं जाती तबतक शान्त न बैठने का निश्चय अधिकाधिक दृढ़ होता है, फिर भी उससे इंग्लैंड के चिट्ठीरसां जो बड़ा काम कर रहे हैं उसके और भारत के चिट्ठीरसा, भारत के कोढ़ी अस्पतालों तथा गांधीजी के इंग्लैंड के कार्य के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए उनको आमन्त्रण करने के उनके विनय के प्रति आंखें मूंद लेना उचित नहीं। श्री कार्डिनल, जिन-पर भारतीय संस्कृति, भारतीय पुराण, भारत के वीर और वीरांगनाओं तथा भारत के पर्वतों और नदियों तक का भी अनिवार्य असर होता है, कहते थे कि यद्यपि वह भारत में सैनिक की तरह रहे, फिर भी उन्होंने अपनी आंखें खुली रक्खीं और जबसे उन्होंने इलाहाबाद में एक कोढ़ी को देखा,

तभी से उसका उनके दिल पर इतना गहरा असर हुआ कि उन्होंने अपने-आपको भारत के कोढ़ियों की सेवा के लिए अर्पित कर देने का निश्चय कर लिया। इंग्लैंड वापस लौटने पर उन्होंने चिट्ठीरसां की नौकरी की और मित्रों के सामने अपना अनुभव बताया और इंग्लैंड के चिट्ठीरसाओं के चन्दे से उन्होंने मदुरा में कोढ़ियों का एक अस्पताल खोला। इसके बाद पोस्टल-विभाग ने उन्हें दो बार तीन-तीन महीने की छुट्टी दी और उन्होंने अपनी देख-रेख में उस अस्पताल का इतना विकास किया कि आज उसने एक बड़े गांव का-सा रूप धारण कर लिया है। उन्होंने अब डाक-विभाग की नौकरी छोड़ दी है, किन्तु भारत के कोढ़ियों की सेवा नहीं छोड़ी है और इंग्लैंड के चिट्ठीरसाओं के स्वेच्छापूर्वक किये गये दान से उस परोपकार के काम को अब भी कर रहे हैं।

भारतीय चिट्ठीरसाओं के प्रति भी यूनियन की दिलचस्पी भुला देने योग्य नहीं है। यद्यपि उसे अन्तर्राष्ट्रीय यूनियन से सम्बन्ध जोड़ने की इजाज़त नहीं दी गई है, फिर भी अध्यक्ष ने बताया कि उसका दृष्टिकोण तो अन्तर्राष्ट्रीय ही है। और उन्हें आशा है कि एक दिन ऐसा आवेगा, जबकि उनकी यूनियन संसार-व्यापी यूनियन का एक अंग होगी। इस यूनियन के सदस्यों की संख्या १,००,००० है और उसके (अन्तर्राष्ट्रीय तथा स्थानीय) पत्र सब सदस्यों में बांटे जाते हैं।

उनकी इस प्रचुर संगठन-बुद्धि और उक्त परोपकारी कार्य की सराहना के लिए ही गांधीजी ने उनके साथ एक सायंकाल बिताना तुरन्त स्वीकार कर लिया और भारत के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने स्पष्ट भाषण में स्वातन्त्र्य-युद्ध की विशेषताओं का उन्हें परिचय कराया।

लन्दन से बाहर

१

चिचेस्टर की यात्रा तिगुनी सफल हुई, क्योंकि इसमें इंग्लैण्ड के तीन अग्रगण्य पुरुषों—चिचेंस्टर के बिशप श्री बेल, केनन कैम्पबेल और 'मैंचेस्टर गार्जियन' के भूतपूर्व सम्पादक श्री स्कॉट से—परिचय हुआ। गांधीजी की तीनों के साथ लम्बी और खुले दिल से वातचीत हुई और ये सब स्वयं गांधीजी से भारत की स्थिति समझ कर प्रसन्न हुए।

चिचेस्टर के बिशप

पहले मिले हुए अनेक पादरियों से बिशप सर्वथा जुदी तरह के पादरी हैं। उनमें धर्म का 'दिखावा' ज़रा भी नहीं है। उनके साथ किसी भी विषय की वातचीत करने पर वह उसपर अत्यन्त कुशलता के साथ बोलते हैं और जिस अनासक्ति के साथ बोलते हैं उससे कई बार हम चक्कर में पड़ जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो उन्होंने प्रत्येक वस्तु के विषय में अपना मत बना रखा है और अपने साथ किसी बात में मतभेद हो तो वह आपको यह अनुभव न होने देंगे कि उनका आपसे मतभेद है। वह अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं और शासन के कार्यों को बड़ी कुशलता के साथ पूरा करने की क्षमता रखते हैं। कोई सहसा यह खयाल करता है कि उन्होंने यह धन्धा पसन्द करने में भूल की है; किन्तु उसके इस खयाल की भूल तुरन्त ही समझ में आ जाती है। उनकी प्रत्येक बात में, जो वह कहते हैं या करते हैं, आध्यात्मिकता का गहरा प्रवाह बहता है, और उनका जीवन इतना सादा है कि केनन कैम्पबेल के शब्दों में 'हमारे बिशप जितने अपने महल में सुखी हैं, उतने ही झोंपड़े में भी रहेंगे।' कई वर्ष तक वह आक्सफ़ोर्ड के एक कालेज में अध्यापक थे, और जिस कालेज के लार्ड इर्विन विद्यार्थी थे, उसीके वह भी विद्यार्थी थे। लार्ड इर्विन और इसी तरह अन्य अनेकों अग्रगण्य पुरुषों के

साथ उनका सम्बन्ध है और मैं कह सकता हूं कि उनके साथ गांधीजी ने जितने घण्टे बिताये, उसका एक मिनट भी व्यर्थ न गया। अत्यन्त आत्म-विश्वास के साथ उन्होंने मुझसे कहा—"मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि अल्पसंख्यक जातियों के प्रश्न पर परिषद् टूट जायगी। कल रात को अनेक पादरियों ने गांधीजी से कई प्रश्न पूछे थे। एक ने जब कहा, मैं आशा करता हूं कि इस प्रश्न का निर्णय भारत में होगा, तब गांधीजी ने कहा कि इस प्रश्न का निपटारा यहीं करने का मेरा निश्चय है। "मैं समझता हूं कि वह ऐसा ही करेंगे। उनका आशावाद खोखला नहीं है।" इतना कहकर वह फिर बोले, "गांधीजी के साथ मेरी कई बहुमूल्य बातें हुई हैं; और एक सामान्य व्यक्ति जितना समझ सकता है, उतना मैंने उनसे समझ लिया है। किन्तु मुझे भय है कि कितने ही लोगों के विषय में जितना शंकित होना चाहिए, वह उससे कहीं अधिक शंकित हैं। अंग्रेज यदि भारत को छोड़कर चले जायं तो वहां अराजकता और मार-काट मच जायगी यह भय निराधार और अज्ञानजन्य है इसका मुझे पूरा विश्वास है। किन्तु क्या इसलिए भावी शासन-विधान में इस भय को दूर करने के लिए रक्खी जा सकने योग्य कोई योजना ढूंढ निकालने का प्रयत्न नहीं किया जा सकता ?"

गांधीजी के साथ उनकी लम्बी बातचीत हुई और यदि सम्बन्धित व्यक्तियों पर परिषद् के बाहर का कोई व्यक्ति असर डाल सकता हो, तो विशप निश्चय ही वह डाले बिना न रहेंगे।

मैंने कहा, "किन्तु मान लीजिये कि यदि कुछ भी न हुआ तो भी इस यात्रा से इंग्लैण्ड और भारत एक-दूसरे को निश्चय ही अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे और शान्तिवादियों को तो उनके काम में इस मुलाकात से बहुत अधिक सहायता मिलेगी।"

मेरी बात के प्रथम अंश के विषय में उनका निश्चय था; किन्तु दूसरे अंश के विषय में नहीं। उन्होंने कहा, "मुलाकात का परिणाम इससे अधिक कुछ क्यों न हो? और यदि परिणाम अधिक न हो, भविष्य अनिश्चित

है। हम जानते हैं कि मंचूरिया में कुछ करना चाहिए, फिर भी हम क्या कर सकते हैं? मैं निश्चित मानता हूं कि यदि यहां किसी प्रकार का समझौता न हो और इससे भारत में कुछ घटना घटित हो तो हमें ज़रूर कुछ करना चाहिए। किन्तु मुझे सन्देह है कि हम इतना साहस दिखा सकेंगे। मैं नहीं समझता कि शान्तिवादियों को वास्तव में क्या करना चाहिए, इसका वे निर्णय कर सकेंगे।" इस आफ़त का मुकाबला करने की अपेक्षा इसे टाल देने के लिए यह अधिक चिन्तित दिखाई देते थे।

मैंने पूछा—"आज अग्रगण्य शान्तिवादी कौन हैं?" उन्होंने तुरन्त ही अलबर्ट स्विट्ज़र और रोम्यारोलां का नाम लिया। डा. स्विट्ज़र की हाल ही की पुस्तक के सम्बन्ध में बहुत-कुछ बात करने के बाद उन्होंने कहा—"वह एक बड़ी भारी नैतिक शक्ति है। जब मैं पहली ही बार उनसे फ्रांस में मिला तब उनके कार्ड पर 'डाक्टर ऑफ़ मेडीसिन', 'डा. ऑफ़ थिऑलॉजी', और 'डाक्टर ऑफ़ म्यूजिक' की पदवियां देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। इतनी पदवियां प्राप्त करने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि उनका काम अफ़्रीका के जंगलों में खतरे और मौत के बीच में है। और यह खतरा और मौत भी ऐसा कि जिसमें ज़रा भी आकर्षण नहीं।" यह कहकर बिशप ने डा० स्विट्ज़र के स्वार्थत्याग की बड़ाई की। अंग्रेज़ शांतिवादियों में उन्होंने डा० मॉड रायडन, आर्थर पानसानबी और शांति-संघ के सदस्यों के नाम बताये। उन्होंने बिना किसी संकोच के कहा कि "एच० जी० वेल्स और बर्ट्रेण्ड रसल शांतिवादी हैं, किन्तु हम जिस नैतिक शक्ति की कल्पना कर रहे हैं, वह उनमें नहीं है।"

केनन कैम्पबेल

केनन कैम्पबेल दूसरी प्रकृति के व्यक्ति हैं। उनके हृदय को जान लेना कुछ भी कठिन नहीं। उनकी विद्वत्ता और संस्कारिता पहाड़ी झरने की तरह वह निकलती है। उनके जैसे प्रसिद्धिप्राप्त महान् उपदेशक का जितना गहन अध्ययन होना चाहिए उतना गहन और विशाल अध्ययन उनका है और पूर्व और पश्चिम के तत्त्वज्ञान में उन्हें कई समानतायें दिखाई दी हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लेखों

का उनके हृदय पर स्थायी असर पड़ा है, और यद्यपि कुछ वर्षो पहले वह उग्र वाद-विवाद खड़ा करके धर्मशास्त्रियों पर कठोर आघात कर चुके हैं, किन्तु फिर भी उनका हृदय शान्त और चिन्तनशील जीवन के लिए छटपटाता है। 'स्वराज्य' का मूल समझ लेने के लिए वह वहुत उत्सुक थे, और जब गांधीजी ने कहा कि उसका मूल आत्मशुद्धि और आत्मवलिदान है, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—"यही सब धर्मों का सार है।" वह 'आधुनिक विज्ञान के विनाशक साधनों' से उकता गये हैं और वह यह अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अर्थ और काम की दृष्टि होना ही हमारी सब आपदाओं अथवा रोगों की जड़ है। भारत के आंदोलन के सम्बन्ध में उनके हृदय में गहरी-से-गहरी सहानुभूति है। यह कहने में ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं कि गांधीजी के साथ का उनका परिचय आत्मा के साथ आत्मा का ही परिचय था।

श्री स्कॉट

पत्रकारों के महारथी श्री स्कॉट की मुलाकात तो स्वयं गांधीजी के शब्दों में एक तीर्थयात्रा की तरह थी। ५० वर्ष तक 'मेंचेस्टर गार्जियन' के सम्पादक-पद का उपभोग करके ८३ वर्ष की अवस्था में, सन् १९२९ में, उससे मुक्त हुए। इस समय उनकी अवस्था ८५ वर्ष की है, किन्तु हमने उन्हें अपना ओवरकोट लेने के लिए सीढ़ियों पर से जिस दृढ़ता और स्थिरता के साथ चढ़ते-उतरते देखा उस से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उनमें अभी २० वर्ष के नवयुवक-जैसा उत्साह है। जीवन-भर के परिश्रम के पश्चात् मिला हुआ विश्राम वह इंग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे पर वोगनोर में अपनी वहन के घर में विता रहे हैं। सम्राट् ने अपनी पिछली बीमारी के बाद का समय यहां विताया था, तवसे वोगनोर को विशेष प्रसिद्धि मिल गई है। यहां हम श्री स्कॉट तथा उनकी वहन से मिले। उनकी वहन की अवस्था ९७ वर्ष की है, फिर भी उनकी सब शक्तियां अखण्डित हैं, उनके चेहरे पर जरा भी झुर्री नहीं पड़ी है, केवल स्वभावतः सुनाई कुछ कम देने लगा है। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सब बातों में उनकी दिलचस्पी है। गांधीजी की भेंट को वह अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण

घटना समझती थीं। हम रवाना होने लगे उस समय गांधीजी ने उनसे कहा—"मुझे आशा है कि मेरे उद्देश्य के प्रति आपकी शुभकामनाएं हैं।" इसपर उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा—"हां, हां, अवश्य !"

श्री स्कॉट के साथ गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई। गांधीजी उनके साथ तर्क-वितर्क अथवा वाद-विवाद करके उन्हें किसी प्रकार तंग नहीं करना चाहते थे। ज्यों ही वृद्ध स्कॉट उनका स्वागत करने के लिए आगे आये, गांधीजी ने उनसे कहा, "यह तो केवल तीर्थयात्रा है। ग़लतफ़हमी और विपरीत प्रचार के विरुद्ध आपके पत्र ने अपूर्व काम किया है और मैंने सोचा कि और कुछ नहीं तो केवल कृतज्ञता-प्रदर्शन के लिए ही मुझे आपसे मिलना चाहिए।" श्री स्कॉट गांधीजी को अपने घर के पिछले भाग के एक कांच के कमरे में ले गये। यह कमरा इस प्रकार बनाया गया था कि चारों ओर से उसमें सूर्य-प्रकाश अच्छी तरह आ सके। वहां वे दोनों बातें करने लगे। मैं और चार्ली एण्डरूज़ बराबर के कमरे में से देखते और बातें सुनते रहे। ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री स्कॉट वर्तमान घटनाओं से अच्छी तरह परिचित थे। गांधीजी ने यहां एक सभा में कहा था कि सब मिलाकर परिणाम में अंग्रेज़ी राज्य भारत के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए स्कॉट ने पूछा—"क्या आप नहीं मानते कि भारत में जो एकता है, वह अंग्रेज़ी शासन के ही कारण है ?" गांधीजी ने कहा—"हां, यह एकता अंग्रेज़ी शासन ने हमारे सिर पर थोपी है। नतीजा यह हुआ है, जैसा कि हम इस समय देख रहे हैं, कि आन-बान का प्रसंग आने पर असंख्य विनाशक शक्तियां उद्‌भूत हो जाती हैं। मेरी इस बात से श्री मैक्डोनल्ड चिढ़ गये थे; किन्तु मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि परिषद् में भारत के चुने हुए सच्चे प्रतिनिधि होते तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा होने में कुछ भी कठिनाई न होती। अभी तो, जैसा कि सर अली इमाम ने कहा था, प्रत्येक प्रतिनिधि प्रधान मन्त्री की इच्छानुसार यहां आ सके हैं। और मान लीजिये कि राष्ट्र ने चुनकर भी इन्हीं व्यक्तियों को भेजा होता, तो आज उन्होंने जो ढंग अख्तियार कर रक्खा है, उस समय उन्हें इससे अधिक जिम्मेदारी का तरीका अख्तियार करना पड़ता। सच

वात तो यह है कि छोटी-छोटी हास्यास्पद अल्पसंख्यक जातियों में से व्यक्ति पसन्द कर लिये गये हैं, वे उन जातियों के प्रतिनिधि कहे जाते हैं, और वे चाहे जितने रोड़े अटका सकते हैं।"

किन्तु सव दलील मैं यहां न दे सकूंगा और सच तो यह है कि, जैसा कि पहले कह चुका हूं, श्री स्कॉट के सामने उन्होंने दलील के तौर पर कुछ रखा ही नहीं। उन्होंने घटनाओं से परिपूर्ण भूतकाल का विचार किया, 'मिठास और तेजपूर्ण सुन्दर काली आंखोंवाले' ग्लैडस्टन और सदैव के लिए इतिहास पर अपनी राजनीतिज्ञता की छाप विठा देनेवाले कैम्पवेल वेनरमेन जैसे व्यक्तियों की, और दक्षिण अफ़्रीका का विधान वनाते समय उन्होंने जो वड़ा हिस्सा लिया उसकी याद की और ऐसे वीर पुरुषों के लिए आह भरी।

२

भावी साम्राज्य-विधायकों के वीच

ईटन एक तरह अनुदार दल का, अथवा, अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो, साम्राज्यवादियों का सुदृढ़ दुर्ग है, जहां पर मध्यमवर्ग के वालकों को रेवरेण्ड पेपिलोन के शब्दों में "भूमि पर अधिकार करने, वहां के जंगली लोगों पर शासन करने और साम्राज्य-निर्माण करने में पौरुष वताना" सिखलाया जाता है। ईटन का सार्वजनिक स्कूल, "साढ़े चार शताब्दियां हुईं, इंग्लैण्ड की प्रगति और खुशहाली का अंग वन रहा है।" ईटन के लिए यह गौरव की वात है कि उसने इंग्लैण्ड को ग्लैडस्टन, सेलिसवरी, रोज़वरी और वालफ़ोर जैसे प्रधान मन्त्री दिये और भारत को वेलेस्ली, मेटकाफ़, आक्लैंड, एलिनवरो, कैनिंग, एल्गिन, डफ़रिन, लैन्सडाउन, कर्ज़न और इर्विन जैसे वाइसराय और वहुत से गवर्नर भेजे। उनकी ईटन की शिक्षा के विषय में यह वात गर्वपूर्वक कही जाती है कि इस शिक्षा का ही कारण था कि "उन्होंने कई वार तो जीवन को ख़तरे में डालकर और प्राण तक गंवाकर इस विशाल देश का कारवार

चलाने में सहायता की है।" वेलिंग्टन, रावर्ट्स और बूलर जैसे बड़े-बड़े सैनिक सब ईटन के थे और ईटन-निवासी को यह सिखाया जाता है कि "जहां-जहां युद्ध में इंग्लैण्ड का झंडा फहराया गया है, वहां-वहां अनेकों ईटोनियनों ने स्वदेश के लिए अपने प्राणों की आहुतियां दी हैं।" ईटन-उत्साही एक सज्जन का तो कहना है—"ईटन प्रति-दिन एक महापुरुष तैयार करता है, और देश के भावी इतिहास के लिए सामग्री देता है।"

जहां इंग्लैण्ड के उच्चवर्ग के वालकों को इस परम्परा के आधीन शिक्षित किया जाता है, वहां वड़े विद्यार्थियों को गांधीजी-जैसे साम्राज्य के बाग़ी को आमन्त्रित करने और स्कूल के हेडमास्टर का अपने पांचसौ वर्ष पुराने महल में उन्हें ठहराने की जाज़त देना कुछ आसान काम न था। इस आमन्त्रण और हेडमास्टर के अत्यन्त सौजन्यपूर्ण आतिथ्य के लिए कृतज्ञ होते हुए भी मेरा खयाल है कि यह कहना ठीक होगा कि इस आमन्त्रण का उद्देश्य भी वालकों को साम्राज्यवाद का ही एक और पाठ देना था। ईटन के वालकों के लिए लगभग २५,००० पुस्तकों का एक वृहत् पुस्तकालय है; किन्तु भारत का जो इतिहास उन्हें सिखलाया जाता है, वह तो वही प्रचलित इतिहास है और कदाचित् इस निमन्त्रण का उद्देश्य भी यही वताना था कि भारतवासी भारत का शासन चलाने में असमर्थ हैं और इस-लिए उसे अव भी इंग्लैण्ड के ही मातहत रहना चाहिए। हम क्लव के ५० विद्यार्थियों से मिले, और उनके सामने भाषण देने की अपेक्षा गांधीजी ने उनसे प्रश्न पूछने और खुले दिल से वातचीत करने के लिए कहा। किन्तु उनके पास तो एक ही प्रश्न था अथवा अधिक स्पष्ट शब्दों में दो प्रश्न थे; और ऐसा मालूम होता था, मानो उस जादू के दायरे से वाहर धर-उधर हटने से उन्हें रोक दिया गया है।

सभापति ने कहा—"शौक़तअली ने मुसलमानों का पक्ष हमें समझाया। आप हमें हिन्दू-पक्ष समझावेंगे ?" और जव गांधीजी ने विद्यार्थियों से प्रश्न करने के लिए कहा तो एक लड़के ने यही प्रश्न दुहराया। ईस्ट-एण्ड के ग़रीव वालक और यहां के लड़कों में कितना अन्तर है! उन वालकों ने तो गांधीजी

से उनके घर, पोशाक, चप्पल और भाषा के सम्बन्ध में ढेरों प्रश्न पूछ डाले, और यहां के बालक निश्चित प्रश्न के सिवा कुछ न पूछ सके ! किन्तु उन ग़रीबों को कहीं साम्राज्य-विधायक थोड़े ही होना था ।

कुछ भी हो गांधीजी ने यह चुनौती स्वीकार कर ली और इसका ऐसा उत्तर दिया, जिसके लिए वे लोग तैयार न थे । मैं यहां उसका केवल सारांश देता हूं ।

विदेशी फच्चर

"आपका इंग्लैण्ड में बड़ा स्थान है । आप लोग भविष्य में प्रधान-मंत्री और सेनापति बनेंगे और इसलिए इस समय जब कि आपका चरित्र-निर्माण हो रहा है, और आपके हृदय में प्रवेश कर सकना आसान है, मैं उसमें प्रवेश करने के लिए उत्सुक हूं। आपको परम्परा से जो झूठा इतिहास पढ़ाया जाता है, उसके विपक्ष में मैं आपके सामने कुछ हक़ीक़तें रखना चाहता हूं । उच्च अधिकारियों में मैं अज्ञान देखता हूं । अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, प्रत्युत ग़लत बातों पर निर्धारित ज्ञान है । इसलिए मैं आपके सामने सच्ची बातें रखना चाहता हूं, क्योंकि मैं आपको साम्राज्य का निर्माता नहीं प्रत्युत उस राष्ट्र के सदस्य मानता हूं, जिसने अन्य राष्ट्रों को लूटना छोड़ दिया हो और जो अपने शस्त्र-बल के आधार पर नहीं, प्रत्युत नैतिक बल से संसार की शांति का रक्षक बना हो । इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि कम-से-कम मेरे लिए कोई हिन्दू-पक्ष नहीं है, क्योंकि अपने देश की स्वतन्त्रता के विषय में जितने हिन्दू आप हैं, मैं उससे अधिक नहीं । हिन्दू-महासभा के प्रतिनिधियों ने हिन्दू-पक्ष पेश किया है । ये प्रतिनिधि हिन्दू-मनोवृत्ति के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, किन्तु मेरे विचार में, उनका यह दावा उचित नहीं । वे इस प्रश्न का राष्ट्रवादी निर्णय पसंद करेंगे, वह इसलिए नहीं कि वे राष्ट्रवादी हैं, प्रत्युत इसलिए कि वह उनके अनुकल है । इसे मैं विनाशक नीति कहता हूं, और उन्हें समझाता हूं कि वे बड़ी बहुमति के प्रतिनिधि हैं, इसलिए उन्हें झुककर छोटी जातियां जो मांग रही हैं, वह दे देना चाहिए । इससे वातावरण जादू की-सी तरह साफ़ हो जायगा ।

हिन्दुओं का व्यापक समुदाय क्या समझता है और क्या चाहता है, इसका किसीको कुछ पता नहीं; किन्तु मैं इतने वर्षों से उनके बीच में फिरते रहने का दावा करता हूं, इसलिए मैं खयाल करता हूं कि वे ऐसी निकम्मी बातों की ज़रा भी परवा नहीं करते, व्यवस्थापक सभाओं में अपने स्थानों और सरकारी ओहदों के रूप में टुकड़ों के प्रश्न पर वे जरा भी अशान्त नहीं होते। साम्प्रदायिकता का यह हौआ अधिकांश में शहरों में ही है, और ये शहर कोई भारत नहीं है, प्रत्युत लन्दन और अन्य पाश्चात्य शहरों के ब्लाटिंग-पेपर (स्याही-चूस) हैं और जान में व अनजान में गांवों का शिकार करते हैं, और इंग्लैण्ड के दलाल बनकर इन गांवों को लूटने में आपके एजेण्ट की तरह काम करते हैं। भारत की स्वतन्त्रता के जिस प्रश्न को ब्रिटिश मन्त्रिगण जानबूक कर टालते रहते हैं, उसके सामने इस साम्प्रदायिक प्रश्न का कुछ भी महत्व नहीं है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि असन्तुष्ट और बाग़ी भारत को वे अधिक दिन तक अपने पंजे में न रख सकेंगे। अवश्य ही हमारी बग़ावत शान्तिमय अर्थात् अहिंसात्मक है; फिर भी वह बग़ावत तो है ही। जो रोग इस समय जाति के कुछ भागों को क्षीण कर रहा है, उसकी अपेक्षा भारतवर्ष की स्वतन्त्रता कहीं अधिक उच्च वस्तु है, और यदि शासन-विधान-सम्बन्धी प्रश्न का निपटारा सन्तोषजनक हो जायगा, तो साम्प्रदायिक अनैक्य तुरन्त ही ग़ायब हो जायगा। जिस क्षण विदेशी फच्चर हट जायगी, उसी क्षण जुदा हुई जातियां आपस में मिले बिना रह नहीं सकतीं। इसलिए हिन्दू-पक्ष नाम का पक्ष है ही नहीं, और यदि कोई हो भी तो उसे छोड़ देना चाहिए। यदि आप इस प्रश्न का अध्ययन करेंगे, तो आपको इससे कोई लाभ न होगा, और जब आप इसकी उत्तेजनात्मक तफ़सीलों में उतरेंगे, तब बहुत सम्भव है आप यही खयाल करेंगे कि हम टेम्स नदी में डूब मरें तो अच्छा।

"जब मैं आपसे कहता हूं कि साम्प्रदायिक प्रश्न की कोई बात नहीं और आपको उससे ज़रा भी चिन्तित होने की जरूरत नहीं, आपको मेरी इस बात को ईश्वर-प्रेरित सत्य की तरह मान लेना चाहिए। किन्तु

यदि आप इतिहास का अध्ययन करें, तो आप इस बड़े प्रश्न का अध्ययन करें कि किस प्रकार करोड़ों व्यक्तियों ने अहिंसा को ग्रहण करने का निश्चय किया और किस प्रकार वे उसपर टिके रहे। मनुष्य की पाशविक वृत्ति का, जंगली नियमों का अनुसरण करनेवाले व्यक्तियों का अध्ययन न करो, वरन् अभ्यास करो मनुष्य की आत्मा के वैभव का। साम्प्रदायिक प्रश्नों में उलझे हुए व्यक्ति पागलखानों में पड़े हुए लोगों की तरह हैं। किन्तु जो लोग अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए किसी को चोट पहुंचाये विना अपने प्राणों की आहुतियां देते हैं, आप उनका अध्ययन करें, उच्च-कोटि के मनुष्य का, आत्मा की पुकार और प्रेम-धर्म का अनुसरण करनेवाले व्यक्तियों का अध्ययन करें, जिससे आप जव बड़े हों, तव अपनी विरासत को सुधार सकें। आपका राष्ट्र हमपर शासन करता है, इसमें आपके लिए कोई गर्व की बात नहीं हो सकती। ऐसा कभी नहीं हुआ कि ग़ुलाम को वांधनेवाला स्वयं कभी न वंधा हो, और दूसरे राष्ट्र को ग़ुलामी में रखनेवाला राष्ट्र स्वयं ग़ुलाम वने विना नहीं रहा। इंग्लैण्ड और भारत के वीच आज जो सम्वन्ध है, वह अत्यन्त पापपूर्ण है, अस्वाभाविक है, और मैं अपने काम में जो आपका शुभाशीर्वाद चाहता हूं वह इसलिए कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने का हमारा स्वाभाविक हक़ है, वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हमने जो तपस्या की है और जो कष्ट सहे हैं उनके कारण हमारा यह अधिकार दुगुना हो गया है। मैं चाहता हूं कि आप जव बड़े हों, तव आप अपने राष्ट्र को लुटेरेपन के पाप से मुक्त करके उसकी कीर्ति में अपूर्व वृद्धि करें और इस प्रकार मानव-जाति की प्रगति में अपना भाग अदा करें।"

दूसरा प्रश्न यह था कि जब अंग्रेज़ भारत से चले जायंगे, तो लुटेरे राजाओं के सामने भारत की क्या दशा होगी ? गांधीजी ने इन नवयुवकों को विश्वास दिलाया कि राजाओं की ओर से हमें कोई भय नहीं है, और यदि वे दुःखदायी हुए भी तो अंग्रेज़ों की अपेक्षा उनसे समझ लेना कहीं

आसान होगा ! उनकी दुर्बलतायें ही उन्हें किसी प्रकार की शरारत करने से रोक रखेंगी । भारत का गौरव अंग्रेज़ों को भारत से निकाल देने में नहीं, प्रत्युत उनका हृदय-परिवर्तन कर उन्हें लुटेरे से मित्र बनने और आवश्यकता के समय भारत के सम्मान की रक्षा करने के लिए वहीं रखने में होगा ।

इस मुलाकात का विद्यार्थियों के हृदय पर क्या असर हुआ, इसका कुछ पता नहीं । किन्तु यह मेरा विश्वास है कि इस मुलाकात से उनकी बुद्धि पर जो आघात पहुंचा है, उसे वे जल्दी भूल नहीं सकते । सुना-सुना कर प्राप्त किये ज्ञान की अपेक्षा सजीव व्यक्ति का संसर्ग अनन्तगुना बहु-मूल्य है और प्रेमपूर्ण सम्मिलन के स्पष्ट प्रकाश के आगे ग़लतफ़हमी का कोहरा अक्सर हट जाता है । तत्काल हृदय-परिवर्तन का एक उदाहरण यहां देता हूं । मीरां बहन की भारतीय पोशाक और गांधीजी के प्रति उनकी शिष्यवृत्ति देखकर वहां की कुछ महिलाओं के हृदयों को गहरी चोट पहुंची । ये बहनें इस बात को मानने के लिए तैयार ही न थीं कि मीरां बहन अंग्रेज़ हैं । जब मीरां बहन ने कहा कि केवल एडमिरल स्लेड की पुत्री ही नहीं, वरन् उनके एक निकट सम्बन्धी डा० एडमण्ड बार ईटन के प्रसिद्ध विद्यार्थी थे और कई वर्षों तक ईटन के हेडमास्टर रह चुके हैं, तो इसपर कुछ कटु आलोचना भी हुई, किन्तु इससे मीरां बहन ज़रा भी विचलित एवं दुःखित न हुईं । उन्होंने हंसते-हंसते सब प्रश्नों के उत्तर दिये । परिणाम यह हुआ कि दो घण्टे बाद इनसे खुले दिल से बातें कर चुकने पर प्रश्न करनेवाली उनकी मित्र बन गईं ।

लन्दन में जब एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सभा में गांधीजी ने कहा कि भारत में अंग्रेज़ों के शासन में, उनके पहले जितना था, उससे भी कम अक्षर-ज्ञान है, तब कई लोग इसे एकदम अतिशयोक्ति समझकर उनके इस कथन से दुःखित हो उठे थे । किन्तु यदि कोई व्यक्ति ५०० वर्ष पुराने ईटन का ख़याल करे, आक्सफ़ोर्ड के २१ कालेजों में कम-से-कम तीन तो सन् १२६१ के समय के पुराने हैं, और बेलियल, मर्टन और यूनि-

वर्सिटी कालेज ये तीनों कालेज सबसे पुराने होने के विषय में स्पर्द्धा करते हैं यह देखे, और दूसरी ओर अनेक राष्ट्रों से प्राचीनतम संस्कृति का अभिमान रखनेवाले भारत में ईटन अथवा बेलियल-जैसी पुरानी शिक्षण-संस्था के खोज का व्यर्थ प्रयत्न करे, तो कदाचित् वह गांधीजी के उक्त कथन की वास्तविकता की कल्पना कर सके। अंग्रेज़ी शासन से पहले भारत में एक समय ऐसा था, जब कि भारत के सब प्राचीन नगरों में विद्या के धाम और गांव-गांव में पाठशालाएं थीं; ब्रह्मदेश में प्रत्येक गांव में बौद्ध साधुओं के विहार से साथ एक-एक पाठशाला थी। इस बात का आश्चर्य है कि अब वे पाठशालाएँ कहां गईं! यदि ये पाठशालाएँ रहने दी गई होतीं, और सावधानी के साथ उनका पोषण हुआ होता तो हमारे यहां भी ईटन, बेलियल और मर्टन जसी शिक्षण-संस्थाएं होतीं। इन प्राचीन संस्थाओं का निरीक्षण करते समय किसी भी भारतीय को इतने ही प्राचीन इतिहासवाली अपनी संस्थाओं का स्मरण हुए बिना नहीं रह सकता।

अंग्रेज़ भारत की शिक्षा के संरक्षक नहीं हैं

३

आक्सफ़ोर्ड की मुलाकात एक महत्त्व की घटना थी, क्योंकि वहां सर्वथा विशुद्ध प्रेम, और भारतीय प्रश्न को समझने और उसकी तहतक पहुंचने की सच्ची और हार्दिक इच्छा थी। बेलियल कालेज के अध्यापक डा० लिण्ड्से जब भारत में आये थे, तब उन्होंने अपने घर में कुछ दिन शान्तिपूर्वक बिताने के लिए गांधीजी को निमन्त्रण दिया था। उन्होंने अपना वह निमन्त्रण यहां फिर दुहराया। इसमें उनका उद्देश्य गांधीजी को एक दिन शान्ति पहुंचाना तो था ही, साथ ही इससे भी अधिक वे आक्सफ़ोर्ड के विद्वद्-समुदाय से उनका परिचय करा देना चाहते थे। उनमें शासक जाति होने का गर्व छू भी नहीं गया है, (वे स्कॉट ह) और वे मानते हैं कि

आक्सफ़ोर्ड

भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए भारतीय प्रश्न की ओर मित्रों की दिलचस्पी कराने में उन्ह ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई। अनेक सभाएं और सम्भापण हुए। श्री लिण्ड्से के घर पर ही कोई चालीस के लगभग खास-खास मित्रों की एक सभा हुई और पढ़े-लिखे विद्वानों की तीन सभाएं अन्यत्र हुई। श्री टामसन ने, जिन्होंने कि 'अदर साइड आफ़ दि मेडल' (ढाल का दूसरा रुख) नामक पुस्तक लिखी है और जिन्होंने 'एटोनमेण्ट' (प्रायश्चित्त) नामक पुस्तक में इंग्लैण्ड को भारत के प्रति किये गए पापों का प्रायश्चित्त करते हुए चित्रित किया है, डा० गिलवर्ट मरे, डा० गिलवर्ट स्लेटर, प्रो० कुपलैंड और डा० दत्त जैसे मित्रों को गांधीजी के साथ शान्तिपूर्वक लम्वी वातचीत करने के लिए निमन्त्रित किया था। आक्सफ़ोर्ड के अग्रगण्य अध्यापकों की भी ऐसी ही सभा हुई, और उसके वाद रेले-क्लव के सभ्यों की सभा हुई। इस क्लव में अधिकतर उपनिवेशों के विद्यार्थी हैं, जिनमें कई सेसिल रहोड्स की छात्रवृत्ति पानेवाले और प्रायः सभी साम्राज्य के सूक्ष्म प्रश्नों का अध्ययन करनेवाले हैं। सवसे पीछे, किन्तु महत्त्व में किसी से कम नहीं, भारतीय विद्यार्थियों की मजलिस के तत्वावधान में एक सभा हुई, जिसमें कुछ अंग्रेज़ विद्यार्थी भी आमन्त्रित किये गये थे।

श्री टामसन के घर पर ई वातचीत में अनेक विषय छिड़े और कई मौलिक सिद्धान्तों पर चर्चा हुई। पाठकों को कदाचित् याद होगा कि श्री गिलवर्ट मरे ने करीव तेरह वर्ष हुए 'हिवर्ट जनरल' नामक पत्र में पशुवल के विरुद्ध आत्मवल की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए एक लेख लिखा था। उन्हें हमारे आन्दोलन में अहिंसक क्रान्ति और राष्ट्रवाद अत्यन्त भयंकर रूप धारण करते हुए दिखाई दिया और ससे वे वड़े परेशान दिखाई दिये। उन्होंने कहा—"आज मेरा आपके साथ श्री विन्स्टन चर्चिल से भी अधिक मतभेद है।" उत्तर में गांधीजी ने कहा—"आप विश्व-संस्कृति के नाश को रोकने के लिए जुदे-जुदे राष्ट्रों के वीच सहयोग चाहते हैं। मैं भी यही चाहता हूं। किन्तु सहयोग तभी हो सकता है, जव राष्ट्र सहयोग करने योग्य स्वतन्त्र हों। यदि मुझे संसार में शान्ति पैदा

करनी या क़ायम रखनी हो और उसमें पड़ने वाले विघ्न का विरोध करना हो, तो उसके लिए मेरे पास वैसा करने की शक्ति होनी चाहिए। और जबतक मेरा देश स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता तबतक मुझसे वह हो नहीं सकता। इस समय तो भारत का स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आन्दोलन ही संसार की शान्ति के लिए उसका हिस्सा है, क्योंकि जबतक भारत एक पराधीन राष्ट्र है, तबतक न केवल वही वरन् उसे लूटनेवाला इंग्लैण्ड तक शान्ति के लिए खतरा है। दूसरे राष्ट्र आज भले ही इंग्लैण्ड की साम्राज्यवादी नीति और उसके द्वारा होने वाली अन्य राष्ट्रों की लूट को सहन कर लें; किन्तु निश्चय ही वे उसे पसन्द तो हर्गिज़ नहीं करते और इसलिए इंग्लैण्ड के दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक ख़तरनाक बनने को रोकने में अवश्य ही सहायता देंगे। बेशक, आप यह कह सकते हैं कि स्वतन्त्र भारत स्वयं ही एक ख़तरा हो सकता है। लेकिन हमें यह मान लेना चाहिए कि यदि वह अपनी स्वतन्त्रता अहिंसा के द्वारा प्राप्त कर सका तो वह अपने अहिंसा के सिद्धान्त और स्वयं लूट का शिकार होने से उसके कटु अनुभवों के कारण अच्छी तरह बर्ताव करेगा।

"मेरे क्रान्ति की भाषा में बोलने के सम्बन्ध में जो आपत्ति की जाती है, उसका जवाब तो मैं राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में जो कह चुका हूं, उसमें आ जाता है। किन्तु मेरे आन्दोलन में एक बड़ी और परेशान करनेवाली शर्त है। आप तो यह कहेंगे ही कि अहिंसक बग़ावत हो ही नहीं सकती और इतिहास में ऐसे बलवे का कोई उदाहरण नहीं है। किन्तु मेरी महत्त्वाकांक्षा तो ऐसा उदाहरण पैदा कर देने की है। मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूं कि मेरा देश अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा और मैं अगणित बार संसार के सामने यह बात दुहरा देना चाहता हूं कि अहिंसा को छोड़कर मैं अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करूंगा। मेरा अहिंसा के साथ का विवाह इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना पसन्द करूंगा। यहां मैंने सत्य का उल्लेख नहीं किया, वह केवल इसलिए

अपूर्व अवसर

कि सत्य अहिंसा के सिवा दूसरी तरह प्रकट हो ही नहीं सकता। इसलिए यदि आप यह कल्पना स्वीकार कर लें तो मेरी स्थिति सुरक्षित है।"

जैसा कि बातचीत से मालूम हुआ सर गिलबर्ट की आपत्ति अहिंसा के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं, बल्कि समाचार-पत्रों में वर्णित उसके कई प्रयोगों के विरुद्ध थी। बायकाट (बहिष्कार) की चर्चा करते हुए उनके मन में कर्नल बायकाट (जिसपर से 'बायकाट' शब्द प्रचिलत हुआ) पर हुए अत्याचार का, जिसके परिणाम में उनके क्लर्क को आत्महत्या करनी पड़ी, खयाल हो रहा था। इसपर जो बहस छिड़ी वह लगभग उकता देनेवाली, दुर्बोध तथा तात्त्विक हो उठी। किन्तु अन्त में गांधीजी ने जो बातचीत की उसका सार इस प्रकार है—"आपका यह कहना ठीक हो सकता है कि मुझे अधिक सावधानी से क़दम रखना चाहिए; किन्तु यदि आप मूल सिद्धान्त पर आक्षेप करते हों, तो इसके लिए आपको मेरा समाधान करा देना चाहिए। और मैं आपको यह कह देना चाहता हूं कि यह हो सकता है कि बहिष्कार का राष्ट्रवाद से भी कोई सम्बन्ध न हो। यह विशुद्ध सुधार का प्रश्न भी हो सकता है, जैसा कि सर्वथा राष्ट्रवादी न होते हुए भी हम आपका कपड़ा लेने से इन्कार कर सकते हैं और अपने-आप तैयार कर सकते हैं। सुधारक के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह हमेशा किसीका इन्तज़ार करता बैठा रहे। यदि वह अपने विश्वास पर अमल नहीं करता, तो वह सुधारक हो ही नहीं सकता। या तो वह अत्यधिक जल्दबाज एवम् डरपोक है अथवा अत्यधिक काहिल अर्थात् सुस्त है। उसे सलाह अथवा बेरोमीटर (तापमापक यन्त्र) कौन दे? आप केवल अपनी अनुशासित अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार ही चल सकते हैं और तब सत्य और अहिंसा के कवच से सब तरह के ख़तरों का मुकाबिला कर सकते हैं। एक सुधारक इसके सिवा और कुछ कर नहीं सकता।"

इसके बाद सेना और भारत को अपना शासन-कार्य चलाने की शक्ति तथा ऐसे ही अन्य प्रश्नों पर चर्चा हुई। स्वशासन के कठिन कार्य के पहले क्या भारत कुछ दिनों प्रतीक्षा नहीं कर सकता? यदि हम अपने

सैनिक भेजें, तो उनके प्राणों के लिए भी हमें ज़िम्मेवार रहना होगा, और इसलिए, क्या यह नहीं हो सकता कि आप जितनी जल्दी भारतीय सेना रख सकें, उतना ही अच्छा ? मुस्लिम वर्ग ने पिछले वर्ष एकमत से यह बात कही थी कि हमें केन्द्रीय शासन में उत्तरदायित्व की आवश्यकता नहीं। ऐसी दशा में हम निर्णय किस तरह करें ?

ग़लती करने की स्वतन्त्रता

गांधीजी ने इन प्रश्नों का उत्तर कुछ इस प्रकार दिया, "संक्षेप में आप यह क्यों नहीं कहते कि आप हमपर विश्वास न करेंगे। आप हमें भूल करने की आज़ादी दे दीजिए। यदि हम आज अपने घर का काम नहीं संभाल सकते तो वह हम कबतक कर सकेंगे यह कौन कह सकता है ? मैं नहीं चाहता कि इसका निश्चय आप करें। जान में अथवा अनजान में आप अपने को विधाता मान बैठे हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि एक क्षण के लिए आप इस सिंहासन से नीचे उतरें। हमें हमारे भरोसे पर छोड़ दीजिए। आज एक छोटे-से राष्ट्र के पैरों के नीचे सारी मानवजाति कुचली जा रही है, इससे भी बदतर कुछ और हो सकता है, इसकी मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

"और आपके अपने सैनिकों के प्राणों के लिए ज़िम्मेवार रहने की यह बात क्या है ? मैं भारत की सेना में भरती होने के लिए सब विदेशियों के नाम एक नोटिस प्रकाशित करूंगा और उसपर यदि कुछ अंग्रेज़ भरती होना चाहेंगे तो क्या आप उन्हें रोक देंगे ? यदि वे भरती होंगे, तो जिस तरह किसी भी दूसरे देश की सरकार की नौकरी करने पर वह उनके प्राणों के लिए उत्तरदायी रहती है, उसी तरह हम भी रहेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि सेना का नियन्त्रण ही स्वराज्य की कुंजी है।

"सर्व-सम्मत मांग के सम्बन्ध में, जैसाकि मैं अबतक कई बार कह चुका हूं, मैं यही कहूंगा, कि आपके अपनी पसन्द के बुलाये हुए लोगों से

हमारा रणक्षेत्र

आप सर्व-सम्मत मांग की आशा नहीं कर सकते। मेरा यह दावा है कि कांग्रेस सबसे अधिक भारतीयों की प्रतिनिधि है। ब्रिटिश मन्त्री इस बात को जानते हैं। यदि वे इस बात को नहीं

जानते, तो मैं अपने देश को वापस जाऊंगा, और जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो सकता है लोकमत संग्रह करूंगा। हमने जीवन और मरण का संग्राम लड़ा है। अंग्रेज़ों में से एक शरीफ़-से-शरीफ़ अंग्रेज़ ने हमें कसौटी पर कसा है और हमें किसी तरह कम नहीं पाया। नतीजा यह हुआ कि उसने जेल के दरवाज़ खोल दिये और कांग्रेस से गोलमेज़-परिपद् में शरीक होने के लिए अपील की। हमने कई दिनों तक लम्बी वातचीत और सलाह-मशविरा किया, इस अर्से में हमने अधिक-से-अधिक धीरज रखा और परिणाम में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार कांग्रेस ने गोलमेज़-परिपद् में शरीक होना मंजूर किया। सरकार ने इस समझौते का पालन करने की अपेक्षा भंग ही अधिक किया, और इसलिए मैं वड़ी हिचकिचाहट के वाद यहां आने पर रज़ामन्द हुआ और वह भी सिर्फ़ उस शरीफ़ अंग्रेज़ के साथ किये हुए वादे को पूरा करने के लिए। यहां आने पर मैं देखता हूं कि भारत और कांग्रेस के विरोध में खड़ी हुई शक्तियों का मेरा अन्दाज़ ग़लत था। किन्तु मैं इससे हताश नहीं होता। मुझे वापस जाकर अपने को योग्य वनाना है और कष्ट-सहन के ज़रिये यह सावित करना है कि सारा देश जो मांगता है, वास्तव में उसकी उसे आवश्यकता है। हण्टर ने कहा है कि युद्ध-क्षेत्र में प्राप्त विजय सत्ता-प्राप्ति का छोटे-से-छोटा मार्ग है। किन्तु हम सफलता के लिए दूसरे प्रकार के रंणक्षेत्र पर लड़े हैं। मैं आपके शरीर को छूने की अपेक्षा आपके हृदय को स्पर्श करने का प्रयत्न कर रहा हूं। यदि मैं इस वार सफल नहीं होता हूं, तो अगली वार सफल होऊंगा।"

इस वातचीत का परिणाम यह हुआ कि जिस समय गांधीजी इन मित्रों से विदा हुए तव, उस समय की अपेक्षा, उनके परस्पर के विचारों में अधिक साम्य था और निश्चय ही दोनों पक्ष एक-दूसरे को अधिक गहराई से समझ सके थे।

गांधीजी ने अछूतों को जो पृथक् निर्वाचक-मण्डल देने से साफ़ इन्कार कर दिया है, यह पहेली सव सभाओं में पैदा होती है और गांधीजी से इस सम्वन्ध में अपनी स्थिति समझाने के लिए कहा जाता है। इस

सम्बन्ध में उन्होंने भारतीय विधायिका सभा में जो कुछ कहा और जिसका विवरण दूसरे मौके पर भी दिया, उसका सार मैं यहां देता हूं।

"मुसलमान और सिख सब सुसंगठित हैं। अछूतों की यह बात नहीं है। उनमें राजनैतिक जाग्रति बहुत ही कम है और उनके साथ ऐसा भयंकर वर्ताव होता है कि मैं उनका विरोधी बनकर भी उससे उनकी रक्षा करना चाहता हूं। यदि उनका पृथक् निर्वाचक-मण्डल होगा, तो गांवों में, जो कि कट्टर रूढ़ि-प्रेमी हिन्दुओं के सुदृढ़ दुर्ग हैं, उनका जीवन दुःखद हो जायगा। अछूतों की युगों से उपेक्षा करने के पाप का प्रायश्चित्त तो उच्चवर्ग के हिन्दुओं को करना है। यह प्रायश्चित्त सक्रिय समाज-सुधार द्वारा और अछूतों की सेवा करके उनके जीवन को अधिक सह्य बनाकर करना है, उनके लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डल देकर आप उन्हें और रूढ़ि-प्रेमी कट्टर हिन्दुओं को लड़ा मारेंगे। आपको यह बात समझ लेनी चाहिए कि मुसलमानों और सिखों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को मैं एक अनिवार्य बुराई मानकर ही सहन कर सकता हूं। अछूतों के लिए यह निश्चित रूप से खतरा होगा। मेरा निश्चय है कि अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डल का प्रश्न शैतानी सरकार की आधुनिक गढ़ंत है। केवल एक ही बात की आवश्यकता है, और वह यह कि मतदाताओं की सूची में उन्हें सम्मिलित कर दिया जाय और शासन-विधान में उनके लिए मौलिक अधिकारों की सुविधा रखी जाए। यदि उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार हो और उनके प्रतिनिधि को जान-बूझ कर अलग रखा जाता हो, तो उन्हें यह अधिकार होगा कि वे विशेष 'निर्वाचन न्यायाधिकरण' की मांग करें, जो उनकी पूरी तरह रक्षा करेगा। इन न्यायाधिकरणों को यह खुला अधिकार होना चाहिए कि वे चुने हुए उम्मीदवार को हटा कर अलग रखे गये उम्मीदवार को चुनने का हुक्म दे सकें।

सदा के लिए अछूत ?

"अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचक-मंडल उनकी दासता सदैव के लिए टिकाये रखेगा। पृथक् निर्वाचक-मंडल से मुसलमानों का मुसलमान होना कभी नहीं छूटेगा। क्या आप चाहते हैं कि अछूत भी सदैव के लिए

'अछूत' बने रहें ? पृथक् निर्वाचक-मंडल इस कलंक को चिरस्थायी बना देगा। जिस बात की जरूरत है, वह है अस्पृश्यता के निवारण की, और इतना होने के बाद उद्धत 'उच्च' वर्ग ने 'निम्न' वर्ग पर जो प्रतिबन्ध लगा रखे हैं, वे दूर हो जायंगे। इन प्रतिबंधों के दूर हो जाने पर आप किसे पृथक् निर्वाचक-मंडल देंगे ? यूरोप का इतिहास देखिए। क्या आपके यहां मज़दूर वर्ग अथवा स्त्रियों के लिए पृथक् निर्वाचक-मंडल थे ? बालिग़ मताधिकार देकर आप अछूतों को पूरा संरक्षण दे देते हैं। कट्टर-से-कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू को भी मत लेने के लिए उनके पास पहुंचना होगा।

"आप पूछेंगे कि तब उनके प्रतिनिधि डा० अम्बेडकर किस तरह उनके लिए पृथक् निर्वाचक मंडल मांगते हैं ? डा० अम्बेडकर के लिए मेरे हृदय में गहरा सम्मान है। उन्हें मेरे प्रति कटु होने का सब प्रकार से अधिकार है। यह उनका आत्म-संयम है कि वह हमारा सिर नहीं फोड़ डालते। आज वह आशंका और संदेह से इतने अधिक घिरे हुए हैं कि उन्हें दूसरी बात कुछ सूझती ही नहीं। वह आज प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का पक्का विरोधी मानते हैं और यह सर्वथा स्वाभाविक है। मेरे प्रारम्भिक दिनों में दक्षिण अफ्रीका में भी ठीक ऐसी ही बात हुई थी; वहां मैं जहां जाता, वहीं गोरे लोग अर्थात् यूरोपियन मेरे पीछे पड़ जाते। डा० अम्बेडकर अपना रोष प्रकट करते हैं, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। किन्तु वह जो पृथक् निर्वाचक-मंडल चाहते हैं, उससे उनका सामाजिक सुधार न होगा। यह सम्भव है कि इससे उन्हें सत्ता और उच्चपद मिल जाय; किन्तु इससे अछूतों का कुछ भला न होगा। इतने वर्षों तक उनके साथ रहने और उनके सुख-दुःख में शरीक होने के कारण मैं यह सब बात अधिकारपूर्वक कह सकता हूं।"

यह सर्वथा विद्यार्थियों की सभा थी, इसलिए इसमें सब तरह के प्रश्न पूछे गये। इनमें के कुछ तो ऐसे थे, जो इंग्लैण्ड में रहनेवाले भारतीय विद्यार्थियों के ही पूछने योग्य थे।

इंग्लैण्ड की विरासत

एक प्रश्न यह था—"क्या आप अब भी इंग्लैण्ड की नेकनीयती

पर विश्वास करते हैं ?" और उसका उन्हें जो उत्तर मिला उसे वे सदैव याद रखेंगे ।

गांधीजी ने कहा—"मैं इंग्लैण्ड की नेकनीयती में उसी हद तक विश्वास करता हूं, जिस हद तक मानव-स्वभाव की नेकनीयती में करता हूं । मेरा विश्वास है कि सब मिलाकर मानव-जाति की प्रवृत्ति हमें नीचे गिराने की नहीं प्रत्युत ऊँचा उठाने की है और अज्ञात किन्तु निश्चित रूप से यह परिणाम प्रेम के नियम का है । मानव-जाति का अस्तित्व बना हुआ है, यह बात सिद्ध करती है कि विनाश की अपेक्षा जीवन-शक्ति बड़ी है । और मैं तो केवल प्रेम का काव्य ही जानता हूं, इसलिए मैं अंग्रेज़-जाति पर जो विश्वास रखता हूं, देखकर आपको आश्चर्यान्वित न होना चाहिए । मैं कई बार कटु हो उठा हूं और कई बार मैंने अपने मन में कहा है, 'इस आपत्ति का अन्त कब होगा ? ये लोग इस ग़रीब जनता को लूटने से कब बाज़ आयंगे ?' किन्तु मुझे अन्तरात्मा से अपने-आप उत्तर मिलता है, 'इन्हें यह विरासत रोम से मिली है । इसलिए मुझे प्रेम-धर्म के आदेश के अनुसार ही चलना चाहिए, और यह आशा रखनी चाहिए कि आगे चलकर अंग्रेज़ों के स्वभाव पर असर हुए बिना न रहेगा ।"

प्र०—"भारत को उद्योगवादी बनाये जाने के सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?"

उद्योगवाद

उ०—"मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव-जाति के लिए शाप-रूप सिद्ध होगा । एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र को लूटना हमेशा जारी रह नहीं सकता । उद्योगवाद का आधार आपकी लूटने की शक्ति, विदेशों के बाज़ार आपके लिए खुले रहने और प्रतियोगिता करनेवालों के अभाव पर निर्भर है । ये बातें दिन-प्रति-दिन इंग्लैण्ड के लिए कम होती जा रही हैं, यही कारण है कि प्रतिदिन उसके बेकारों की संख्या में असंख्य वृद्धि हो रही है । भारत का बहिष्कार तो केवल एक ततैये का दंशमात्र था । और जब इंग्लैण्ड का यह हाल है, तो भारत-जैसा विशाल देश उद्योगवादी बनकर लाभ उठाने की आशा नहीं कर सकता । वास्तव

में यदि भारत दूसरे राष्ट्रों को लूटने लगे—और यदि वह उद्योगवादी बने तो ऐसा किये बिना उसका छुटकारा नहीं—तो वह दूसरे राष्ट्रों के लिए शाप-रूप और संसार के लिए खतरा बन जायगा। फिर दूसरे राष्ट्रों को लूटने के लिए मैं भारत को उद्योगवादी बनाने की कल्पना क्यों करूं ? क्या आप आज की दुःखद स्थिति को नहीं देखते ? हम अपने ३० करोड़ बेकारों के लिए काम तलाश कर सकते हैं, किन्तु इंग्लैण्ड अपने ३० लाख बेकारों के लिए कोई काम तलाश नहीं कर सकता और आज उसके सामने जो प्रश्न आ खड़ा हुआ है वह उसके बुद्धिमान-से-बुद्धिमान लोगों को परेशान कर रहा है ! उद्योगवाद का भविष्य अन्धकारपूर्ण है। इंग्लैण्ड को अमरीका, जापान, फ्रांस और जर्मनी सफल प्रतियोगी मिले हैं और भारत की मुट्ठी-भर मिलों की भी उसके विरुद्ध प्रतियोगिता है। फिर जिस तरह भारत में जागृति हुई है, उसी तरह दक्षिण-अफ्रीका में भी होगी। उसके पास तो प्राकृतिक खानों और मनुष्यों का विशाल साधन है। बलिष्ठ अंग्रेज़, बलिष्ठ अफ्रीकन जाति के सामने, महज़ बौने दिखाई देते हैं। आप कहेंगे कि कुछ भी हो वे शरीफ़ जंगली हैं। अवश्य ही वे शरीफ़ हैं, किन्तु जंगली नहीं और कुछ ही दिनों में पश्चिम के राष्ट्र अपने सस्ते माल की बिक्री के लिए अफ्रीका के द्वार बन्द हुए देखेंगे। और यदि उद्योगवाद का भविष्य पश्चिम में अंधकारपूर्ण हो तो क्या, वह भारत के लिए उससे भी अधिक अंधकारपूर्ण सिद्ध न होगा।"

प्र०—"आई० सी० एस० के विषय में आपका क्या मत है ?"

आई० सी० एस०

उ०—"आई० सी० एस० इण्डियन सिविल सर्विस नहीं प्रत्युत ई० सी० एस० अर्थात् इंग्लिश सिविल सर्विस है। मैं यह बात यह जानकर कह रहा हूं कि इसमें कुछ भारतीय भी हैं। जबकि भारत एक ग़ुलाम देश है, वे इंग्लैण्ड के हित के सिवा दूसरी बात कर ही नहीं सकते। किन्तु मान लीजिए कि योग्य अंग्रेज़ भारत की सेवा करना चाहते हैं, तो वे वास्तव में राष्ट्रीय सेवक होंगे। इस समय तो वे आई० सी० एस० नाम धारण कर लुटेरी सरकार की सेवा करते हैं। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद अंग्रेज़ या तो साहसिक

वृत्ति से या प्रायश्चित्त की भावना से भारत में आयेंगे, छोटी तनख्वाहों पर सेवा करेंगे और असह्य भारी वेतन लेकर इंग्लैण्ड को भी मात कर देनेवाली फ़िज़ूलखर्ची से रहने और इंग्लैण्ड की आवहवा को भारत में पैदा करने का प्रयत्न कर ग़रीबों पर बोझ-रूप होने की अपेक्षा भारत की आवहवा की कठोरता सहन करेंगे। हम उन्हें सम्मानित साथियों की तरह रखेंगे, किन्तु यदि हमपर हुकूमत चलाने और अपने आपको उच्चवर्ग का मानने की अन्दर-ही-अन्दर ज़रा भी उनकी इच्छा होगी, तो हमें उनकी आवश्यकता नहीं।"

प्र०—"क्या आपका कहना है कि आप स्वतन्त्रता के लिए पूर्णतः योग्य हैं ?"

उ०—"यदि हम योग्य नहीं हैं तो होने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु योग्यता का तो प्रश्न ही नहीं उठता; और इसका केवल यही सीधा-सादा

भारत और साम्राज्य

कारण है कि जिन लोगों ने हमारी स्वतंत्रता छीन ली है, उन्हें ही वह वापस देनी है। मान लीजिए कि अपने आचरण के लिए आपको पश्चात्ताप होता है, तो आप यह पश्चात्ताप हमें अकेला छोड़कर ही प्रकट कर सकते हैं।"

प्र०—"किन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य पर ही आप रज़ामन्द क्यों नहीं होते ? बात यह है कि अंग्रेज़ औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ समझ सकते हैं, साझेदारी क्या चीज़ है, यह वे नहीं जानते; और औपनिवेशिक स्वराज्य का क़रीब-क़रीब वही अर्थ है, जो आप चाहते हैं। जबकि आपको वह दिया जाता है, तो जिस तरह आयर्लैण्ड ने स्वयं ही 'फ़्री स्टेट' पद को स्वीकार कर लिया, आप भी उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ? क्या आपकी साझेदारी का अर्थ उससे जुदा है ?"

उ०—मेरे सामने यह बात पेश कीजिए, मुझे उसकी जांच करने दीजिए, और यदि मैं देखूंगा कि आपके पेश किये हुए औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ स्वतन्त्रता ही है तो मैं उसे तुरन्त स्वीकार कर लूंगा। किन्तु मैं यह सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी उन्हींपर डालूंगा, जो कहते हैं कि औप-

निवेशिक स्वराज्य और स्वतन्त्रता एक ही बात है ।

× × × ×

रेले-क्लब के सदस्यों के साथ की बातचीत अत्यन्त आकर्षक थी, क्योंकि ये सदस्य सब उपनिवेशों से आये हुए विद्यार्थी थे। उनकी नस-नस में साम्राज्यवाद की कल्पना भरी हुई थी और वे राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करनेवाले थे। उनका प्रत्येक प्रश्न सीधा और तत्त्व की बात पर था और इसलिए मैं इस सम्भाषण का अधिकांश भाग यहां देने के लिए उत्सुक हूं।"

प्र०—"आप भारत का साम्राज्य से किस हद तक सम्बन्ध-विच्छेद करेंगे ?"

उ०—"साम्राज्य से पूरी तरह; और यदि मैं भारत को लाभ पहुंचाना चाहता हूँ, तो ब्रिटिश राष्ट्र से जरा भी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्य केवल भारत के ही कारण साम्राज्य है। उस साम्राज्यपन का अवश्य अन्त होना चाहिए और मैं ब्रिटेन के सब सुख-दुःख में भाग लेता हुआ उसके और सब उपनिवेशों के साथ समान साझेदार बनना पसन्द करता हूं। किन्तु यह साझेदारी बराबरी के दर्जे की होनी चाहिए।"

प्र०—"इंग्लैण्ड के दुःख में भारत किस हद तक हिस्सा लेने के लिए तैयार होगा ?"

उ०—"पूरी तरह।"

प्र०—"क्या आप समझते हैं कि भारत अपने भविष्य को अविच्छिन्न रूप में इंग्लैण्ड के साथ जोड़ने के लिए एकमत हो जायगा ?"

उ०—"हां, जबतक वह साझेदार रहेगा। किन्तु यदि उसे मालूम हो कि यह साझेदारी राक्षस और बौने की साझेदारी के समान है, अथवा उसका उपयोग संसार के दूसरे राष्ट्रों को लूटने के लिए होता है, तो उस समय वह साझेदारी को तोड़ डालेगा। उसका उद्देश्य संसार के सब राष्ट्रों का कल्याण साधन करना है, और यदि यह सम्भव न हो सकता हो तो कृत्रिम साझे-

हो सकते हैं। किन्तु मैंने एक न्यायाधिकरण की सूचना की है। यद्यपि सब सरकारी योजनायें केवल राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए हैं, फिर भी भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों के खरीतों में सरकार की ओर से कुछ वातें तो स्वीकार की गई हैं। हमारे विषय में प्रत्येक पक्ष न्याय की वात करता है, किन्तु पंचायत से दूर भागता है; इससे सिद्ध होता है कि जहांतक सम्भव हो सके अधिक-से-अधिक धरवा लेने की चाल पूरी तरह चल रही है, और कौन ग़लत और कौन ठीक है यह केवल थोड़े-वहुत अंश का ही सवाल है। जुदे-जुदे दावों के प्रति न्यायाधिकरण न्याय करेगा, यह आशा उससे अवश्य की जा सकती है।"

प्र०—"इस न्यायाधिकरण में कौन होंगे, यह आप कह सकेंगे ?"

उ०—"उसमें हिन्दुस्तान की हाईकोर्ट के न्यायाधीश—जो न हिन्दू होंगे और न मुसलमान—होंगे और प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश होंगे।"

प्र०—"उनका निर्णय स्वीकार कर लिया जायगा ?"

उ०—"अदालत के निर्णय का स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं हो सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस सूचना के मूल में एक युक्ति भी है। सरकार यदि मेरी इस सूचना को स्वीकार करेगी तो सारा वायु-मण्डल ही वदल जावेगा और न्यायाधिकरण नियुक्त किया जाय उसके पहले ही ये जातियां आपस में निवटारा कर लेंगी; क्योंकि अभी जो दिया जा रहा है उसमें राजनैतिक दृष्टि रखनेवालों को सन्तोष हो, उसके लिए काफ़ी गुंजायश है और हरएक अपनी मांग में जो त्रुटि है उसे जानता है।"

* * * *

आक्सफोर्ड से हम लौटे, परन्तु उसकी मधुर-से-मधुर स्मृति लेकर। उसमें सवसे अधिक मधुर स्मृति है डा० लिण्डसे और उनकी पत्नी की, जिनके यहां हम ठहरे थे। एक सम्भाषण में गांधीजी को जनरल डायर और अमृतसर में लोगों को जिस गली में पेट के वल चलाया गया था उसका उल्लेख करना पड़ा। श्रोतागण ऐसी सहानुभूति अनुभव करनेवाले थे कि उनमें कुछ लोगों को उसके वर्णनमात्र से कंपकंपी आ गई। सभा के अन्त

में श्रीमती लिण्डसे गांधीजी के पास आईं और मधुरता से बोलीं, "यदि आप इसे योग्य प्रायश्चित्त समझें तो हम पचास बार पेट के बल चलने के लिए तैयार हैं।" गांधीजी ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। कोई भी ऐसा करे, यह मैं नहीं चाहता। मैं या आप स्वेच्छापूर्वक पचास बार पेट के बल चलें; परन्तु यदि मैं किसी अंग्रेज लड़की को जबरदस्ती पेट के बल चलने पर मजबूर करूं तो वह मुझे लात मारेगी और वह सर्वथा उचित ही होगा। मुझे तो आपको बीभत्सता का एक उदाहरण-मात्र देना था। प्रायश्चित्त तो यही चाहिए कि अंग्रेज लोग भारत में मालिक बनकर नहीं, सेवक बनकर रहें।" बैलियल के आचार्य एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो प्रजातन्त्र की समस्याओं पर अक्सर सोचते और लिखते रहे हैं, इसलिए स्वतन्त्र भारत के भविष्य के विषय में वह स्वभावतः सावधान हैं और जहांतक सम्भव हो सके इस सम्बन्धी आपत्ति को टालने के लिए बड़े चिन्तित हैं। लेकिन यदि कोई आपत्ति उठ ही खड़ी हो, और उसमें महान् कष्ट-सहन करना पड़े, जैसा कि गांधीजी के नेतृत्व में होने-वाले किसी भी आंदोलन में होगा, तो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि डा० लिण्डसे की सहानुभूति पूर्णतया हमारे साथ ही होगी। भविष्य-सम्बन्धी कुछ बातचीत के बाद जैसे ही हम आराम करने को जा रहे थे, उन्होंने अपने विस्तृत पुस्तकालय में से एक पुस्तक निकाली और उसमें से जान ब्राउन-सम्बन्धी निम्न महत्वपूर्ण अंश मुझे पढ़कर सुनाया—

> "Sometimes there comes a crack in Time itself,
> Sometimes the earth is torn by something blind,
> Sometimes an image that has stood so long
> It seems implanted as the polar star
> Is moved against an unfathomed force
> That suddenly will not have it any more.
> Call it the *mores*, call it God or Fate.
> Call it Mansoul or economic law
> That force exists and moves.

And when it moves
It will employ a hard and actual stone
To batter into bits an actual wall
And change the actual scheme of things.

John Brown

Was, such a stone—unreasoning as the stone
Destructive as the stone, and if you like,
Heroic and devoted as such a stone.
He had no gift for life, no gift to bring
Life but his body and a cutting wedge,
But he knew how to die."

वैलियल के आचार्य के तत्वज्ञान में यदि जान व्राउन को स्थान है, तो इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी के लिए तो वहुत ही गुंजाइश होगी, जिन्होंने कि जान व्राउन के उपायों को सम्पूर्ण करके वतला दिया है।

गांधीजी ने विलायत पहुंचते ही तुरन्त ही कर्नल मैडक के वारे में पछताछ आरम्भ कर दी थी। कर्नल मैडक एक दिन आये और रीडिंग के पास के अपने मकान पर आने के लिए गांधीजी से आग्रह कर गये। उन्होंने कहा, "मेरी पत्नी ने आपके लिए अच्छे फल-फूल और शाक-भाजी चुन रखे हैं।" सौभाग्य से ईटन और आक्सफ़ोर्ड जाने के लिए रीडिंग होकर जाना होता है, इसलिए गांधीजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सात वर्ष के वाद मिलने पर गांधीजी और मैडक-दम्पति दोनों को वड़ा आनन्द आ। गांधीजी ने आभार प्रदर्शित करते हुए श्रीमती मैडक से कहा—"आपके पति ने मुझपर सफल शस्त्र-क्रिया न की होती तो मैं आज आपसे मिलने यहां न आ सकता।" कर्नल मैडक को उनके जीवन के सायंकाल के समय वीस वर्ष के युवक के से उत्साह से शोध-कार्य करते और विस्मित कर देने जितने अधिक विपयों में संलग्न देखना, मेरे लिए तो वड़े सौभाग्य की वात थी। वह कुशल वाग़वान हैं और उनके सुन्दर वगीचे में भांति-भांति के फूल और फल के वृक्ष हैं। उनपर

कर्नल मैडक

वह तरह-तरह के प्रयोग करते हैं। उन्हें दुग्धालय के काम में भी उतनी ही दिलचस्पी है और गायों के क्षय के कारणों की शोध करते हुए उन्होंने गायों के खाने के घास पर विचित्र प्रयोग किये हैं। उत्तम मक्खन पैदा करनेवाले परमाणुओं पर उन्होंने दिन-के-दिन बिता दिये और उसमें सफलता प्राप्त की। परन्तु उन्हें उसमें आर्थिक लाभ नहीं मालूम हुआ। वह घर के उपयोग के लिए पेट्रोल से गैस बनाते हैं और हमेशा काम में लगे रहते हैं। श्रीमती मैडक ने कहा—"गांधीजी, मैंने आपको पूना में देखा था, तबसे ज्यादा बुड्ढे तो आप बिलकुल नहीं मालूम पड़ते।" ठीक इसी प्रकार मुझे भी कहना चाहिए कि कर्नल मैडक जैसे पूना में थे उससे बुड्ढे नहीं दिखलाई दिये। बल्कि शायद किसी कदर वह उससे कम उम्र ही दिखाई पड़े, क्योंकि अब वह अपने ओहदे की झंझटों से मुक्त थे और अपने मन-मुताबिक काम करने के लिए स्वतन्त्र थे। जिस प्रकार कर्नल मैडक अपने समय का मूल्यवान उपयोग कर रहे हैं उसी प्रकार सभी लोग नौकरी से अलग होने पर अपने समय का सदुपयोग करें, तो क्या अच्छा हो!

यह बड़ा अच्छा हुआ कि श्री होराबिन तथा कृष्ण मेनन ने कामनवेल्थ आफ़ इण्डिया लीग के अन्तर्गत गांधीजी के स्वागत का विचार किया। श्री होराबिन ने स्वराज्य-सम्बन्धी भारतीय मांग के प्रति लीग के ज़ोरदार समर्थन का गांधीजी को आश्वासन दिया और गांधीजी से यह बताने के लिए कहा कि किस प्रकार वे मदद करें, जो बहुत उपयोगी साबित हो।

परावलम्बी ब्रिटिश जनता

गांधीजी ने कहा—"हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में सच्चा ज्ञान फैलाइए, और अंग्रेज प्रजा को जो झूठा इतिहास पढ़ाया गया है उसके स्थान पर सच्चा ज्ञान दिलाइए।" विलायत के पत्र जान-बूझकर सच्ची बात को दबाकर झूठी बातें फैलाते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने चटगांव और हिजली के अत्याचार और विलियर्स और डूनों पर हुए आक्रमण का सबल उदाहरण दिया। चटगांव और हिजली के अत्याचार, जिनके कारण वयोवृद्ध और बीमारी के बिछौने पर पड़े हुए कविवर का पुण्य प्रकोप भड़क उठा और उन्होंने

अपने एकान्तवास का त्याग किया, उनका तो केवल नाम ही विलायत के पत्रों में आया है । परन्तु यह वताना न चूके कि वे कैदी दुष्ट हैं और गोली से मार देने लायक हैं। गांधीजी ने कहा, "ये दोनों खूनी हमले दुःखदायक और लज्जाजनक हैं और मेरी परेशानी के वायस हैं। परन्तु यदि आप इन्हें इतना वड़ा रूप देते हैं, तो चटगांव और हिजली को क्यों नहीं देते ? कार्य-कारण का नियम तो अटल है। केवल सन्देह पर ही विना मुकदमा चलाये अनिश्चित काल के लिए इन नौजवानों को कैद में रखा जाता है, उन्हें दवाकर कुचल डाला जाता है। उनके कुछ मित्र गुमराह होते हैं और वदला लेने का प्रयत्न करते हैं। इन कृत्यों की मुझसे अधिक कोई निन्दा करे, यह संभव नहीं है, क्योंकि मुझे दोनों तरफ़ की हिंसा के प्रति तिरस्कार है, और मुझे मेरे पक्ष की हिंसा अधिक कष्टप्रद मालूम होती है। मेरी स्वार्थ-वुद्धि यह है कि यह हिंसा मेरे काम में वाधा डालती है। यह वात ठीक है कि वे लोग कांग्रेसी नहीं हैं, परन्तु यह जवाव मेरे लिए नहीं हो सकता। क्योंकि वे हैं तो हिन्दुस्तानी ही; और इससे यह जाहिर होता है कि कांग्रेस उनकी प्रवृत्ति पर अंकुश रखने और उनका पागलपन रोकने में असमर्थ है। परन्तु यह न भूलना चाहिए कि इसका दूसरा पहलू भी है—भारत-जैसे विशाल देश में इतने कम हिंसक अत्याचार होते हैं, यही आश्चर्य की वात है, क्योंकि चटगांव और हिजली में हुए जंगली अत्याचारों के विरुद्ध दूसरे किसी भी देश में चारों ओर खुला वलवा हो गया होता। मैं चाहता हूं कि अखवार सारा सत्य प्रकट करें। उसके वदले यहां मौन और झूठ और अपूर्ण विवरण प्रकट करने के षड्यन्त्र हो रहे हैं।"

उपस्थित जनों पर इसका असर हुआ और रेवरेण्ड वेल्डन ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें ब्रिटिश पत्रों से प्रार्थना की गई कि वे पूरी और सच्ची वात प्रकाशित करने की आवश्यकता समझें, साथ ही इसमें यह चेतावनी भी दी गई कि सच्ची वातों का दवाना हिन्दुस्तान और इंग्लैंड दोनों के प्रति वड़ा अन्याय है। प्रस्ताव को पेश करते हुए, रेवरेण्ड वेल्डन ने एक ज़ोरदार वक्तृता दी और गांधीजी को आश्वासन दिया कि

हिन्दुस्तान में यदि सत्याग्रह जारी करना पड़े तो फिर उसके साथ-साथ इंग्लैंड में भी सत्याग्रह-आन्दोलन होगा। प्रगति-विरोधी पत्रों के प्रतिनिधि इन सब बातों को बरदाश्त नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने इसका विरोध किया और कहा कि यह प्रस्ताव तो इंग्लैंड के अख़बारों के लिए अपमान-पूर्ण है। उसमें से एक ने तो यहां तक कह डाला कि गांधीजी हमें समाचार ही नहीं देते, हालांकि हमारी कम्पनी ने इसके बदले में उनकी चलती-बोलती तस्वीर लेने का भी आग्रह किया था। इस मित्र ने, अपने साथ, दूसरों को भी गांधीजी के आगे ला घसीटा; और उन सबको पराजित करते हुए गांधीजी ने कहा—"अच्छा सुनिए, जो मित्र अन्त में बोले उनके लिए तो अन्य किसी बात की अपेक्षा व्यापारिक बात ही मुख्य है। पर दूसरों के सामने मैं एक महत्वपूर्ण बात रखता हूं। चटगांव और हिज़ली में जो कुछ हुआ मैं उन्हें उसका सच्चा-सच्चा हाल बतलाना चाहता हूं। क्या वे उसे प्रकाशित करेंगे? दूसरी महत्व की बात और सुनिए। जबतक मैं यहां पर हूं, मुझे उनके लिए, बिना किसी मुआविज़े की आशा के, रोज़-ब-रोज़, भारत के समाचार मिलते रहते हैं। क्या वे उन समाचारों को प्रकाशित करेंगे?" इसपर सन्नाटा छा गया, विरोध और प्रतिवाद की आवाज़ें बन्द हो गईं; और सिर्फ़ उन दो-तीन की तटस्थता के साथ प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

४

केम्ब्रिज

जब हम ईटन जा रहे थे तो पहला प्रश्न गांधीजी ने यही किया "क्या ईटन वही स्कूल है, जहां जवाहरलालजी पढ़ चुके हैं?" मैंने उन्हें बताया कि वह स्थान हैरो है, ईटन नहीं—इसपर, कुछ अत्युक्ति न समझिए, गांधीजी का कुछ उत्साह तो वहीं ठण्डा हो गया। अतः पाठक समझ सकते हैं कि गांधीजी केम्ब्रिज जाने के लिए उत्सुक क्यों थे? यह जवाहरलालजी और श्री एण्डरूज़ का केम्ब्रिज है और जब एण्डरूज़ उनको सुबह घूमने ले गये तो गांधीजी ने ट्रिनिटी

कालेज के विशाल मैदान में से होकर चलने की इच्छा प्रकट की, क्योंकि जवाहरलालजी ट्रिनिटी कालेज में पढ़ चुके हैं। इसे आप भावुकता समझिए या और कुछ, यह तो मनुष्य-स्वभाव ही है और गांधीजी, अन्य पुरुषों की तरह, उससे बरी नहीं हो सकते। ट्रिनिटी कालेज में जवाहरलालजी ही नहीं बल्कि टेनीसन, बेजल, न्यूटन आदि भी पढ़ चुके हैं; परन्तु हम उसे कभी नहीं देखते, यदि हमको यह न मालूम होता कि जवाहरलालजी यहीं पढ़ चुके हैं—जैसे हमने काइस्ट चर्च को नहीं देखा, हालांकि वहां वर्ड्स्वर्थ पढ़ चुके हैं। यही पेम्ब्रोक के लिए कहा जा सकता है—वह हमको इसलिए प्रिय है कि वहां श्री एण्डरूज़ पढ़ चुके हैं; इसलिए नहीं कि ग्रे और स्पेन्सर जैसे कवि वहां पढ़े थे। जब सन् १२६१ में आक्सफ़ोर्ड में पहले कालेज की स्थापना हुई, केम्ब्रिज की अभिलाषायें भी जाग उठीं और थोड़े ही काल में बेलियल और मार्टन के मुकाबिले में केम्ब्रिज में पीटर हाउस की स्थापना हो गई। यह प्रतियोगिता बराबर जारी रही और दोनों को इंग्लैंड के महापुरुषों का वहां के विद्यार्थी होने का गर्व समान रूप से है। यदि केम्ब्रिज में आक्सफ़ोर्ड से कम कालेज हैं तो यहां विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। यदि आक्सफ़ोर्ड में टेम्स नदी और उसके भव्य किनारे हैं तो केम्ब्रिज में वह 'बन्द' है, जहां केम नदी चक्कर काटती हुई वहां की भूमि को एक अत्यन्त सुन्दर भूस्थल होने का गर्व दिलाती है। इन कालेजों की स्थापना धार्मिक विचारों को लेकर हुई है और इसको याद दिलाने के लिए अब भी इन दोनों स्थानों पर 'चेपल' विद्यमान हैं। किंग्स कालेज (केम्ब्रिज) का चेपल १५वीं शताब्दी में छठे हेनरी ने बनवाया था और यह भवन निर्माण-कला का एक अद्भुत उदाहरण है, जिसको देखने इंग्लैंड के सभी यात्री आते हैं। कवि ग्रे ने अपनी प्रसिद्ध 'एलेजी' के ये शब्द इसी भवन से उत्साहित होकर लिखे थे—

"Where through the long drawn aisle and fretted vault
The pealing anthem swells the note of praise"

इसकी खिड़कियों में जो रंगीन कांच जड़े हैं उनमें ईसा के जीवन,

नहीं हुई। पूर्ण स्वतन्त्रता की बात कर इंग्लैंड को क्यों नाराज़ करते हो? क्या भारत में अंग्रेज़ी राज्य ने हानि के सिवाय लाभ कुछ नहीं किया? क्या ब्रिटिश सत्ता के अधिकार में रहता हुआ भारत स्वतन्त्र सरकार वाले चीन से अच्छी हालत में नहीं है? यदि गोरे सिपाही ग़ैर सरकार के नीचे रहकर नौकरी नहीं करना चाहते तो क्या कुछ काल के लिए शान्ति के नाते उनकी बातें नहीं मान लेनी चाहिएं? क्या स्थिति इतनी भयानक हो चली है कि यदि पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त हुए तो भारत १० लाख जान की कुर्बानी कर देगा? ऐसे-ही-ऐसे प्रश्न वहां चल रहे थे। पेम्ब्रोक के आचार्य के मकान में उस समय यूनिवर्सिटी के सभी विद्वान् मौजूद थे, जो गांधीजी के मुख से भारत के विषय में सुनने और यथासम्भव सहायता देने के लिए जमा हुए थे। श्री एलिस बार्कर जैसे बड़े नामी प्रोफेसर, जिनका नाम प्राचीन और मध्यकालीन राजतंत्रों के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध है, श्री वेज डिकिन्सन जैसे योग्य विद्वान् जिनके पूर्वीय देशों के अध्ययन और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-स्थापना के प्रयत्न से हम भारत तक में परिचित हैं, डाक्टर जॉन मरे और डाक्टर वेकर आदि जैसे धर्मशास्त्र के प्रौढ़ पंडित भी वहां उपस्थित थे। उसी सभा में 'स्पेक्टेटर' के श्री एल्विन रेंच भी थे जो ऐसी योजना की खोज में हैं जिससे इंग्लैंड और भारत के बीच शान्ति रहे और विरोध के मौके कम-से-कम आवें।

उनकी विद्वत्ता, उदारता और स्थिति को समझने और सहायता करने की सच्ची इच्छा आदि सद्गुणों का आदर करते हुए मैं कहूंगा कि आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज के इन विद्वानों में कोई भी ऐसा नहीं है जो हेनरी केम्पबेल बेनरसेन की प्रसिद्ध उक्ति "सुराज्य स्वराज्य का काम नहीं दे सकता" का मर्म समझता हो। वे प्रश्न के नैतिक, न्याय्य और सहूलियत के पहलू पर विचार तो करते हैं, परन्तु उनमें कोई यह नहीं समझता कि उपर्युक्त उक्ति की सत्यता के आधार पर ही आगे बात चल सकती है। खैर, अब मैं इन विभिन्न प्रश्नों पर जो विचार गांधीजी ने प्रकट किये उनपर आता हूं। ये बातें कई बार दुहराई जा चुकी हैं।

"साझा सदा बराबरों की शर्तों पर होता है। दासता की चाहे जितने

सुन्दर शब्दों में व्याख्या हो, वह साझे के बराबर नहीं हो सकती। अतः वर्तमान सम्बन्ध में एकदम परिवर्तन होने की आवश्यकता है, सम्बन्ध-विच्छेद चाहे न हो, पर सम्बन्ध मनुष्य-मात्र के हित को दृष्टि में रखते हुए हो। भारत स्वयं चाहे संसार की दलित जातियों का रक्त-शोपण नहीं कर सकता, परन्तु ब्रिटेन के सहयोग से अवश्य कर सकता है। साझे का अर्थ है इस रक्त-शोपण का सदा के लिए बन्द हो जाना। यदि ब्रिटेन इसके लिए तैयार नहीं है तो भारत को उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना ही उचित है। आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटेन अपनी इस रक्त-शोपण-नीति में परिवर्तन करे। ऐसा हो जाने पर ब्रिटेन यह गर्व नहीं कर सकेगा कि उसके पास इतनी जल-सेना है कि जो समुद्रों और उसके द्वीपान्तर व्यापार की रक्षा कर सकती है।"

स्वतन्त्र भारत और साझा

प्र०—"दक्षिण-अफ्रीका के अधीनस्थ लोगों के बारे में क्या करना होगा?"

उ०—"मैं यह हठ नहीं करूंगा कि हमारे साझे की पहली यह शर्त है कि ब्रिटेन पहले उनकी ओर भी अपनी नीति बदले। परन्तु मैं वहां की आदिम जाति के कष्ट-निवारण का प्रयत्न अवश्य करूंगा, क्योंकि मुझे अनुभव है कि वे भी ब्रिटेन की शोपण-नीति के शिकार हैं। हमारे गुलामी से मुक्त होने का अर्थ है कि वे भी स्वतन्त्र हो जायें। यदि यह संभव न हो तो मैं उस साझे में नहीं रहूंगा, चाहे वह भारत के भले के लिए ही हो। व्यक्तिगत रूप से तो मैं यही कहूंगा कि वह साझा मेरी जाति के योग्य होगा और मैं उसको सदा क़ायम रखने का प्रयत्न भी करूंगा, जिससे संसार इस शोपण-नीति से सदा के लिए बरी हो जायगा। भारत कभी किसी दशा में इस नीति का स्वागत नहीं करेगा और मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि यदि कांग्रेस भी इस साम्राज्य-नीति को स्वीकार कर ले तो मैं उससे भी अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लूंगा।"

प्र०—"क्या कांग्रेस अभी फ़िलहाल, जबतक अन्य प्रबन्ध न हो दक्षिण अफ़्रीका, कनाडा आदि के समकक्ष स्थान से संतुष्ट नहीं होगी?"

उ०—"इस प्रश्न के उत्तर में 'हां' कह देने में मुझे खतरा मालूम

होता है। यदि आप इससे किसी अधिक अच्छी और उच्च-स्थिति की कल्पना करते हों कि जिसे प्राप्त करने के लिए हमें फिर प्रयत्न करना होगा, तो मेरा उत्तर 'नहीं' है। और यदि वह स्थिति ऐसी आदर्श है कि फिर हमारी कोई अभिलाषा वाकी नहीं रहती, तो मेरा उत्तर 'हां' है। वह स्थान तो उपयुक्त तभी होगा, जब सर्व-साधारण तक को यह अनुभव होने लगे कि पहले से सर्वथा विभिन्न अवस्था में हैं। अतः मैं थोड़े भी काल के लिए कोई नीचा दर्जा स्वीकार करने को तैयार नहीं हूं। कांग्रेस तो सर्वोत्तम स्थान से थोड़े भी नीचे स्थान से सन्तुष्ट नहीं होगी।"

प्र०—"इन राजाओं का क्या होगा, ये तो स्वाधीनता नहीं चाहते ?"

उ०—"हां, मैं जानता हूं, वे नहीं चाहते। परन्तु वे तो मजबूर हैं, इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते। वे तो ब्रिटिश सरकार के आज्ञा-पालक हैं। परन्तु ऐसे अन्य व्यक्ति भी तो हैं, जो ब्रिटिश शस्त्रों ही को अपना रक्षक समझते हैं। मैं तो फ़ौज पर पूरा अधिकार मिले बिना कुछ न लूंगा। यदि भारत के सभी नेता मिलकर इस फ़ौजी अधिकार के प्रश्न पर अन्य कोई समझौता कर लें तो भी मैं इससे बाहर रहूंगा, चाहे उसका विरोध न करूं, लोगों को और त्याग करने और कष्ट सहने को न कहूं। यदि कोई ऐसी रीति निकाली गई कि जिससे हमारी सब आशायें कुछ अर्से में, मगर शीघ्र ही, पूरी हो जाती हों, तो मैं उसे सहन कर लूंगा, परन्तु उसके लिए अपनी स्वीकृति नहीं दूंगा।

"परन्तु यदि आप यह कहें कि गोरी फ़ौजें राष्ट्रीय सरकार के अधीन रहकर काम नहीं करेंगी, तो मेरी सम्मति में तो यह ब्रिटेन और हमारे संवन्ध-विच्छेद का ज़बरदस्त कारण हो जायगा। हम नहीं चाहते और न हम बरदाश्त करेंगे कि हमपर कब्ज़ा जमानेवाली फ़ौज यहां रहे। ऐसी किसी फ़ौज को भारतीय बनाने की योजना हमारे लिए लाभप्रद नहीं हो सकती है, जिसमें अन्ततः अधिकार गोरों के हाथ में हो और जिसमें हमारे अधिकार पाने की योग्यता पर वैसा ही सन्देह प्रकट किया जाता हो कि जैसा आज किया जा रहा है। सच्ची उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार तो तभी स्थापित हो सकती है, जब अंग्रेज़ हमपर और हमारी योग्यता पर विश्वास करें। यह अशान्ति

तो तभी दूर होगी, जब ब्रिटेन को यह विश्वास हो जायगा कि उसने भारत के साथ अन्याय किया है और वह उसके प्रायश्चित्त के लिए गोरी फ़ौजों को भारतीय मन्त्रियों के अधिकार में दे देगा। क्या आपको डर है कि भारतीय मंत्रियों की मूर्खतापूर्ण आज्ञाओं से गोरे सिपाही मार डाले जायेंगे? क्या मैं आपको याद दिलाऊं कि गत बोअर-युद्ध में एक ऐसा अवसर आया था, जिसमें इंग्लैण्ड में उस युद्ध के ब्रिटिश जनरलों को गधे कहा गया था और गोरे सिपाहियों की वीरता की प्रशंसा की गई थी। अगर बड़े-बड़े ब्रिटिश जनरल भी ग़लती कर सकते हैं तो भारतीय मन्त्रियों को भी करने दो। ये भारतीय मन्त्री निश्चय ही कमाण्डर-इन-चीफ़ और अन्य फ़ौजी विशेषज्ञों से सब बातों में परामर्श करेंगे, हां, आख़िरी ज़िम्मेदारी और अधिकार मन्त्री का होगा। तब कमाण्डर-इन-चीफ़ को स्वतन्त्रता होगी कि वह आज्ञा-पालन करे या इस्तीफ़ा दे दे।

"स्वतन्त्रता का मूल्य ख़ून से चुकाने का मेरा विचार आपको चौंका देता है। मैं हिन्दुस्तान की सब हालतों से वाक़िफ़ होने का दावा करता हूं और इसलिए कहता हूं कि हिन्दुस्तान एक-एक इंच करके आनेवाली मौत से मर रहा है। लगान की वसूली का अर्थ है किसानों के बालकों के मुंह से कौर छीन लेना। किसान अवर्णनीय कष्टों में से गुज़र रहा है। इसका इलाज दरमियानी व्यवस्था नहीं है। क्या ब्रिटिश सरकार उसका मैं जो अर्थ करता हूं वही अर्थ करती है? क्या वे हमारी मदद करने को अर्थात् हमारे हित के लिए ही ब्रिटिश सैनिकों को रखेंगे? यदि यह बात है तो हम भी उन्हें रखेंगे और हमारे साधनों की अनुकूलता के अनुसार उन्हें तनख़्वाह देंगे। परन्तु यदि प्रामाणिकता के साथ यह माना जाता हो कि हम नालायक हैं और ब्रिटिश अधिकार को ढीला नहीं करना चाहिए तो, यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा है, हमें कष्ट-सहन की कसौटी में से गुज़रना चाहिए। मैंने दूसरे लोगों के ख़ून बहाने की बात नहीं कही है, क्योंकि मैं यह जानता हूं कि हिंसक-दल मिटते जा रहे हैं। परन्तु हमारे अपने ख़ून की गंगा बहाने की—प्राप्त स्थिति का सामना करने के लिए स्वेच्छापूर्वक शुद्ध-आत्म बलिदान करने की बात

मैंने कही थी। यदि उसमें से उसे गुज़रना ही चाहिए तो यह कष्ट-सहन भारत को लाभ ही पहुंचायगा। मैं खुद तो यह खयाल नहीं करता कि सांप्रदायिक दंगे, जिसका आपको भय है, होंगे। भारत की आवादी का ९० फ़ी सैकड़ा ग्राम-वासी हैं और यह झगड़े शहर की १० फ़ी सैकड़ा आवादी में ही होते हैं। जिस मृत्यु में कुछ भी गौरव नहीं, ऐसी इस तुच्छ मृत्यु की अपेक्षा मैं उस खून-खरावी को कुछ भी न गिनूंगा। वेशक, इसमें यह वात मान ली गई है कि भारत को जो विदेशी सेना उसपर कब्ज़ा किये हुए है उसका और दुनिया में सवसे खर्चीली सिविल-सर्विस का इतना भारी खर्च देना पड़ता है कि उसे भूखों मरना पड़ता है। जापान जो इतनी वड़ी सेना रखता है उसकी भी सेना का इतना खर्च नहीं है जितना कि भारत को देना पड़ता है।

"आपसे मेरा यह झगड़ा है। मैं यह जानता हूं कि प्रत्येक प्रामाणिक अंग्रेज़ भारत को स्वतन्त्र देखना चाहता है, परन्तु क्या यह दुःख की वात नहीं है कि वे यह खयाल करते हैं कि ब्रिटिश सेना भारत में से हटाई नहीं कि उसपर आक्रमण और परस्पर के युद्ध होने लगेंगे ? इसके विरुद्ध मेरा तो यह कहना है कि अंग्रेज़ों की मौजूदगी ही अन्दरूनी अन्धाधुन्धी का कारण है, क्योंकि आपने फूट डालकर राज्य करने की नीति से भारत पर राज्य किया है। आपके उपकारक इरादों के कारण, आपको ऐसा प्रतीत होता है कि मेंढक को खुरपी चुभती नहीं है। परन्तु स्वभाव से ही वह तो चुभेगी। आप हमारे आमंत्रण से तो भारत में आये नहीं। आपको यह जान लेना चाहिए कि सव जगह असन्तोष फैला हुआ है और हरएक शख्स यह कहता है कि 'हमें विदेशी राज्य नहीं चाहिए।' आपके विना हमारी कैसे गुज़रेगी, इसके लिए आपको इतनी अधिक चिन्ता क्यों है ? अंग्रेज़ों के आने के पहले के ज़माने का ख्याल कीजिए। इतिहास में हिंदू-मुसलमानों के दंगे आज से अधिक नहीं मिलते हैं। सच वात तो यह है कि हमारे ज़माने का इतिहास ही अधिक काला है। अंग्रेज़ी वन्दूकें अपराधी और निरपराधी को दंड देने में समर्थ हैं, फिर भी दंगे रोकने में असमर्थ हैं। औरंगज़ेब के राज्य-काल में भी दंगों का होना सुनाई देता था। आक्रमणों में वुरे-से-वुरा आक्रमण भी लोगों को छू नहीं सका है। वे महामारी

की तरह एक समय पर आते थे। महामारी के ऐसे आक्रमणों को रोकने के लिए, जो अन्ततोगत्वा शुद्धि का उपाय भी हो सकता है, यदि डाक्टरों की फ़ौज हमें रखनी पड़े और उनको तनख्वाह देने के लिए हमें भूखों मरना पड़े तो हम उस शुद्धि के उपाय को ही अधिक पसंद करेंगे। वाघ और सिंह के कभी-कभी होनेवाले आक्रमणों को लीजिए। क्या हम इन प्राणियों से सीधे युद्ध करने के और जोखिम उठाने के वदले करोड़ों के खर्च से किले और कोट वांधना स्वीकार करेंगे ? मुझे माफ़ करें, हम ऐसे भीरु राष्ट्र के लोग नहीं हैं जो हमेशा जोखिम से डरकर भाग जायंगे। विदेशी वंदूक के रक्षण के नीचे जीने से तो हम इस पृथ्वी पर से मर मिटें यही अच्छा है। आपको यह विश्वास करना चाहिए कि अपने झगड़े मिटाना और आक्रमणों का सामना करना हम जानते हैं। भारत कई आक्रमणों में से गुज़रा है और भारतीय संस्कृति और सभ्यता से बढ़कर दूसरी कोई संस्कृति और सभ्यता नहीं है। अतः उसके प्रति दया दिखाकर उसको अधकचरी स्थिति में नहीं रखना चाहिए।

कई घण्टों की वातचीत को मैंने कुछ पैरेग्राफ़ों में संक्षेप करके दिया है। यह वात नहीं कि दूसरे कई प्रश्नों की चर्चा नहीं हुई; परन्तु मैंने केवल चर्चा के मुख्य-मुख्य विषयों का ही उल्लेख किया है। मित्रों ने धैर्यपूर्वक सब सुना और ब्रिटिश मन्त्रियों के सामने रखा जा सके ऐसा कोई हल सुझा सकने की दृष्टि से चर्चा करने का वचन दिया।

आक्सफ़ोर्ड की ही तरह यहां पर भी पूर्णतया मैत्री और सहानुभूति का ही वातावरण था, और प्रत्येक के हृदय में वात को समझने और सहायता करने की ही इच्छा समाई हुई थी। इसका एक उदाहरण देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। चर्चा यह हो रही थी कि भारत के साथ यदि उपनिवेश या 'सन्तति राष्ट्र' (Daughter Nation) का-सा व्यवहार हो तो भारत उसके लिए तैयार है या नहीं ? कुछ मित्रों ने कहा, "जिसे कि औपनिवेशिक स्थिति या पद कहा जाता है उससे सन्तुष्ट होने में हिन्दुस्तान को कठिनाई न होनी चाहिए।" श्रीमती हचिन्सन ने कहा, "स्थिति ऐसी है कि

कनाडा या दक्षिण अफ़्रीका का जो पद है वह हिन्दुस्तान का नहीं हो सकता। क्या कभी हमने उसके साथ 'सन्तति राष्ट्र' के रूप में व्यवहार किया है ?" उपनिवेश तो ऐसे हैं कि जिन्हें प्रकृति ने एक-दूसरे से सम्बद्ध कर रखा है, वे 'मातृदेश' (Mother Country) से ही निकल कर वढ़े हैं। हिन्दुस्तान को ऐसा नहीं कह सकते, उसे ऐसी वस्ती (Colony) या कड़ी (Link) कैसे मान सकते हैं ?" और गांधीजी ने कृतज्ञता के साथ कहा, "श्रीमती हचिन्सन, आपने वार तो निशाने पर किया है।"

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि हिन्दुस्तानी मजलिस में, भारतीय लड़कों की अपेक्षा अंग्रेज़ लड़कों ने ही अधिक अच्छे प्रश्न पूछे थे। अज्ञानयुक्त प्रश्न पूछनेवाले तो दोनों ही में से थे। रावण के मस्तकों की तरह अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न वार-वार निकलता था। गांधीजी ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया, "यह ख़याल न करें कि भारत में हिन्दू, मुसलमान और सिख जनता को लकवा मार गया है। यदि यह वात होती तो भारत की सवसे वड़ी संस्था का प्रतिनिधि वनकर मैं यहां न आया होता। परन्तु वेवकूफ़ी तो केवल यहां आये लोगों में ही है।" और जव गांधीजी ने यह खुलासा किया कि "यहां आये लोगों के मानी यहां आये हुए श्रोता नहीं परन्तु गोलमेज़-परिषद् के भारतीय प्रतिनिधि हैं जिनमें से एक मैं भी हूं" तो लड़के खिलखिला कर हंस पड़े। एक अंग्रेज़ लड़के ने यह अज्ञानपूर्ण प्रश्न किया, कि "गांवों के वेकार लोग शहरों में जाकर किसी उद्योग में क्यों नहीं लग जाते हैं ?" इसके उत्तर में गांधीजी ने विनोद में कहा, "खेतीवारी के शाही कमीशन ने भी यह उपाय नहीं सुझाया था।"

लेकिन इस अट्टहास में सच्चा सन्देशा लुप्त नहीं हो गया। क्योंकि गांधीजी ने वताया "कि किस प्रकार व्रिटिश हुकूमत में सारी जाति वैज्ञानिक रीति से झुलस रही है। एक अंग्रेज़ मित्र ने जो सेना में भरती होनेवाले थे और पन्द्रह दिनों में ही शायद भारत आने के लिए रवाना होनेवाले थे, पूछा—"क्या आप वतायेंगे कि भारत जानेवाला अंग्रेज़ भारतीयों से कैसे सहयोग करे और भारत की कैसे सेवा करे ? गांधीजी ने इनसे कहा—

"पहले तो उसे श्री एण्डरूज से मिलना चाहिए और वह उनसे पूछे कि उन्होंने भारत की सेवा करने के लिए क्यां किया और उसके लिए क्या सहन किया। उन्होंने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भारत की सेवा में अर्पण किया है और कई हज़ार अंग्रेज़ों का काम अकेले किया है। इसलिए अंग्रेज़ उनसे पहला सवक सीखें। फिर वह सिखाने के लिए नहीं परन्तु भारत की सेवा करना सीखने के लिए जायं और यदि इस भाव से वह अपना काम आरम्भ करेगा तो वह सिखायेगा भी। परन्तु यह करने में वह अपनी खुदी को छोड़ देगा और भारतीयों में मिल जायगा, जैसा कि श्री स्टोक्स ने शिमला की पहाड़ियों में किया है। वह सब उनके साथ मिल जायें और मदद करने का प्रयत्न करें। सच्चा प्रेम क्या नहीं कर सकता ? वे सब, जिनमें भारत के प्रति प्रेम है, भारत अवश्य जायें। वहां उनकी आवश्यकता है।"

जिन क्वेकर मित्रों ने सबसे पहले राष्ट्र की तरफ़ से गांधीजी का स्वागत किया था, वे जितना अपने से हो सकता है मदद करने का प्रयत्न करते हैं। वे कई बार गांधीजी से मिल गये। एक मर्तबा उन्होंने एक प्रतिनिधि-मंडल के भारत भेजने के विषय में चर्चा की और उसमें कौन-कौन हों, वह क्या जांच करे और किस तरह काम करे आदि सब विषय की चर्चा हुई। उन्होंने गांधीजी से मिलकर भारतीय स्थिति के सम्बन्ध में बड़े आवश्यक प्रश्न पूछे। मैं सब सवाल का जवाब यहां न दूंगा; परन्तु अल्पसंख्यक कौमों के प्रश्न को संघ-विधान के प्रश्न के मार्ग का रोड़ा बना देने में जो दंभ और इंद्रजाल विछाया हुआ था उसे उन्होंने जिन तीक्ष्ण शब्दों में स्पष्ट किया, उसे यहां देने के लालच को मैं नहीं रोक सकता।

अल्पसंख्यक जातियाँ

"मैंने परिषद् को पसन्द किये हुए लोगों को बताया है और यह विचारपूर्वक है। अगर आप चाहें तो कुछ बातें कितनी बुरी हैं और इस परिषद् के होने के पहले कैसी चालें हुई थीं यह मैं आपको दिखा सकता हूं। यदि हमें हिन्दू-महासभा, मुसलमान या अस्पृश्यों के प्रतिनिधि चुनने को कहा गया होता तो हम आसानी से कांग्रेस के प्रतिनिधि भेज सकते थे। क्या कांग्रेस

ने देशी राज्यों की प्रजा के अधिकार यों बिक जाने दिये होते ? राजा जो अपनी प्रजा के भी प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, उनका दावा टिक नहीं सकता है। राजाओं को इस दुहेरे अधिकार से बुलाने में ही परिषद् का सबसे बड़ा दोष है। भारत में देशी राज्य प्रजापरिषद् है, वह इस प्रश्न पर बड़ा बखेड़ा खड़ा कर सकती थी, परन्तु मैंने उसे समझा कर रोक रखा है।

"मेरे मन में जो बात थी वह मैंने कह दी है। कांग्रेस अल्पसंख्यक जातियों के अधिकारों को बेच देने में असमर्थ है। अछूतों को मैं अच्छी तरह जानता हूं, यह मेरा दावा है। उन्हें जुदे प्रतिनिधि-मण्डल देना उन्हें मार डालना है। अभी वे उच्च वर्गों के हाथों में हैं। वे उन्हें पूरी तौर से दबा सकते हैं और उनसे जो उनकी दया पर निर्भर है, बदला भी ले सकते हैं। मैं यह रोकना चाहता हूं, इसीलिए तो कहता हूं कि मैं उनकी तरफ़ से जुदे प्रतिनिधि-मण्डल की मांग के विरुद्ध लडूंगा। मैं जानता हूं कि यह कहकर मैं अपनी शर्म को आपके सामने स्पष्ट करता हूं। परन्तु वर्तमान स्थिति में मैं उनके नाश को कैसे बुला लूं ? मैं ऐसा अपराध कभी न करूंगा। श्री अम्बेडकर योग्य पुरुष हैं, परन्तु दुर्भाग्य से इस मामले में उनका दिमाग़ फिर गया है। मैं उनके अछूतों के प्रतिनिधि होने के दावे को अस्वीकार करता हूं।

"अब दूसरा सिरा लीजिए—यूरोपियनों का। मैं दूसरे कारणों से उनके लिए जुदे प्रतिनिधि-मंडल होने का सख्त विरोध करूंगा। वे राज्य करनेवाली प्रजा हैं और उनका देश में असाधारण प्रभाव है। आप यह जानते हैं कि प्रथम भारतीय गवर्नर का जीवन उन्होंने कैसा असह्य बना दिया था ? उनके मन्त्री ही उनके पीछे पड़े थे, और नौकर ही उनपर जासूसी करते थे। गोलमेज-परिषद् में यूरोपियनों के प्रतिनिधि सर ह्यू बर्ट-कार से मैंने पूछा कि आप मत के लिए हमारे पास क्यों नहीं आते ? एण्ड-रूज-जैसे पुरुष को भारतीय मतदाता अवश्य चुनेंगे इसका आप यकीन रखेंगे। उन्होंने कहा कि—'श्री एण्डरूज़ अंग्रेज़ों के योग्य प्रतिनिधि न होंगे। वे किसी भारतीय की तरह अंग्रेज़ों के मानस के प्रतिनिधि नहीं हैं।' इसके

उत्तर में मेरा यही कहना है कि 'यदि अंग्रेजों को भारत में रहना है तो उन्हें भारतीय मानस का प्रतिनिधि बनना चाहिए।' दादाभाई नौरोजी ने जिन्हें लॉर्ड सोल्सबरी 'काला आदमी' कहा करते थे, क्या किया ? वे सेंट्रल फ़िन्सबरी के मतों से पार्लमेण्ट में गये थे। एंग्लो-इण्डियनों में के ग़रीबों को कर्नल गिडनी की अपेक्षा मैं अधिक जानता हूं। मुझे उनकी स्थिति का हूबहू ज्ञान है। वे मेरे सामने आकर रोये हैं। उन्होंने कहा है—'हम अंग्रेजों की नकल करते हैं और वे हमें अपनाते नहीं। विचित्र रिवाज और रहन-सहन स्वीकार कर हम भारतीयों से दूर जा पड़े हैं।' मैं उनसे कहता हूं कि आप फिर हमारे पास चले आइए, हम आपको अपनावेंगे, यदि वे जुदे प्रतिनिधि-मण्डल स्वीकार करेंगे तो अस्पृश्य हो जायंगे। कर्नल गिडनी की स्थिति भले ही सलामत रहे, परन्तु उनकी तरह सब 'नाइट' तो न होंगे। परन्तु सेवा के ज़रिये वे लोगों के पास जायंगे और उनका मत मांगेंगे तो वे सब सलामत रहेंगे।"

५

लंकाशायर में

लंकाशायर के कारखानों के कुछ विभाग में खास तौर पर हिन्दुस्तान को भेजने के लिए ही सूती माल तैयार किया जाता है। "सज्जनों से जिस विनय की आशा रखी जा सकती है उसको अनुभव करने के लिए हम तैयार थे, मुसीबतों और ग़लतफ़हमी के कारण उत्पन्न कुछ कटुता को भी अनुभव करने के लिए हम तैयार थे; परन्तु हमने तो उसके बदले यहां प्रेम की वह उष्णता पाई जिसके लिए हम तैयार न थे। मैं जिन्दगी-भर अपने हृदय में इस स्मृति को कायम रक्खूंगा।" इन शब्दों में, जिनका कि सारांश वह वहां के मालिक और कारीगरों की हर एक सभा में दोहराते थे। गांधीजी को इन सब मित्रों से मिलने का जो अवसर उन्हें मिला, उसके लिए अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की। इस स्वागत में जो प्रेम-भाव था, उसकी तो केवल भारत के शहरों और देहातों में गांधीजी का जो स्वागत होता था उसी

से तुलना की जा सकती है। वहां कोई सर्वसाधारण सभा नहीं हुई, परन्तु उससे कहीं अच्छा मालिक और मज़दूरों के विभिन्न समुदायों से दिल खोलकर बातें करने का आयोजन हुआ। उन्होंने गांधीजी के सामने अपनी सब बातें पेश कीं और गांधीजी ने एक ही जवाब बार-बार दोहराने का जोखिम उठा करके भी सब समुदायों से मुलाकात की, किसीको इन्कार नहीं किया।

उन सबकी बातें धैर्यपूर्वक सुन लेने के बाद गांधीजी को यह कहने में कुछ आनन्द नहीं हो सकता था कि वह उन्हें बहुत कम सुख पहुंचा सकते हैं। वे शायद बड़ी आशाएं रखकर आये होंगे। परन्तु गांधीजी को बड़े दु:ख के साथ उनपर यह बात स्पष्ट करनी पड़ी कि मुझे उस काम का भार उठाने के लिए कहा जा रहा है जिसे उठाने के लिए मैं और मेरा देश दोनों असमर्थ हैं।

दु:ख का कारण

"मेरी राष्ट्रीयता इतनी संकुचित नहीं है कि मैं आपके दु:खों के लिए दु:ख अनुभव न करूं और उसपर हर्ष मनाऊं। दूसरे देशों के सुख को नष्ट करके मैं अपने देश को सुखी करना नहीं चाहता। किन्तु, यद्यपि मैं यह देखता हूं कि आपको बड़ी हानि हुई है, परन्तु मुझे भय है कि आपका दु:ख मुख्यतः हिन्दुस्तान के कारण ही नहीं है। कुछ वर्षों से स्थिति खराब हो चली आती है, बहिष्कार तो उसमें आखिरी तिनका है।" उन्होंने स्प्रिंगवेल गार्डन नामक गांव में कहा—"संधि पर ५ मार्च को दस्तखत हो जाने के बाद विदेशी कपड़े से भिन्न ब्रिटिश कपड़े का बहिष्कार नहीं हो रहा है। एक राष्ट्र की हैसियत से हम तमाम विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने के लिए बंधे हुए हैं। परन्तु यदि इंग्लैंड और हिन्दुस्तान में सम्मानपूर्ण संधि हो जाय, अर्थात् स्थायी शान्ति हो जाय तो हमारे कपड़े की पूर्ति के लिए और स्वीकृत शर्तों पर दूसरे विदेशी वस्त्रों के मुकाबिले में मैं लंकाशायर के कपड़े को प्रधानता देने में न हिचकिचाऊंगा। परन्तु इससे आपको कितनी सहायता मिलेगी मैं नहीं जानता। आपको यह जान लेना चाहिए कि दुनिया के तमाम बाज़ार आपके लिए खुले नहीं हैं। आपने जो किया

वही दूसरे राष्ट्र आज कर रहे हैं। हिंदुस्तानी मिलें भी प्रतिदिन अधिकाधिक कपड़ा तैयार करेंगी। मैं लंकाशायर के लिए हिन्दुस्तान के उद्योग पर प्रतिबन्ध डालूं यह तो निश्चय ही आप न चाहेंगे।"

एक दूसरी जगह उन्होंने कहा—"यहां जो बेकारी है उसका मुझे दुःख है, परन्तु यहां भुखमरी या अर्ध-भुखमरी नहीं है। हिन्दुस्तान में तो यह दोनों ही हैं। यदि आप हिंदुस्तान के गांवों में जायें तो वहां आप ग्रामवासियों की आंखों में सर्वथा निराशा ही देखेंगे, अधभूखे कंकाल, जिन्दा मुरदे मिलेंगे। यदि हिन्दुस्तान काम के रूप में उनमें खुराक और जीवन डाल कर उन्हें पुनर्जीवन दे सके तो इससे वह दुनिया की मदद कर सकेगा। आज तो हिन्दुस्तान शाप-रूप है। देश में एक पक्ष ऐसा है जो इन अधभूखे करोड़ों का शीघ्र ही नाश होना चाहेगा जिससे कि दूसरे लोग जीवित रह सकें। मैंने एक मनुष्योचित उपाय सोचा है। इससे उन्हें वह काम मिलेगा जिसे वे जानते हैं, जिसे वे अपनी झोंपड़ी में भी कर सकते हैं, जिसमें औजार वग़ैरा में कोई बड़ी पूंजी नहीं लगानी पड़ती और जिसकी उपज आसानी से बेची जा सकती है। यह कार्य ऐसा है जिस ओर लंकाशायर को भी ध्यान देना चाहिए।

"लेकिन इन मिलों की हालत देखिए जो अभी उस दिन तो गूंज रही थीं और आज बेकार पड़ी हैं। ब्लेकबर्न, डारवन, ग्रेट हारवुड, एक्रींगटन में कोई सौ मिलें बन्द कर देनी पड़ी हैं। ग्रेट हारवुड के विभाग में कम-से-कम १७,४३६ करघे बेकार पड़े हैं।"

कुछ कारीगरों ने कहा—"हमने हिन्दुस्तानी कपड़ा बुनने की कालेज में विशेष शिक्षा पाई। हम खास हिन्दुस्तान के लिए धोती तैयार करते हैं। और आज हम वह क्यों न तैयार करें और इंग्लैंड और भारत में अच्छा रिश्ता क्यों न पैदा करें ?"

कुछ मजदूरों ने कहा—"१८९७-९८ के अकाल में हमने हिन्दुस्तान की मदद की थी। हमने ग़रीबों के लिए चन्दा इकट्ठा किया और उन्हें भेज दिया। हम सदा उदार नीति के पक्ष में रहे। बहिष्कार हमारे विरुद्ध

क्यों होना चाहिए ? " कुछ लोगों ने तो अपना वैयक्तिक दुःख भी गांधीजी के सामने रखा। उसमें सबसे अधिक करुणाजनक तो यह था—

"मैं रुई का काम करनेवाला हूं। मैं चालीस बरस तक बुनकर रहा हूं और आज बेकार हूं। आवश्यकता और तकलीफ़ की मुझे चिन्ता नहीं है; किन्तु मेरा अपना आत्मसम्मान चला गया है। मैं बेकारी की मदद पाता हूं, इसलिए मैं अपनी नज़रों में आप ही गिर गया हूं। मैं नहीं खयाल करता कि मैं अपना जीवन आत्मसम्मान से युक्त पूरा कर सकूंगा।"

मालिक और समृद्ध कारीगरों के लिए, जो वहां रविवार की छुट्टी बिताना चाहें, योर्कशायर में हायेज़ फार्म एक आराम-गृह है। वहां पर

कड़ुआ सत्य

बेकार लोगों के कुछ प्रतिनिधि-मण्डल गांधीजी से मिले और उन्होंने क़रीब-क़रीब यही बात कही और आराम-गृह के भाइयों ने तो एक खास प्रार्थना की योजना की, जिसमें उन्होंने ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने के लिए प्रार्थना की। गांधीजी के लिए अपना हृदय छिपाना असंभव था। "यदि मैं आपको स्पष्ट न कहूं तो मेरा आपके प्रति असत्याचरण होगा—मैं झूठा मित्र गिना जाऊंगा।" गांधीजी ने पौन घण्टे तक अपना हृदय उनके सामने खोल कर रखा। उनके जीवन में अर्थशास्त्र, आचार-शास्त्र और राजनीति किस तरह एकरूप हो गये हैं, इसका उन्होंने वर्णन किया। तमाम बातों के मुकाबिले में सत्य का झण्डा उन्होंने किस तरह ऊंचा उठाया है, परिणामों से बन्ध जाने से उन्होंने अपनेको किस तरह रोका है, देश के सामने चरखा रखने की उन्हें किस तरह प्रेरणा हुई और दुनिया की स्थिति के कारण वे किस तरह आज की हालत में आ पहुंचे हैं इसका भी वर्णन किया। उन्होंने कहा—

"गत मार्च के महीने में मद्य और विदेशी कपड़े के बहिष्कार की स्वतन्त्रता के लिए मैंने लार्ड इर्विन के सामने प्रयत्न किया। उन्होंने सूचना की कि मैं परीक्षा के तौर पर तीन महीने के लिए बहिष्कार छोड़ दूं और उसका फिर आरम्भ करूं। मैंने कहा—'मैं तो इसे तीन मिनिट के लिए भी

नहीं छोड़ सकता।' आपके यहां ३,०००,००० बेकार हैं, परन्तु हमारे यहां तो ३००,०००,००० छः महीने के लिए बेकार रहते हैं। आपके बेकारों की मदद की औसत दर ७० शिलिंग है और हमारी औसत आमदनी ७॥ शिलिंग है। उस कारीगर ने जो यह कहा कि वह अपनी नज़रों में आप गिर गया है, सच कहा है। मैं यह विश्वास करता हूं कि मनुष्य के लिए बेकार रहना और मदद पर जीना उसे हलका बनाना है। हड़ताल के समय भी हड़ताली लोग एक दिन के लिए बेकार रहें यह मैं सहन नहीं कर सकता था और पत्थर तोड़ने, रेत ले जाने और सार्वजनिक सड़कों का काम उनसे लेता था और अपने साथियों से भी उनमें शामिल होने के लिए कहता था। इसलिए कल्पना करो कि ३००,०००,००० का बेकार रहना, प्रतिदिन करोड़ों का काम के अभाव में पतित होना, अपना आत्मसम्मान और ईश्वर में श्रद्धा को खो देना, वह कितनी बड़ी आफ़त है! मैं उनके सामने ईश्वर के सन्देश को ले जाने की हिम्मत ही नहीं कर सकता। एक कुत्ते के सामने ईश्वर का सन्देश ले जाऊं और उन भूखे करोड़ों के पास जिनकी आंखों में नूर नहीं है और रोटी ही जिनका खुदा है,उसे ले जाऊं, तो वह दोनों ही बराबर हैं। मैं उनके पास सिर्फ पवित्र काम का सन्देश लेकर ही —ईश्वर का सन्देश लेकर जा सकता हूं। बढ़िया नाश्ता करके और उससे भी बढ़िया खाने की आशा रखते हुए ईश्वर की बात करना अच्छी बात है। परन्तु जिन करोड़ों को दिन में दो वक्त खाना भी नहीं मिलता, उनसे मैं ईश्वर की बातें कैसे कर सकता हूं। उनको तो रोटी और मक्खन के रूप में ही ईश्वर दिखाई देगा। भारत का किसान अपनी रोटी अपनी भूमि से पाता है। मैंने उनके सामने चरखा इसलिए रखा है कि उससे वे मक्खन पा सकें। और यदि आज मैं ब्रिटिश जनता के सामने कच्छ पहन कर ही उपस्थित हुआ हूं तो वह इसलिए क्योंकि मैं इन अधभूखे, अर्ध-नग्न, मूक करोड़ों का एकमात्र प्रतिनिधि बनकर आया हूं। अभी हम लोगों ने प्रार्थना की कि ईश्वर के अस्तित्व के प्रकाश में हम आनन्द करें। मैं आपसे कहता हूं कि जब करोड़ों भूखे आपके दरवाज़े पर खड़े हैं, यह असम्भव है। आप अपने

दुःखों में भी भारत की तुलना में सुखी हैं। मैं आपके सुख की ईर्ष्या नहीं करता। मैं आपका भला चाहता हूं, परन्तु भारत के करोड़ों ग़रीबों की कवरों पर समृद्ध वनने का खयाल छोड़ दीजिए। मैं यह नहीं चाहता कि भारत अकेला जीवन वितावे। परन्तु मैं अन्न और कपड़े के विषय में किसी देश पर आधार रखना नहीं चाहता। यद्यपि उपस्थित संकट को दूर करने के उपाय हम ढूंढ निकालेंगे; परन्तु मुझे यह कहना चाहिए कि लंकाशायर के पुराने व्यापार को पुनः सजीव करने की आप आशा न रखें। यह असंभव है। उसमें मैं आपको धर्म से मदद नहीं कर सकता। मान लीजिए कि मेरा श्वास एकदम बंद हो गया और कुछ समय के लिए कृत्रिम श्वासोच्छवास की क्रिया से मुझे मदद दी गई और मैं फिर से श्वास लेने लगा तो क्या मुझे उसी कृत्रिम क्रिया पर सदा के लिए आधार रखना चाहिए और अपने फेफड़ों का उपयोग करने से इन्कार करना चाहिए। नहीं, यह आत्मघात होगा। मुझे अपने फेफड़ों को मज़वूत वनाना चाहिए और अपनी शक्ति पर जीना चाहिए। आप ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि भारत अपने फेफड़े मज़वूत कर सके। आप अपने कष्टों का दोष भारत के सिर पर न डालें। दुनिया की शक्तियां जो आपके खिलाफ़ काम कर रही हैं उनका विचार कीजिए। विवेक के विमल प्रकाश में वस्तुस्थिति को देखिए।"

और उसके वाद गांधीजी ने कहा—

"मुझे कृपया यह वताइए कि भूखों मरकर जीनेवाले और आत्म-सम्मान की सव भावनाओं से हीन मनुष्य जाति के ⅕ का मैं क्या करूं। वेकार लंकाशायर को भी उसपर ध्यान देना चाहिए। १८९९-१९०० के अकाल में लंकाशायर ने हमें जो मदद दी, वह आपने हमें सुनाई। ग़रीवों के आशीर्वाद के सिवा हम उसका वदला और किस तरह चुका सकते हैं? मैं आपको न्याय्य व्यापार का अवसर देने के लिए आया हूं। परंतु यदि मैं वह दिये विना ही चला जाऊं तो उसमें मेरा कसूर न होगा। मुझमें कोई कटुता नहीं है। हलके-से-हलके प्राणी से भी मैं वन्धुत्व का दावा करता हूं, तो फिर अंग्रेज़ों से क्यों न करूंगा, जिनसे कि हम एक सदी से अधिक समय से भले या वुरे के

लिए वंधे हुए हैं, और जिनमें मैं अपने अत्यन्त प्रिय मित्रों के होनेका दावा करता हूं ? आपके लिए मैं तो वहुत आसान मसला हूं, परंतु यदि आप मेरे वढ़ाये हुए हाथ को झटक देंगे तो मैं चला जाऊंगा, मन में कटुता रखकर नहीं परंतु इस खयाल को लेकर कि आपके हृदय में स्थान पाने के लिए मैं काफ़ी शुद्ध नहीं था।"

विदेशी-वस्त्र-वहिष्कार

एज़वर्थ के मालिकों से जो वातचीत हुई वह वड़ी मित्रतापूर्ण थी और निर्विकार भाव से हुई थी। यहां गांधीजी ने विदेशी वस्त्र-वहिष्कार के आर्थिक रूप का ज़ोरों से प्रतिपादन किया।

प्र०—"क्या राजनैतिक उद्देश्य से किये गए वहिष्कार को आर्थिक उद्देश्य से किये गए वहिष्कार से जुदा करना सम्भव है ?"

उ०—"जैसा कि १९३० में व्रिटेन को सज़ा देने के उद्देश्य से किया गया था, जव लोग व्रिटिश माल के वदले अमेरिकन और जर्मन माल को पसन्द करते थे, यह वहिष्कार स्पष्ट ही राजनैतिक वहिष्कार था। व्रिटिश मशीनरी का भी उस समय वहिष्कार किया गया था। परन्तु अव तो मूल आर्थिक वहिष्कार ही रह गया है। आप उसे वहिष्कार भले ही कहें, परन्तु यह सर्वथा शिक्षा और आत्म-शुद्धि का ही प्रयत्न है; अपने एक पुराने व्यवसाय पर लौटकर जाने की, और आलस्य को दूर करने की, अपने पसीने—किसी की मदद से नहीं—अपनी रोज़ी कमाने की यह एक अपील है।"

प्र०—"लेकिन दूसरी विदेशी चीज़ों के मुकाविले में आप अपनी मिलों को प्रधानता देंगे, इस अंश में तो इसकी राजनैतिक वाज़ू रहेगी ही न ?"

उ०—"मिलों के कारण से यह वहिष्कार शुरू नहीं किया गया था। सच वात तो यह है कि स्थानीय मिल-मालिकों के साथ के झगड़े से शुरू हुआ-हुआ यह प्रथम रचनात्मक कार्य है और यद्यपि धनी लोग भी हमारे आंदोलन का समर्थन करते हैं, परन्तु हमारी नीति पर उनका कोई अधिकार नहीं है उलटे हमारा असर उनपर पड़ता है। जव हम गांवों में जाते हैं तव वहां हम लोगों से मिल का कपड़ा पहनने को नहीं, खादी पहनने को, अपनी

खादी अपने-आप वना लेने को कहते हैं। और कांग्रेसवादियों से तो खादी ही पहनने की आशा रखी जाती है।"

प्र०—"आप कुछ भी कहें, आप राजनैतिक अधिकार वढ़ाना चाहते हैं और आपको वह मिलेगा ही; परन्तु जैसे ही आपको वह अधिकार मिला कि ये धनी लोग लालच में अविचारी वनकर चुंगी की वड़ी दीवाल खड़ी करेंगे और आपके गांवों के लिए लंकाशायर के सूती व्यापार से भी वढ़कर खतरा वन वैठेंगे।"

उ०—"यदि मैं तवतक जिन्दा रहा और ऐसा दुष्परिणाम हुआ भी तो मैं यह कहने का साहस करता हूं कि इस कार्य में मिलों का ही नाश होगा। और सच्चे राष्ट्रीय अधिकारों के साथ वालिग़ मताधिकार भी आवेगा, और तव धनी वर्ग के लिए ग़रीव गांववालों को कुचल डालना असम्भव हो जायेगा!"

प्र०—"क्या आप यह नहीं खयाल करते कि जैसे अमेरिका में लोग मद्य-पान की तरफ़ फिर मुड़ रहे हैं वैसे ही आपके लोग भी मिल के कपड़ों पर लौट जायेंगे!"

उ०—"नहीं, अमेरिका में, लोगों की इच्छा के विरुद्ध एक शक्ति-शाली राष्ट्र ने मद्य-निषेध के महान् शस्त्र का प्रयोग किया था। लोग शराव पीने के आदी थे। शराव पीना वहां फ़ैशन में शुमार हो गया था। हिन्दुस्तान में मिल का कपड़ा कभी "फ़ैशन' नहीं वन सका और खादी तो आज फ़ैशन में गिनी जाती है और सम्भावित समाज में दाखिल होने के लिए एक परवाना-सा वन गई है। और कुछ भी हो, मैं अपने लोगों की आर्थिक मुक्ति के लिए लड़ता रहूंगा और यह आप स्वीकार करेंगे कि इसके लिए मरना और जीना उचित ही है!"

प्र०—"यह असमान युद्ध होगा। आर्थिक स्पर्द्धा के प्रवाह के सामने सवकुछ वह जायेगा!"

उ०—"आप कहते हैं कि धन-लिप्सा के आगे ईश्वर की हार हुई है और यही चलता रहेगा। परन्तु हिन्दुस्तान में उसकी हार न होगी।"

कताई और बुनाई मण्डल (काटन स्पिनर्स एण्ड मेन्युफ़ेक्चरर्स एसोसियेशन) के अध्यक्ष श्री ग्रे ने, जिन्होंने इस दिलचस्प संवाद में बहुतायत से भाग लिया था, यह स्वीकार किया कि यह कष्ट अधिक इसलिए मालूम होता है क्योंकि वे एक अधिक-से-अधिक केन्द्रित विभाग का ही विचार करते हैं। उन्होंने कहा, ब्लेकबर्न के इस विभाग में जबकि ५० फ़ीसदी बेकारी हिन्दुस्तान के कारण थी तो उनके अपने विभाग बर्नली में १५ फ़ीसदी बेकारी उनके कारण थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि कांग्रेस ने बहिष्कार घोषित किया उसके पहले ही बहुत-सी मिलें बन्द हो गई थीं और यह आपत्ति तो अधिकतर दुनिया की वर्तमान परिस्थिति के कारण ही थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वह बहिष्कार उठा देने से भी उन्हें अधिक मुक्ति न मिल सकेगी।

भारत और इंग्लैंड में ग़रीबी

बेकार कारीगर जो गांधीजी को मिले उनके मन में कोई कटुभाव न था। उलटे उन्होंने तो भारत की खेतीबाड़ी की स्थिति के सम्बन्ध में और, किसानों को साल में छः महीने काम क्यों नहीं मिलता तथा उनके जीवन के उपयोगी खर्च का आदर्श इतना नीचा क्यों है—आदि के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। जैसा कि उन्होंने स्पष्ट कहा उनके सम्बन्ध में भुखमरी का सवाल न था वरन् जीवनोपयोगी खर्च के आदर्श के घटने का प्रश्न था। पहले जहां वे एक शिलिंग खर्च करते; वहां उन्हें अब छः पेंस से ही सन्तोष करना पड़ता है। और जब बहुतेरे लोग तो कुछ बचा ही नहीं सकते हैं तो कुछ लोगों को अपनी बचत पर गुज़ारा करना पड़ता है। उनको सरकार की तरफ़ से जो बेकारी की मदद मिलती है उसकी वर्तमान दर ये है—पुरुष को १७ शिलिंग, स्त्री को १५ शिलिंग, (स्त्री जो मज़दूरी न करती हो उसे ९ शिलिंग) और हर एक बच्चे को २ शिलिंग, प्रति सप्ताह मिलते हैं। गांधीजी ने कहा, "यह तो बहुत बड़ी आमदनी है और आपके जैसी बुद्धिमान जाति के लिए दूसरे हुनर और धंधे ढूंढ निकालना कोई मुश्किल नहीं है। परन्तु हमारे करोड़ों भूखों के लिए तो कोई दूसरा धंधा ही नहीं है। यदि

आपमें से कोई निष्णात कोई ऐसा वन्वा ढूंढ निकाले तो मैं उसे चरखे के वदले चलाने के लिए तैयार हूं। इस वीच मैं आपको इससे अविक कुछ आशा नहीं दिला सकता कि स्वतंत्र भारत ग्रेट ब्रिटेन के समान भागीदार की हैसियत से अपने लिए आवश्यक कपड़ा खरीदने में तमाम विदेशी कपड़ों में लंकाशायर के कपड़े को प्रवानता देगा।"

६

केण्टरवरी के डीन

डीन ने अपने मोहक और सरल ढंग से कहा—"अखवारवालों को आश्चर्य हो रहा है कि गांवीजी कैण्टरवरी किसलिए आये होंगे। उनकी समझ में नहीं आता कि मैंने गांधीजी को निमन्त्रित किया है, अथवा गांवीजी स्वयं यहां आये हैं। मैंने तो उनसे कह दिया है कि राजनीति को विलकुल एक ओर रख देने पर भी गांवी-जी और मेरे वीच समान रूप से एक वड़ा दिलचस्प विषय है और वह है वर्म। आव्यात्मिक विपयों पर वातचीत करने के लिए ही मैं गांवीजी से मिलने के लिए उत्सुक था और मुझे पूर्ण निश्चय है कि हम फिर और मिलेंगे।"

गांवीजी और डीन में दिल खोलकर वातचीत हुई और उसके वाद २ वजे गांधीजी को मौन धारण करना पड़ा; क्योंकि दूसरे दिन उसी समय एक महत्वपूर्ण समिति के कार्य में उन्हें योग देना था। गांवीजी ने कहा—"डीन महाशय, मैं आपको साक्षी रखकर मौन ले रहा हूं।" डीन ने कहा—"और वह आदमी अभागा होगा, जो आपको वोलने पर वाव्य करे।" इसी समय डीन ने गांवीजी से पूछ लिया था कि क्या वे दोपहर के वाद की प्रार्थना में सम्मिलित होना पसन्द करेंगे और गांवीजी ने उसपर कह दिया था कि उन्हें वह प्रिय होगी।

इसलिए हम केण्टरवरी के प्राचीन गिर्जाघर की प्रभावोत्पादक उपासना में सम्मिलित हुए। उपासना के अन्त में डीन ने गोलमेज-परिपद् के भारतीय प्रतिनिवियों के लिए प्रार्थना कर ईश्वर से याचना की कि इंग्लैंड जैसी सुव्यवस्थित स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा है, वैसी ही स्व-

तन्त्रता वह भारत को दे। दूसरी प्रार्थना में उन्होंने ईश्वर से चीन के विपत्ति-ग्रस्त करोड़ों दुःखी लोगों को संकट-मुक्त करने की मांग की और जैसा कि मैंने तुरन्त ही देखा, ये प्रार्थनाएं केवल शिष्टाचार-प्रदर्शन के लिए अथवा खाली शुभेच्छा की द्योतक न थी।

मैंने कहा—"आपकी वैठक की मेज़ पर रखी हुई पुस्तकों से मालूम होता है कि चीन के विषय में आपको दिलचस्पी है।" यह छोटा-सा प्रश्न डीन के मन की वात निकाल लेने के लिए काफ़ी था।

चीन

उन्होंने अत्यन्त भावुकता के साथ कहा—"हां, मैंने चीन के सम्वन्ध में अध्ययन किया है, किन्तु चीन पर जो संकट आ पड़ा है, उससे चीन का तत्काल अभ्यास करने की आवश्यकता है, और हम आगामी वसन्तऋतु में वहां जाने की योजना कर रहे हैं। मुझे आशा है कि डा. स्विट्ज़र और डा. ग्रेनफिल वहां होंगे और चार्ली एण्ड्रयूज़ और हम वहां जावेंगे। वाढ़ में डूवे हुए भाग का क्षेत्रफल व्रिटिश टापुओं के क्षेत्रफल के वरावर है, करोड़ से अधिक लोक संकट-ग्रस्त हैं, और करीव एक करोड़ के मर गये हैं। हमें वहां जाकर वहां की स्थिति को प्रत्यक्ष देखना है और यदि सम्भव हो सके तो सारे संसार का ध्यान उस ओर आकर्षित करना है।"

मैंने पूछा—"क्या आप वहां की राजनैतिक स्थिति का भी अध्ययन करेंगे?" उन्होंने कहा—"हां, मेरे लिए स्वतन्त्रता का अर्थ मेरी स्वतन्त्रता नहीं है। उसका अर्थ है सवकी और प्रत्येक की स्वतन्त्रता।"

मैंने कहा—"इस जांच के लिए आप इनसे योग्य व्यक्ति नहीं ढूंढ़ सकते थे?" इसपर वे तुरन्त ही डा० ग्रेनफिल और डा० स्विट्ज़र की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—"डा० ग्रेनफिल के नाम से सारा इंग्लैंड परिचित है। वे सुदूर लाव्राडोर में वहां के पीड़ितों की सेवा करने गए थे। और अल्वर्ट स्विट्ज़र के लिए तो वे जो काम अफ़्रीका के मध्यभाग में करते थे, वही आगे जारी रहेगा।"

मैंने कहा—"उन्होंने अपनी हाल ही की पुस्तक की एक प्रति गांधीजी के पास भेजी है।" डीन ने कहा—"मैं इस पुस्तक से परिचित हूं। यूरोप

के ईश्वर-सम्बन्धी विचार के मुख्य प्रवाह को डा० स्विट्ज़र ने नई ही गति दी है, और यद्यपि ऐसा भासित होता है कि वे दूसरे छोर पर पहुंच गये हैं; किन्तु मैं समझता हूं कि उन्होंने यूरोप को ठीक समय पर चेतावनी दी है। वह एक विलक्षण व्यक्ति हैं। उन्होंने संगीत का गहरा अध्ययन किया है, विशेषकर, वाक के संगीत का; उसके तो वह कुशल उस्ताद हैं। इसके वाद उन्होंने शल्य-चिकित्सा—सरजरी—का अध्ययन कर डाक्टर की डिग्री ली और अन्त में सुदूर अफ़्रीका में वहां के पीड़ितों की सेवा करने के लिए जाने का निश्चय किया। इसमें उनके दो प्रधान उद्देश्य थे—(१) ईसामसीह के इन शब्दों में उनका अटल विश्वास कि 'जो जीवन देता है, वही जीवन पायेगा।' और (२) उनकी यह कामना कि गुलामों के घृणित व्यापार के रूप में अपने देशवासियों (इंग्लैंड वालों) ने उनपर जो अत्याचार एवं पाशविकताएं कीं तथा शराव के द्वारा उन्हें नीति-भ्रष्ट करके जो पाप किया, उसके प्रायश्चित्त के रूप में कुछ करना चाहिए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई भी प्रायश्चित्त इसके लिए काफी नहीं है, इसलिए उन्होंने अपने-आपको रोग, खतरों और मृत्यु के वीचोंवीच फेंक दिया।"

उनकी मेज़ पर पड़ी हुई वरट्रेण्ड रसल की चीन-सम्बन्धी पुस्तक का मैंने ज़िक्र किया, इसपर डीन वरट्रेण्ड रसल के सम्बन्ध में कुछ कहने लगे और इसी प्रसंग में अपने सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ कहना पड़ा।

रूस

उन्होंने कहा—"हां, मैं वरट्रेण्ड रसल को अच्छी तरह जानता हूं। रूस की क्रान्ति के समय मैंने इनसे मेंचेस्टर में रूस के सम्बन्ध में भाषण करवाया था और इस प्रकार मैं तात्कालिक फ़ौजी अधिकारियों का संदेह-भाजन वन गया था; हमारी सभा में सैनिक मौजूद थे। मैं यह अनुभव करता था कि रूस वाले जो कर रहे हैं, वह ठीक है। यह कहा जाता था कि उन्होंने धर्म तथा ईसाइयत का परित्याग कर दिया है। मुझे इसकी परवा न थी, क्योंकि मैं यह साफ़ देख रहा था, कि वे जो कहते हैं, उसकी अपेक्षा वे जो करते हैं, उसका महत्व अधिक है। और ग़रीबों तथा पीड़ितों के लिए वे जो संग्राम कर रहे थे

और वे जिस तरह यह आग्रह कर रहे थे कि जीवन की सुख-सुविधाएं ऊपर से नीचे तक सबको समान रूप से मिलनी चाहिएं, इससे अधिक ईसा की आत्मा के अनुकूल और क्या हो सकता है? सिर्फ़ ज़बान से 'प्रभु-प्रभु' कहने वाला व्यक्ति सच्चा ईसाई नहीं; सच्चा ईसाई तो 'प्रभु की इच्छा को व्यवहार में परिणत करनेवाला' व्यक्ति ही है।"

मैंने कहा—"आपको यह जानकर आनन्द और आश्चर्य होगा कि यही मत, लगभग इसी भाषा में नोएल तथा डोरोथी बक्स्टम ने अपनी 'दी चेलेंज़ आव् बोलशेविज़्म' (साम्यवाद की चुनौती) नामक पुस्तक में प्रकट किया है। इसपर डीन प्रसन्न हुए। उन्होंने यह पुस्तक देखी न थी, इसलिए मैंने वह उसके पास भेजने का वचन दिया। डीन ने जर्मनी की चर्चा छेड़ी और आह भरते हुए कहा—"जिनके मुकाबिले में हम लड़े, कितना अच्छा होता यदि हम उन्हें पहचानते होते! मैंने उन्हें देखा और पहचाना, और मैंने यह अनुभव किया कि हम उनके साथ नहीं लड़ सकते।" मैंने लार्ड हेलडेन का नाम लिया, इसपर डीन ने कहा—"वह उन थोड़े-से लोगों में से एक थे, जो जर्मनों और जर्मनी के सम्बन्ध में जानते थे। वे स्कॉच थे; मेरा विश्वास है कि अपने स्वास्थ्य के कारण वे यहां की यूनिवर्सिटी में दाखिल न हो सके, इसलिए वे जर्मनी गए और जर्मन संस्कृति में जो श्रेष्ठातिश्रेष्ठ बातें थीं, वे सब बातें उन्होंने ग्रहण कर लीं।

किन्तु इन और इस प्रकार के विषयों पर बातचीत करते हुए भी उनके मन में तो संसार के विभिन्न भागों के पीड़ित मानव-जाति का चिन्तन चल रहा था, और इसलिए उन्होंने कहा—"आज दोपहर के बाद की प्रार्थना में बाईसवां भजन पढ़ते समय मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इसमें जिस स्थिति का तादृश चित्रण है, गांधीजी को उस स्थिति का कई बार अनुभव हुआ होगा और ईश्वर की शक्ति में उन्होंने अपने-आपको शक्तिमान अनुभव किया होगा।" भजन की वे पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"किन्तु जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो कीट हूं, मनुष्य हूं। मानव-समुदाय द्वारा तिरस्कृत और लोगों द्वारा वहिष्कृत हूं।

"मुझे देखनेवाले सब मेरी ओर तिरस्कारपूर्वक हंसते हैं; वे होठ लम्बे कर के, सिर हिला कर कहते हैं कि इसने ईश्वर पर विश्वास किया था कि वह इनका उद्धार करेंगे; ईश्वर को यदि इसकी आवश्यकता हो तो इसका उद्धार करे।"

इसके बाद—"मैं मृत्यु की घाटी में चलता होऊं तो भी मुझे किसी प्रकार का भय नहीं, क्योंकि हे प्रभु, तू मेरा साथी है; तेरी सोटी और तेरा दण्ड मुझे सुखदायक है।"

और डीन ने भजन की इन अंतिम पंक्तियों को दोहराया और वे बोले—"बहुत से लोग मुझसे पूछते थे कि क्या तुम गांधी को ईसाई बनानेवाले हो?" मैंने रोषपूर्वक उनसे कहा—"इन्हें ईसाई बनाया जाय! ईसा के समान जितना जीवन इनका है, वैसे मैंने दूसरे का बहुत कम देखा है।"

मैंने उन्हें याद दिलाया, "किसीने कहा है कि धर्म आकर्षक है; किन्तु चर्च (धर्म-संघ) पीछे हटानेवाला है; और ये मित्र धर्म का वास्तविक मर्म नहीं समझते।"

डीन ने कहा—"यह बड़ा आकर्षक वाक्य है। मुझे आश्चर्य है यह किसने कहा होगा।" किन्तु तुरन्त ही उन्होंने सम्भालते हुए कहा—

पादरी

"और विकास और सुधार की सब प्रगतियां चर्च (धर्म-संघ) के लोगों के पास से ही आनी चाहिएं और आ सकती हैं। मेरे लिए चर्च वृक्ष की छाल के समान है। छाल का काम रक्षा करने का है, उसका स्वभाव संकोची है, जीवन का लाभ इसीमें है कि प्रति वर्ष छाल में सांध पड़े, जिससे जीवन का विकास हो सके, और फिर भी छाल वृक्ष की रक्षा करने के लिए रहती है। मैं यदि चर्च में न होता तो आज जितना बाग़ी हूं, उतना नहीं हो सकता था।" और वे बाग़ी तो हैं ही यह मैं बता ही चुका हूं। श्री डीन अपने आपको फ्रांस के ह्यूजी-नोट

सम्प्रदाय के जो रेशम की बुनाई का धन्धा करने लगे थे, उन्हींके वंशज बतलाते हैं—"इस प्रकार मैं जुलाहा भी हूं और बाग़ी भी हूं। महात्माजी में और मुझमें इन दो बातों की समानता है।"

किन्तु मूल बात पर लौटकर उन्होंने कहा कि महात्माजी की समानता का दृष्टांत यदि कोई हो सकता है, तो वह असीसी के संत फ्रांसिस का है। और असीसी का नाम आते ही उन्हें अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। पत्नी की मृत्यु के पहले उन्होंने कुछ समय असीसी में और सवोनारोला के गांव फ्लोरेन्स में बिताया था, और उनकी प्रिय पत्नी के सम्बन्ध में अद्वितीय भक्तिभावपूर्ण वाणी में उन्हें बोलते हुए सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे ऐसे व्यक्ति के पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसने इस बात को अनुभव कर लिया है कि मृत्यु का अर्थ अधिक गहरा जीवन ही है। उन्होंने कहा—"मृत्यु ने हमें जुदा नहीं कर दिया है। वह (पत्नी) मेरे अधिक निकट आ गई है। अपने जीवन में मैं प्रतिक्षण उसका प्रकाशमय सान्निध्य अनुभव करता हूं, और अब मैंने जो काम सिर पर लिया है, उसमें मैं निरन्तर उसके सहवास में रहूंगा।" और उनकी पत्नी ने मैंचेस्टर की २० हज़ार माताओं में जीवन भर जो काम किया, नासूर के दुःखद रोग को उन्होंने जिस शान्ति और अविचल धैर्य से सहन किया इसका और उनकी मृत्यु का अमर चित्र स्मृति में ताजा करते हुए डीन की बातों को मैं सुन रहा था और मन में अंग्रेजी गीत के इन शब्दों को गुनगुनाता जाता था—"O Death, where is thy sting? Where grave, thy victory?" (मृत्यु, कहां है तेरा डंक? क़ब्र कहां है तेरी विजय।)

दोनों छोर एक होंगे

उन्होंने जवानी के दिनों की भी याद की। जवानी में उन्होंने भारत जाने का विचार किया, तत्त्वज्ञान और उसके बाद ईश्वरवाद का अध्ययन किया; किन्तु उनके विचार बहुत आगे बढ़े हुए समझे गये, इसलिए उन्हें हिन्दुस्तान में पादरी बनाकर भेजना उचित न समझा गया। उन्होंने

कहा—"कई वार मेरे जी में आता है कि मैं सव कुछ छोड़ दूं, पूर्वीय देशों में जाकर रहूं और वहां के पीड़ितों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दूं, मेरी पत्नी तो जीवन के एक-एक क्षण उनके साथ रहती थी।" किन्तु विश्वासपात्र और प्रभावशाली सलाहकारों ने इसके विपरीत विचार किया। उन्होंने कहा कि मेरी उपस्थिति केण्टरवरी में आवश्यक है, क्योंकि यह अंग्रेज़ी-भाषाभाषी ईसाइयों का केन्द्रस्थान है, जहां कि मैं देश-देश के लोगों के साथ सम्वन्ध स्थापित कर सकूंगा, और यदि सम्भव हुआ तो जिन समस्याओं पर संसार के ध्यान की आवश्यकता है, उनके हल करने में कुछ सहायता दे सकूंगा। उन्होंने कहा—"गांधीजी की मुलाकात ऐसी ही है, और मेरा विश्वास है कि यदि गांधीजी यहां शान्ति अनुभव करेंगे, तो फिर यहां आवेंगे ही। अख़वारवाले पूछते हैं कि क्या गांधीजी गिर्जा में आये थे ? और वहां उन्होंने क्या किया ?" मैंने उनसे कहा कि वे मेरे साथ आये, उपासना में सम्मिलित हुए, भक्तिभावपूर्वक खड़े रहे और विधिपूर्वक उपासना की।" किन्तु मैंने उनसे कहा कि "तुम यह भी कह सकते हो कि गांधीजी हाथ में पुस्तक लेकर मेरी वैठक की सिगड़ी के सामने मानो घर ही में शान्ति से खड़े हैं, यह चित्र मैं सदैव हृदय में संजोये रखूंगा। कोई चित्रकार इसे चित्रित कर सके तो कितना अच्छा हो !"

"किन्तु मुझे पता नहीं कि मैंने जो कुछ कहा अख़वारवाले वह सव छापेंगे या नहीं। जो वातें मैंने नहीं कहीं हैं, ऐसी वातें जवतक वे मेरी कही हुई न वतावें, तवतक मुझे परवा नहीं है। उत्तरीय अख़वारवाले मेरे प्रति वड़ी सज्जनता का व्यवहार करते थे। यहां मैं नहीं जानता कि वे मेरे साथ कैसा वर्ताव करेंगे, किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे इस प्रसंग का लाभ लेकर उनके ज़रिये ब्रिटिश जनता को यह वता देना चाहिए कि यदि गोलमेज़-परिषद् असफल हुई तो मैं स्वयं दमन के शासन को सहन नहीं करूंगा—ब्रिटिश जनता अमृतसर की पुनरावृत्ति सहन नहीं कर सकती।"

अव फिर अमृतसर की पुनरावृत्ति नहीं

गांधीजी को क्राइस्ट चर्च केथेड्रल बताकर उन्होंने इस पुरातन स्थापत्य के एक-एक भाग का इतिहास बताते हुए, जिन घटनाओं में स्वतन्त्रता और सहिष्णुता के श्रेष्ठ गुणों का सच्चा मर्म प्रकट होता था, उन्हीं पर विशेष ज़ोर दिया। उन्होंने कहा—"थामस ए बेकेट ने वास्तव में स्वतन्त्रता के लिए प्राण दिये। उसने राजाओं की सत्ता के विरुद्ध बग़ावत की। इसीसे उसका नाम समस्त यूरोप में पूज्य है। वहां आगे, ठीक मध्य भाग में, एक पुराना गिर्जा है, जहां फ्रांस के अत्याचारों से भाग कर आये हुए फ्रांसीसी प्रेस्बीटेरियनों को शान्तिपूर्वक प्रार्थना करने की स्वतन्त्रता थी। वहां ह्यूबर्ट वाल्टर की कब्र है, जो क्रूसेड में शामिल हुआ, और तुर्क सुल्तान उसे बहुत नम्र प्रतीत हुआ। कब्र पर आप सुल्तान का सिर देखेंगे और यद्यपि दूसरे तीन-चार सिर बिगड़ अथवा मिट गये हैं, किन्तु मुझे खुशी है कि यह बाक़ी रह गया है।"

रात को वह ज़मीन पर बैठकर गांधीजी को चर्खा कातते हुए देखने लगे और कहा—"लोग कहते हैं कि गांधीजी मशीनों का तिरस्कार करते हैं, किन्तु यह तो ऐसा नाजुक यन्त्र है, जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा और मैं इसके सूत के बने कपड़े पहनना बहुत पसंद करूंगा।" अखबारवालों से तो उन्होंने पहले ही कह दिया था कि गांधीजी के मशीन (यन्त्र) सम्बन्धी विचारों के विषय में बड़ी ग़लतफ़हमी फैला दी गई है। मशीनों से मनुष्य को ग़ुलाम न बनाना चाहिए, यह एक बात है, और मशीनों से आदमियों को बेकार और दरिद्र नहीं बनाना चाहिए यह दूसरी। क्योंकि मशीनों से भारत के करोड़ों लोग दरिद्र हो गए हैं, इसीलिए गांधीजी उनसे फिर चर्खा सम्भालने के लिए कहते हैं।"

मनुष्य मशीन के लिए नहीं बना है ?

जब कि वह बातें कर रहे थे, एक बार उनका हृदय फिर चीन के विपत्ति-ग्रस्त लोगों की ओर खिंचा। उन्होंने कहा—"महात्माजी, मैं समझता हूं कि जब हम चीन को जायंगे, आपका आशीर्वाद हमें प्राप्त होगा।" डीन जो कुछ कहते हैं और करते हैं, उसमें उनकी सेवा-वृत्ति

प्रकट होती है और इस सेवा-वृत्ति का मूल उद्‌गम जितना इनकी ईश्वर के प्रति भक्ति है, कदाचित उतना ही उनकी सेवा-परायणा पत्नी के साथ के सुन्दर समागम के वर्षों में भी होगा। ऐसा मालूम होता है, मानो वह उनकी आत्मा के साथ ही रहते हों, विचरते हों और निरन्तर उनका सहवास अनुभव करते हों। छोटी-से-छोटी बात उन्हें पत्नी का स्मरण करा देती है। प्रातःकाल हमारे लिए चाय बनाते समय वह कहने लगे—"यहां मुझे रसोई-घर का पूर्ण परिचय नहीं। मैंचेस्टर के रसोई-घर का मुझे पूरा परिचय था, क्योंकि वहां अपनी बीमार पत्नी के लिए मैं रात को पांच या सात बार तक पकाता था।"

डीन में विनोदवृत्ति भी बहुत तीव्र है। उन्होंने कई बार अपनी ही, और इसी तरह डीनरी में जिन पुराने डीनों के चित्र टंगे हुए हैं उनकी, बातें करके हमें खूब हंसाया। किन्तु डीन का जो चित्र मैं सदैव अपने हृदय में संग्रह करके रखूंगा, वह है उनकी सदैव पीड़ित मानव-समाज का विचार करती हुई और इस प्रकार पत्नी का शाश्वत सहवास अनुभव करनेवाली उदार आत्मा।

७

'चचा गांधी'

किंगस्ली-हाल से लगा हुआ एक बाल-भवन है। जिस बच्चे ने गांधीजी को 'चचा गांधी' का प्यारा नाम दिया है वह उसीमें रहनेवाला एक तीन बरस का बच्चा है। जबसे बच्चों ने गांधीजी को देखा है तबसे वे रात-दिन उन्हीं का विचार करते हैं। "अम्मा! अब मुझे यह कह कि गांधी क्या खाते हैं और वे जूते क्यों नहीं पहनते?" और ऐसे कई प्रश्न पूछते हैं। एक दिन मां ने कहा—"नहीं, देखो, उन्हें गांधी नहीं, गांधीजी कहना चाहिए। तुम जानते हो कि गांधीजी बहुत भले हैं।" छोटे बच्चे ने अपनी भूल सुधारते हुए कहा—"अम्मा, मैं अफ़सोस करता हूं। अब मैं उन्हें 'चचा गांधी' कहूंगा।" ईश्वर की भी यही दशा हुई थी और उसे भी 'चचा ईश्वर' कहा जाता है। परन्तु वह कहानी मैं छोड़ दूंगा, क्योंकि उसका

मेरी इस कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब यह नाम चल पड़ा और उनके जन्म-दिन के उपलक्ष में छोटे बच्चों ने 'प्यारे चचा गांधी' को खिलौने और मिठाई की भेंट भेजी। और लिखा—"यह जन्म-दिन आपको मुबारिक हो ! क्या अपने जन्मदिन के रोज़ आप यहां आयेंगे ? हम बाजा बजायेंगे और गीत गायेंगे।"

परन्तु एक बच्चा है, जो इस बालभवन में नहीं रहता, अपने माता-पिता की देखभाल में पल रहा है। वह चार बरस की लड़की है और गांधीजी की एक सन्ध्या की मुलाकात का स्मरण ताज़ा बनाये रखने के लिए वह यों प्रयत्न करती है। गांधीजी के जन्मदिन के रोज़ उसके बाप ने गांधीजी से कहा—'आपसे मुझे एक शिकायत है।' गांधीजी ने हंसते हुए पूछा—'वह क्या है ?' "मेरी छोटी जेन रोज़ सुबह मेरे पास आती है, मुझे मारती है, जगाती है और कहती है, अब तुम उलटकर मत मारना, क्योंकि उस दिन गांधीजी ने हम लोगों से कहा था कि कोई मारे तो उलट कर कभी मत मारो।" कई दूसरे बच्चों के भी माता-पिता प्रेमपूर्वक शिकायत करते हैं कि वे उन्हें बड़ी तकलीफ़ देते हैं। जब गांधीजी सुबह टहलने जाते हैं तब उन्हें नमस्कार करने के लिए जल्दी जगाने का आग्रह करते हैं और जो माता-पिता जल्दी उठने के आदी नहीं हैं उन्हें जल्दी उठने में और बच्चों को जगाने में बड़ी कठिनाई होती है। शायद ये बच्चे भविष्य में जब बड़े होंगे तब बड़े बाग़ी निकलेंगे और माता-पिता यदि समय के साथ आगे न बढ़े तो उनको उनसे ज़रूर कष्ट का अनुभव होगा। इन बच्चों ने जो बातें ग्रहण की हैं उसीसे साबित होगा कि मैं खाली विचारतरंग ही नहीं वरन् वस्तुस्थिति लिख रहा हूं।

उदाहरण के तौर पर एक छोटी लड़की ने गांधीजी के जन्म-दिन पर एक निबन्ध लिखा है वह देता हूं। उसकी उम्र तो भूल गया हूं, परन्तु मैं यह जानता हूं कि वह दस बरस से छोटी है। निबन्ध यह है :—

"असीसी का संत फ्रांसिस असीसी का छोटा ग़रीब आदमी गिना

जाता था। वह सब तरह से गांधीजी-जैसा ही था।

"वे दोनों ही कुदरत को, जैसे कि बच्चे, चिड़ियों और फूलों को चाहते हैं, चाहते थे। गांधीजी कच्छ पहनते हैं उसी तरह संत फ्रांसिस भी, जब इस पृथ्वी पर थे, कच्छ पहनते थे।

"गांधी और संत फ्रांसिस धनवान व्यापारी के पुत्र थे। एक रात को जब संत फ्रांसिस अपने अनुयायियों के साथ दावत में थे उन्हें इटली के ग़रीबों का खयाल हुआ। वह बाहर दौड़ गये, अपने कीमती कपड़ों का उन्होंने त्याग किया, अपना धन ग़रीबों को दे डाला और गांधी जैसे पुराने कपड़े पहन लिये।

"संत फ्रांसिस ने कुछ अनुयायी अपने साथ लिये। उन्होंने वृक्षों की झोंपड़ियां बनाई। गांधीजी ने भी यही बात की। उन्होंने अपना धनी वैभवशाली जीवन ग़रीब भारतीय लोगों पर न्यौछावर कर दिया।

"गांधीजी के लोगों ने उन्हें लन्दन आने के लिए कपड़ा दिया। जैसा कि हम बच्चों को, जो किंगस्ली-हाल को जाते हैं, उन्होंने कहा, उनके पास उसे खरीदने के लिए काफ़ी पैसा नहीं है।

'वह सोमवार के दिन मौन रखते हैं, क्योंकि यह उनका धर्म है। गांधीजी को उनके जन्मदिन के उपलक्ष में खिलौने, मोमबत्तियां और मिठाई की भेंट मिली है। वह बकरी का दूध, मूंगफली और फल खाकर रहते हैं।"

एक दूसरा निबन्ध है, जो एक दस बरस के लड़के ने लिखा है। उसे ज्यों-का-त्यों यहां देता हूं—

"गांधीजी एक भारतीय हैं जिन्होंने १८९० में लंदन में कानून की शिक्षा पाई। उन्होंने अपने देश की स्थिति सुधारने के लिए यह (वकालत) छोड़ दी।

"वह गोलमेज़-परिषद् में भारत के व्यापार के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न करने को आये हैं। ब्राह्मण लोग अस्पृश्यों को अपने मंदिरों में आने दें, इसके लिए वह प्रयत्न कर रहे हैं। वे करीब ६०,००,००० के हैं और

वह नहीं जानते कि अच्छा खाना क्या है ? गांधीजी ने अपनी तमाम सम्पत्ति का त्याग किया है और ग़रीव-से-ग़रीव भारतीयों में से एक वनने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि वह कच्छ पहनते हैं।

"उनकी खुराक वकरी का दूध, फल और शाक-भाजी है। वह मांस और मछली नहीं खाते, क्योंकि वह जीवहिंसा के विरुद्ध हैं। गांधीजी एक ईसाई भारतीय हैं।

"गांधीजी अपनी रुई आप कातते हैं। वह इंग्लैण्ड में प्रतिदिन एक घण्टा कातते हैं और जव अस्पताल में थे तव भी कातते थे। लंकाशायर में रुई की मिलों में जाकर वह अभी ही लौटे हैं।

"वह रविवार की सन्ध्या के ७ वजे से सोमवार की सन्ध्या के ७ वजे तक प्रार्थना करते हैं और यदि तुम उनसे वोलो भी तो वह जवाव नहीं देते। जव वह मुलाकात करते-करते आये तो मेरे घर भी आये। उस वक्त मेरी मां कपड़े पर इस्तरी कर रही थी। परन्तु उन्होंने कहा; 'काम वन्द मत करो, क्योंकि मुझे भी यह काम करना पड़ा है।' मैंने उनसे हाथ मिलाया था। 'हल्लो', और 'गुडवाय', का हिन्दुस्तानी शव्द 'नमस्कार', है।

डव्लू. ए. आई. सेविली, २१ ईगलिन रोड,
वाऊ, लन्दन, ई०-३, ३०-९-३१।

कुछ पत्रकार जो चौंकानेवाली कहानियां गढ़ डालते हैं और मन-चाहा ऊटपटांग लिख डालते हैं, उसके सामने यह कैसा सच्चा और अमूल्य है !

मुझे यह कहना चाहिए कि उनके शिक्षक उन्हें जो सिखाते हैं और गांधीजी के सम्वन्ध से वे जो-कुछ सीखते हैं उसका यह परिणाम है।

इसके विलकुल विपरीत, लन्दन से ४० मील दूर एक गांव की शाला का, जहां मैं श्री व्रेलसफ़र्ड के साथ गया था, यह चित्र है। मैंने

हब्शी और हमारा झण्डा

वहां के विद्यार्थियों से पूछा—"मैं जिस देश से आया हूं उस देश का नाम लो।" कुछ क्षण चुप्पी रही, परन्तु आखिर को शिक्षक की पांच साल की लड़की

ने कहा—"हवशी के मुल्क से।" उसके पास बैठे हुए उससे कुछ बड़े लड़के को यह सुनकर आघात पहुंचा, उसने उसके कान में कहा, "यह काला नहीं है, यह तो हिन्दुस्तानी है।"

एक दूसरे वर्ग में ब्रेल्सफ़र्ड ने नक्शे में हिन्दुस्तान बताने के लिए कहा। उन्होंने हिन्दुस्तान ठीक बताया, परन्तु शिक्षक ने फ़ौरन ही उनके ज्ञान में वृद्धि की, "यह देश हमारे झण्डे के नीचे है और यह सज्जन अपने लोगों के लिए हक मांगने आये हैं।" उन बेचारों ने गांधी का नाम नहीं सुना था, परन्तु बाद में मैंने यह जान लिया कि जिस लड़के ने उस लड़की के कान में कहा था और उसकी भूल सुधारी थी वह एक मज़दूर स्त्री का लड़का है। वह अखबार पढ़ती है और उसे गांधीजी के प्रति बड़ा आदर है।

बाल-भवन का जो चित्र मैंने दिया है वह उस गृह के अधिकारियों के लिए प्रशंसासूचक है और भावी पीढ़ी का नमूना है। गांधीजी इंग्लैण्ड का किनारा छोड़ेंगे, उसके पहले वहां के हज़ारों लड़के उनको देख सकेंगे और किसे मालूम कि इसी पीढ़ी के साथ हमें हमारा हिसाब साफ़ करना हो। आज के लोगों की बनिस्बत, जो उन अखबारों पर पले हैं जो भारत के लिए एक भी अच्छा शब्द नहीं लिखते बल्कि असत्य और बुराई ही करते हैं, यह पीढ़ी कहीं अच्छी और न्यायी होगी।

८

एच० एन० ब्रेल्सफ़र्ड

ब्रेल्स०—जब आप नमक-कर को उठा देंगे, तब इससे आमदनी में हुई घटी को पूरा करने के लिए क्या उपाय करेंगे?

गां०—नमक-कर तो एक मामूली बात है; वास्तव में मुख्य प्रश्न तो ताड़ी और अफ़ीम की ज़कात का है। वस्तुतः यह आय का एक बड़ा अंश है। इस गढ़े को पूरा करने का कोई उपाय नहीं है, यदि हम सेना के व्यय में कमी न करें। व्यय-रूपी यह सैनिक राक्षस ही हमारा गला घोटकर हमें मारे डाल रहा है। इस भयंकर अर्थ-प्रवाह का अन्त

अवश्य ही होना चाहिए।

ग्रे०—मैं ख़याल करता हूं कि गोलमेज़-परिषद् का यह मुख्य विषय होगा।

गां०—अवश्य ही यह उसका मुख्य विषय होगा। हम इसे छोड़ नहीं सकते।

कलाकार—तब क्या आप गोरी सेना को निकाल बाहर करना चाहते हैं?

गां०—अवश्य ही मैं उसे हटा देना चाहता हूं।

ग्रे०—क्या आप सेना के साथ मुल्की अफ़सरों (सिविलियन्स) को भी शामिल करते हैं?

गां०—हमें जो बोझ उठाना पड़ता है, वे उसके भाग हैं। उन्होंने शासन को अत्यधिक ख़र्चीला बना रखा है। वे जो बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लेते हैं, उनका कोई औचित्य नहीं है। यहां, इंग्लैण्ड में उनकी श्रेणी के लोग जिस तरह रहते हैं, वे उससे कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर रहते हैं।

ऊंची तनख्वाह

ग्रे०—इन बड़ी-बड़ी तनख्वाहों के बारे में साधारणतः जो कारण दिये जाते हैं, क्या उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता? इन सिविलियन्स को अपने घर से दूर निर्वासन में और अत्यन्त विपरीत जलवायु में रहना पड़ता है।

गां०—अब यह बात नहीं है। आवागमन की सुन्दर सुविधाओं ने इस सारी स्थिति को बदल दिया है। सप्ताह में दो बार डाक आती-जाती है; इससे वे अपने देश में कुटुम्बी-जनों से बराबर संसर्ग बनाये रख सकते हैं; और गर्मी के मौसम में वे पहाड़ों पर जाते हैं। हम इन लोगों का स्वागत करेंगे, यदि यह हमारे बीच हिन्दुस्तानियों की तरह रहना पसन्द करें। लेकिन वे स्वयं अकेले ही पड़ते हैं—स्वयं हम लोगों से अलग रहते हैं। वे अपने आपको अपनी छावनियों में बन्द कर रखते हैं। छावनी शब्द स्वयं सैनिकता का परिचायक है और अवश्य ही अभी तक ये छावनियां

फ़ौजी कानून के अन्तर्गत हैं। उनमें के किसी भी मकान के लिए यदि सेना कहे कि हमें उसकी आवश्यकता है, तो उसपर कब्ज़ा किया जा सकता है। हमारे एक आपसी मित्र ने यद्यपि अपने लिए मकान बनवाया था, किन्तु उनके साथ ऐसा ही बर्ताव हुआ।

ब्रे०—सेना के सम्बन्ध में दो जुदे-जुदे प्रश्न हैं, अथवा एक ही प्रश्न की दो शाखाएं हैं। एक प्रश्न है सिद्धान्त का, अर्थात् सेना पर भारत का अधिकार अथवा नियन्त्रण; और एक प्रश्न है आर्थिक, जो सेना में कमी करके पूरा किया जा सकता है। क्या आप दोनों पर ज़ोर देंगे ?

गां०—अवश्य ही मैं यह देखूंगा कि अपनी सेना पर हमारा अधिकार हो।

ब्रे०—कोई भी राष्ट्र पूर्णतः राष्ट्र नहीं है, यदि अपनी सेना पर उसका अधिकार न हो।

गां०—सरकार मुझसे कहती है कि पठानों से अपनी रक्षा करने के लिए मुझे यह सेना रखनी ही चाहिए; लेकिन मैं उसका संरक्षण नहीं चाहता। मैं अपना तरीका अख्तियार करने की आज़ादी चाहता हूं।

सेना

मैं चाहूं तो उनसे लड़ने का या चाहूं तो उन्हें मनाने का निश्चय करूं। लेकिन मैं यह सब कुछ स्वयं अपनी इच्छानुसार करने की आज़ादी चाहता हूं। कुछ समय के लिए हम भारत में कुछ गोरी सेना रखने के लिए रज़ामन्द हो सकते हैं; किन्तु सरकार हमसे कहती है कि गोरे लोग हिन्दुस्तानी-हुकूमत के मातहत तबदील नहीं किये जा सकते।

ब्रे०—बिना उनकी सम्मति के वे तबदील नहीं किये जा सकते; (गांन्धीजी सिर हिलाते हैं) लेकिन मैं खयाल करता हूं कि संतोषजनक स्थिति में, उनमें से बहुत से भारतीय सेना में भर्ती होने पर रज़ामंद हो जायंगे।

गांधीजी (प्रसन्नतापूर्वक)—हां, समस्या का यह हल हो सकता है; किन्तु जब सेना घटाई जायगी तो मुझे भय है कि इससे आपके बेकारों की संख्या में और वृद्धि होगी।

ब्रे०—तब, यदि सेना पर भारत के अधिकार का सिद्धान्त स्वीकार

कर लिया जाय तो क्या आप कुछ वर्षों के लिए जितनी घटाई हुई गोरी सेना रखना पसन्द करेंगे, उसकी संख्या और खर्च के बारे में शर्तें तै करने पर रज़ामन्द होंगे ?

गां०—हां, इस तरह की किसी भी बात पर रज़ामन्द हो सकते हैं, बशर्ते कि वह बात भारत के हित में हो।

ब्रे०—मैं समझता हूं कि आपकी अपेक्षा अधिकतर हमारे हित में होगी।

गांधीजी (हंसते हुए)—फिर भी, हम उसपर रज़ामन्द हो जायंगे।

ब्रे०—यह अधिकार का सिद्धान्त ही कठिनाई पैदा कर रहा है। मैं नहीं समझता कि आपको वह अधिकार मिल जायगा। सेना की कमी का दूसरा प्रश्न है; एक हद तक आपको वह मिल जायगा। इस समय हम निःशस्त्रीकरण परिषद् में जा रहे हैं। संसार के निःशस्त्रीकरण में हमारे हिस्से का यह भाग हो सकता है।

गां०—मैंने बता दिया है कि मैं क्या चाहता हूं। मेरी शर्तें प्रकट हैं। किन्तु सरकार पर्दे में कार्रवाई कर रही है मानो वह यह बताने से डरती है कि वह क्या देना चाहती है। किन्तु मैं प्रतीक्षा करने के लिए सर्वदा तैयार हूं।

ब्रे०—जब कि हम अपनी आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए हैं, वार्तो का मन्दगति से तय होना अवश्यम्भावी है। किन्तु वह भी एक लाभ हो सकता है।

कलाकार—मैं सिर्फ एक बाहरी आदमी हूं, लेकिन मैं जानना चाहता हूं कि क्या इसमें एक दूसरी और कठिनाई नहीं है? क्या देशी नरेश आपके मार्ग के निकृष्टतम रोड़े नहीं हैं ?

गां०—देशी नरेश भारतीय पोशाक में ब्रिटिश अफ़सर हैं। एक नरेश

देशी नरेश

उसी स्थिति में है, जिसमें कि एक ब्रिटिश अफ़सर। उसे आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

ब्रे०—तब क्या आप नरेशों को वाइसराय के नियन्त्रण में छोड़

सकते हैं ?

गां०—हमें वह नियन्त्रण भारतीय सरकार के लिए प्राप्त करना ही चाहिए।

ब्रे०—लेकिन क्या वे वाइसराय के अन्तर्गत रहना अधिक पसन्द नहीं करते ?

गां०—उनमें से किसीसे भी पूछिए और वे यही कहेंगे। किन्तु क्या यह सम्भव है कि वे दिल में इससे सन्तुष्ट होंगे ? कुछ भी हो आखिर में वे हमारे ही वर्ग के हैं। वे भारतीय हैं।

ब्रे०—किन्तु वर्तमान व्यवस्था में उन्हें कुछ लाभ मिलता है, जो आप हर्गिज़ नहीं होने दे सकते। नौकरशाही उनसे शिष्टता और शुद्ध राजकीय व्यवहार का ज़बरदस्ती पालन करवाती है; किन्तु वह उनको अपनी प्रजा के साथ मनमाना वर्ताव करने के लिए काफ़ी अधिक खुला छोड़ देती है।

गां०—इसके लिए 'शिष्टता' शब्द ठीक नहीं है। इसकी अपेक्षा यह कहिए 'क्षुद्र पारतन्त्र्य' अर्थात् नीच गुलामी। उनमें एक भी अपनी आत्मा को अपनी नहीं कह सकता। निज़ाम कुछ कल्पना या उपाय सोच सकते हैं। किन्तु वाइसराय का क्रोध से भरा एक पत्र उन्हें ठंडा कर देने के लिए काफ़ी है। लार्ड रीडिंग के शासन-काल में जो कुछ हुआ वह आप जानते ही हैं।

ब्रे०—अधिकार अथवा नियन्त्रण के इस प्रश्न के अलावा, यदि संघ व्यवस्थापक सभा के सदस्यों में ४० प्रतिशत सदस्य देशी नरेशों द्वारा निर्वाचित हों, तो क्या आपके 'लाखों' अध-भूखों के हित की कोई व्यवस्था हो सकने की आशा है ?

गां०—जिस तरह हम आपसे निपटेंगे, उसी तरह हम उनसे (देशी नरेशों से) भी निपट लेंगे। वल्कि उनसे निपटना कहीं अधिक आसान होगा।

ब्रे०—मेरा खयाल है कि उनका जवाव कहीं अधिक पाशविक

होगा। हमने तो लाठी का ही इस्तेमाल किया है; किन्तु वे बन्दूक का इस्तेमाल करेंगे।

गां०—यह आपका जातीय अभिमान है। यह ठीक है, इसके लिए मैं आपकी सराहना करता हूं। हम सबको यह अभिमान होना चाहिए। किन्तु आप इस बात को अनुभव नहीं करते कि भारत में ब्रिटिश शक्ति प्रतिष्ठा पर कितनी निर्भर रहती है। भारतीय इससे सम्मोहित हो गए हैं। आप एक बहादुर जाति हैं और आपकी प्रतिष्ठा आपको हम-पर धाक जमाने में समर्थ बना देती है। यही बात मैंने दक्षिण अफ्रीका में देखी है। जुलू एक लड़ाकू जाति है, लेकिन फिर भी एक जुलू रिवाल्वर को देखते ही, चाहे वह खाली ही क्यों न हो, कांपने लग जायगा। यदि नरेशों से हमारा झगड़ा हो तो उन्हें आपकी प्रतिष्ठा का लाभ न पहुंचेगा। यदि हमारे लोगों को मराठा फ़ौज का मुकाबला करना पड़े तो हम अपने आपको कहेंगे—"हम भी मराठे हैं।" दक्षिण अफ्रीका की चर्चा करते हुए मुझे देशी नरेशों के साथ के सम्बन्ध में हम जो परिवर्तन करना चाहते हैं, इसके लिए एक उदाहरण याद आ गया। स्वाज़ीलैंड पर पार्लमेण्ट का नियंत्रण रहा करता था; किन्तु जब यूनियन का निर्माण हुआ तो वह नियंत्रण उसके हाथों सौंप दिया गया। इसी पर हमारी यह दलील है कि नरेशों को भारतीय शासन के नियंत्रण में सौंप दिया जाय।

९

लोहे की भूमि में

वुडब्रुक उपनिवेश एक ऐसा स्थान है, जहां श्री अलेक्ज़ेण्डर जो उन खतरनाक दिनों में, सदा उनकी सहायता पर आश्रित अपंग पत्नी को छोड़कर गत वर्ष भारत पधारे थे, श्री जेक हाईलैंड जिन्होंने भारत में आचार्य-पद पर कार्य करते समय तथा वुडब्रुक में १५ राष्ट्रों के विद्यार्थियों को पढ़ाते समय भारत का सच्चा ज्ञान प्रचारित किया है, तथा श्री एस. जी. वुड, जो यहां के शिक्षक संचालक हैं, आदि क्वेकर मित्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय,

शान्ति, मित्रता तथा वन्धुत्व की सृष्टि तथा विकास किया जाता है। उपार्जित धन के संग्रह और उसके उपयोग को मनुष्य-जाति के हित की दृष्टि से नियंत्रण करने के लिए वुडब्रुक जहां उदाहरणस्वरूप है तहां यह तीर्थस्थान भी है। इसका काम मि. केडवरी के, जो अपने चाकलेट के कारण प्रसिद्ध है, दान से चलता है। यह आश्रम उसी घर में है जहां मि. केडवरी रहते थे और जहां उनके पुत्र वार्डन के पद पर हैं। गांधीजी का यहां कैसा प्रेमपूर्ण स्वागत हुआ, इसका अन्दाज़ श्री वुड के उस पत्र से लगता है, जो उन्होंने उस शाम की अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए गांधीजी को लिखा था। वह लिखते हैं—

"एक पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के कारण वुडब्रुक के आज—रविवार के तीसरे पहर के इस सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण न कर सकने के कारण 'फ्रांसीसियों के शब्दों में' मैं अपनेको उजड़ा हुआ-सा पाता हूं, क्योंकि आज मैं वर्रमिघम निवासी आपके अनेक मित्रों और प्रशंसकों की ओर से आपका स्वागत करने के सुयोग से वंचित हो गया हूं।

"इंग्लैण्ड के वहुत-से लोग आपको नहीं समझते और जब कि हम आपको समझते हैं, या जिनकी धारणा है कि समझते हैं, तो सदा आपके अनुगामी होने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं, परन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि जिसने भारत के इतिहास के इस कठिन समय और संसार की इस विषम अवस्था में आप-जैसा नैतिक शक्ति-सम्पन्न पैग़म्वर पैदा किया है। आपपर इस समय जो ज़िम्मेदारी है, हम कुछ अंशों में उसे समझते हैं, और अपने इस महान कार्य के लिए आपको जिस शक्ति की आवश्यकता है, यदि आपको वुडब्रुक-संघ में एक दिन शान्ति का विताने से उस शक्ति के क़ायम रखने में मदद मिलती हो तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हमारी अभिलाषा है कि जिस परिषद् में आप इतना परिश्रम कर रहे हैं, उसमें भारत और इंग्लैण्ड तथा हिन्दू और मुसलमानों के वीच ऐसा समझौता हो जाय कि जिससे भारतीय राष्ट्रवाद के उचित आदर्शों की पूर्ति हो सके।

"हमें ऐसे समझौते की आशा इसलिए भी है कि इससे आपकी किसानों के मनुष्यत्व के उत्थान की अभिलाषा की पूर्ति होगी । हमें आपके जीवन और कार्य से यह ज़बरदस्त चेतावनी मिली है, जिसकी हमें आवश्यकता थी और जिसके लिए हम अपूर्ण रूप से तैयार हैं, और जिससे हमें बार-बार श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह प्रार्थना याद आती है—"हे ईश्वर, हमें इतना बल दे कि हम ग़रीबों की कभी अवहेलना न करें।"

वास्तव में इस संस्था के आजीवन सदस्यों के जीवन और विचार कवि रवीन्द्र की उपर्युक्त प्रार्थना के अनुरूप ही हैं ।

वर्मिंघम के विशप को विज्ञान और धर्म एकसाथ दोनों के आचार्य होने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त है । वह रॉयल सोसायटी के सदस्य भी हैं । कालेज में वह श्री मॉण्टेगू के सहपाठी थे और जब कि श्री मॉण्टेगू ने अपने भारत-सचिव होने की महत्त्वाकांक्षा पूरी की, उनसे काफी परिचय होने के कारण विशप भारत तथा उसकी समस्याओं के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान रखते हैं । व्यक्तियों और वस्तुओं के सम्बन्ध में उनके अपने अलग विचार हैं, किन्तु वैज्ञानिक मस्तिष्कवालों की तरह उनमें जिज्ञासु-भाव अवश्य हैं, और वह अपने विचार निःसंकोच प्रकट करने का साहस रखते हैं । एक बार किसी बात पर उन जैसों का विश्वास दृढ़ हो जाय तो वह फिर उसके बड़े जबरदस्त समर्थक अर्थात् हिमायती हो जाते हैं। भारत के विषय में गांधीजी की उनसे बड़ी देर तक बातें होती रहीं। उन बातों में क्या हुआ, यह तो मैं नहीं बताऊंगा और न बताना उचित ही है; किन्तु एक-दो मनोरंजक चुटकलों का जिक्र कर देना चाहता हूं । वैज्ञानिक विशप ने विज्ञान और मशीनों का बड़े जोरों से समर्थन किया और कहा कि जब इनके अर्थात् विज्ञान और मशीनों के द्वारा मनुष्य को शारीरिक परिश्रम से अवकाश मिल जायगा तो वह अपना सम्पूर्ण अथवा अधिकांश समय मानसिक श्रम को दे सकेगा । परन्तु गांधीजी ने "निठल्ले पुरुष के सिर पर शैतान सवार रहता है" इस पुरानी कहावत

की याद दिलाते हुए कहा कि मुझे विश्वास नहीं है कि मनुष्य अपना अवकाश का समय लाभदायक बातों के चिन्तन में व्यतीत करेगा। इस-पर विशप ने कहा—"देखिए, मैं दिन भर में मुश्किल से एक घण्टा काम करता हूं, बाकी सब समय मानसिक चिन्तन में बीतता है।" गांधीजी ने इसके उत्तर में हंसते हुए कहा कि "यदि सब मनुष्य विशप हो जायं तो विशपों का धन्धा ही जाता रहेगा।"

डा. पारधी और उनकी धर्मपत्नी ने वर्रामंघम के सब भारतीयों को गांधीजी से मिलने के लिए अपने घर पर निमन्त्रित किया था, वहां हमने करीब एक घंटा बिताया। डा. पारधी प्रायः तीस वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड आये और अपने निर्वाह के लिए परिश्रम करते हुए भी एफ. आर. सी. एस. की परीक्षा पास की और केवल अपने परिश्रम और गुणों के बल पर शल्य-चिकित्सा अर्थात् सर्जरी में इतना नाम उन्होंने कमाया है। उनकी धर्मपत्नी एक अंग्रेज़ महिला हैं और वह वहां रहकर भी भारत के विषय में दिलचस्पी रख कर कुछ-न-कुछ सेवा करने में प्रयत्नशील रहती हैं। वहां मित्रों के संदेश देने के आग्रह पर गांधीजी ने एक ही वाक्य में कहा—"आप इंग्लैण्ड में रहनेवाले मुट्ठी भर भारतीयों पर भारत की गौरव-रक्षा का भार है, अतः आप सतर्क रहकर कार्य करें।" इसपर उपस्थित सज्जनों में से एकने पूछा कि हम भारत की सेवा किस तरह कर सकते हैं ? उत्तर में गांधीजी ने कहा—"आप अपनी बुद्धि और चातुर्य को पैसा कमाने में लगाने के बजाय देश की सेवा में लगावें। यदि आप चिकित्सक हैं तो भारत में रोगों की कमी नहीं है। यदि आप वकील हैं तो भारत में विरोध और झगड़े निपटाने का बहुत अवसर है; आप झगड़े बढ़ाने के बजाय मौजूदा झगड़ों को ही निपटाइए और मुकद्दमेबाजी को बंद करवाइए। यदि आप इंजीनियर हैं तो आप अपने देशवासियों की आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार आरोग्यप्रद और स्वच्छ हवादार नमूने के मकान बनाइए। वास्तव में जो कुछ ज्ञान आपने यहां प्राप्त किया है, यह सब देश के हित में

चार आना रोज़

लगाया जा सकता है।" जिस मित्र ने उक्त प्रश्न किया था वह चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट अथवा हिसावनवीस हैं, अतः गांधीजी ने उनके सामने श्री कुमारप्पा का उदाहरण पेश करते हुए कहा—"श्री कुमारप्पा, आप ही की तरह, एकाउण्टेण्ट हैं; वह जो काम कर रहे हैं, वही आप भी कीजिए। भारत में कांग्रेस और उससे सम्वन्धित संस्थाओं के आय-व्यय निरीक्षण के लिए सुयोग्य एकाउण्टेण्टों की नितान्त आवश्यकता है। आप भारत में आइए, मैं वहां आपको काफ़ी काम वताऊंगा और प्रतिदिन चार आने के हिसाव से, जो करोड़ों भारतीयों की आय से अधिक है, आपको फ़ीस दिलाऊंगा।"

भारतीय मित्रों को वर्त्तमान से अधिक भविष्य की चिन्ता थी और गांधीजी ने इस सम्वन्ध में उनसे कहा—

"हमें खेद है, 'जो वात हमें वहुत समय पहले कर देनी चाहिए थी, वह हमने नहीं की।' *अंग्रेज़ों से ये शब्द कहलवाने के पहले भारत* को और भी कष्ट की आग में से गुज़रना होगा। कोई भी वलवान राष्ट्र जितनी हम कल्पना करते हैं उतनी आसानी से झुकने के लिए तैयार नहीं होता। और अहिंसा के सिद्धान्त से वंधे होने के कारण, मैं इंग्लैण्ड को उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिए वाध्य भी नहीं करूंगा। पूर्व इसके कि इंग्लैण्ड वस्तुतः अधिकार त्याग करे, यह आवश्यक है कि उसे यह निश्चय हो जाय कि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करे और इंग्लैण्ड इसके लिए झुके इसीमें उसका हित है।"

श्रीमती पारधी ने कहा—"क्या आप यह खयाल नहीं करते कि इंग्लैंड को यह निश्चय कराने के लिए आपको कुछ समय यहां रहना चाहिए?"

गांधीजी ने कहा—"नहीं, मैं नियत समय से अधिक नहीं ठहर सकता। यदि मैं अधिक समय तक ठहरूं तो यहां मेरा कुछ भी असर न रहेगा और लोग इधर तवज्जो भी कम देने लगेंगे। अभी मेरा जो असर होता है, वह केवल तात्कालिक है, स्थायी नहीं। मेरा स्थान तो भारत में अपने देशवासियों के वीच है और सम्भव है उन्हें एक वार

फिर कष्ट-सहन का संग्राम करना पड़े। वस्तुतः अंग्रेज इस वात को जानते हैं कि मैं एक पीड़ित जनता का प्रतिनिधि हूं और इसीसे वे मेरी वातों पर ध्यान देते दिखाई देते हैं; और जव मैं भारत में अपने देशवासियों के साथ कष्ट सहता होऊंगा, तव वहां से मैं जो-कुछ कहूंगा, वह ऐसा होगा जैसे हृदय-से-हृदय की वात होती हो।

श्री डोल्फ़ स्टेनर के वाल-सुधारक शिक्षणालय की मुलाकात का वर्णन भी मैं यहां अवश्य करूंगा। रुडोल्फ़ स्टेनर का तो सन् १९२५ में ही देहान्त हो चुका है, किन्तु उनके शिष्य उनकी संस्था को चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

सुधारक शिक्षणालय

उनका उद्देश्य मानव-हृदय का अधिक गहन और सच्चा अध्ययन करने तथा संसार के विकास में अपने हिस्से का योग देने के प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति समझने और उसका आदर करने का था। शिलर ने जिसे 'मानव-समाज की प्राकृतिक सौन्दर्य-वृत्ति की शिक्षा' कहा है, उसका उन्होंने अनुकरण किया है। उसमें विज्ञान की अनेक शाखाओं का समावेश होता है, और भौतिक शक्तियों तथा खगोल-विद्या के नियमों के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति का सुधार भी उसका अंग है। हमें तो यहां उनके शिक्षा-सम्वन्धी कुछ प्रयोगों की ही चर्चा करनी है। दिमागी और नैतिक त्रुटियों के कारण समाज जिन वच्चों को आमतौर पर असाध्य कहकर छोड़ देता है, उन्हें इस स्कूल में लिया जाता है। वरमिंघम के इस सनफील्ड स्कूल में हमने एक ऐसे वालक को देखा, जो मोटर की भयंकर टक्कर लगने से केवल अपंग ही नहीं हो गया था वरन् जिसकी मस्तिष्क-शक्ति भी नष्ट हो चुकी थी। यह सुधारक शिक्षा वच्चे की प्राकृतिक सौन्दर्य को ग्रहण करने और समझने की शक्ति के अध्ययन और विकास द्वारा—जैसे वच्चे पर सूर्य, चन्द्र और तारागण, प्राकृतिक छटा, चित्रकारी और संगीत का, जो उसके जीवन के ढालने में सहायक होते हैं, क्या असर पड़ता है यह जानकर—दी जाती है। सवसे वड़ी वात तो यहां का प्रेमपूर्ण व्यवहार है, जो सवसे वड़ा सुधारक है और

जिससे कमज़ोर, अस्थिर-बुद्धि, अंगहीन और अन्य दोषयुक्त बालकों के हृदय पर गहरा असर पड़ता है। हमने उन्हें लेटिन, ग्रीक और जर्मन गीत गाते सुना (जिससे मुझे वेदोच्चार का स्मरण हो आया); वे इसमें काफ़ी कुशलता प्राप्त कर चुके हैं। वे वहां दुःखपूर्ण और उन्मादी जीवन व्यतीत करने के वजाय बड़े आनन्दपूर्वक कौटुम्बिक जीवन का सुख उठाते हैं। यदि हमें उनके विषय में पूर्ण ज्ञान न होता तो हम यह कदापि न पहचान पाते कि ये हीन-अंग बालक हैं। शाम को गांधीजी के आगमन के उपलक्ष में उनके खेल हुए, किन्तु उन्हें हम देख न सके। दुर्भाग्य से समयाभाव के कारण इस संस्था का हमारा अध्ययन सीमित ही रहा; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संस्था का भविष्य उज्ज्वल है और यह स्थान मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षकों के अध्ययन करने योग्य है।

अँग्रेज जनता का कर्तव्य

वुडब्रुक हाल में जो वृहद् सभा हुई, उसमें अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि आये थे। गांधीजी ने अपने भाषण में कहा—"अन्य स्थानों पर तो मैं कार्यवश और अपना संदेश सुनाने गया हूं; परन्तु यहां मैं तीर्थयात्रा समझकर आया हूं—तीर्थ-यात्रा इसलिए कि इसी संस्था ने हमारे संकट के समय श्री होरेस एलेग्जेंडर-जैसे सुहृद्वर को हमारे पास भेजा था। वह ऐसा समय था कि जब सत्याग्रह के समाचार सरकार द्वारा रोक लिये जाने के कारण वाहर नहीं पहुंच सकते थे और मुख्य-मुख्य सब नेता जेलों में वन्द थे। ऐसे कठिन समय में क्वेकर मित्रों ने भारत में अपना प्रतिनिधि भेजना निश्चित किया और श्री एलेग्ज़ेंडर को इस कार्य के लिए चुना। केवल आपने ही नहीं किन्तु उनकी चिर-रोगिणी स्त्री ने भी उनको सहज में ही अवकाश दे दिया। इससे आप समझ सकते हैं कि यह स्थान मेरे लिए तीर्थ-यात्रा क्यों है।

"अपने कार्य के विषय में चर्चा करके मैं आपका समय नहीं लेना चाहता। अधिकांश में लोग अव यह अवश्य जान गये हैं कि राष्ट्रीय महासभा—कांग्रेस—की देश के लिए क्या मांग है। अपनी स्वतन्त्रता-

प्राप्ति के लिए कदाचित इतिहास में पहली ही वार हमने जिस साधन का उपयोग किया है, वह आप जानते हैं। साथ ही आप यह भी जानते हैं कि गत वर्ष जनता ने उस साधन को कहां तक निभाया। मैं आपसे यह वात ज़ोर देकर कहना चाहता हूं कि यदि गोलमेज़-परिषद् के वर्तमान चालू काम को सफल करना हो तो वह वुद्धिशाली लोकमत का दवाव पड़ने पर ही हो सकता है। मैंने अक्सर यह कहा है कि मेरा असली काम परिषद् में नहीं उससे वाहर है। अपने कुछ सार्वजनिक भाषणों में मैंने विना किसी संकोच के कहा है कि परिषद् में कुछ भी काम नहीं हो रहा है, वह व्यर्थ ही समय विता रही है और जो लोग हिन्दुस्तान से आये हुए हैं उनका और साथ ही परिषद् के अंग्रेज़ प्रतिनिधियों का वहुमूल्य समय वरवाद किया जा रहा है। मेरी यह राय होने से, भारतवासी जो संग्राम भारी कठिनाइयों का सामना करते हुए लड़ रहे हैं, व्रिटिश-द्वीप के लोकमत के ज़िम्मेवार नेताओं को वह समझ लेना चाहिए। क्योंकि जवतक आप लोग इस आन्दोलन का सच्चा स्वरूप और इसका रहस्य न समझ लेंगे तवतक यहां के शासन-तन्त्र-संचालकों पर आप दवाव नहीं डाल सकते। मैं जानता हूं कि इस सभा में आये हुए आप सव लोग सत्य के सच्चे शोधक हैं, और इसी कार्य में ही नहीं, प्रत्युत मानव-समुदाय की सहायता की अपेक्षा रखनेवाले सभी कार्यों के प्रति सत्यमार्ग ग्रहण करने के लिए आतुर हैं, और यदि आप इस प्रश्न को उक्त दृष्टि-विन्दु से देखेंगे तो वहुत सम्भव है कि गोलमेज़-परिषद् का काम सफल हो जाय।"

भेदभाव की नीति

भा ण के अन्त में गांधीजी से पूछे गये प्रश्नों में एक प्रश्न यह था कि 'क्या स्वयं भारतीय प्रतिनिधि साम्प्रदायिक प्रश्न पर आपस में सहमत न होकर समझौते को असम्भव नहीं वना रहे हैं?' गांधीजी ने इस सूचना का ज़ोरों से इन्कार करते हुए कहा—"मैं जानता हूं कि आपको इसी प्रकार विचार करना सिखाया गया है। इस मोहक सूचना के जादू के असर को आप दूर नहीं कर सकते। मेरा दावा यह है कि विदेशी शासकों ने 'फूट डालकर शासन

करने' की भेद-नीति से भारत पर शासन किया है। यदि शासकों ने वारांगना की तरह आज एक दल से और कल दूसरे से गठजोड़ा करने की नीति अख्तियार न की होती तो भारत पर कोई भी विदेशी साम्राज्यवादी हुकूमत चल नहीं सकती थी। विदेशी शासन का फच्चर जवतक मौजूद है और गहरे-से-गहरा उतरता जाता है, तबतक हमारे अंदर फूट बनी ही रहेगी। फच्चर का स्वभाव ही यह है। फच्चर को निकाल डालिए और चिरे या फटे हुए दोनों हिस्से इकट्ठे होकर मिल जायंगे। फिर स्वयं परिषद् के वर्तमान संगठन के कारण भी जनता का काम अत्यन्त कठिन हो गया; क्योंकि यहां आये हुए सब प्रतिनिधि सरकार द्वारा नामज़द किये हुए हैं। उदाहरणार्थ, यदि राष्ट्रीय-दल के मुसलमानों से अपना प्रतिनिधि चुनने के लिए कहा जाता तो डा० अन्सारी चुने जाते। अन्त में हमें यह भी न भूलना चाहिए कि यदि ये ही प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होते तो अधिक ज़िम्मेदारी के साथ काम करते। किन्तु हम तो यहां प्रधान-मन्त्री की कृपा से आये हुए हैं। हम न तो किसीके प्रति ज़िम्मेदार हैं, न किसी निर्वाचक-मण्डल से हमें प्रार्थना या अपील करनी है। फिर हमसे कहा जाता है कि यदि हम साम्प्रदायिक प्रश्न का आपसमें निपटारा न कर लेंगे तो किसी प्रकार की प्रगति न हो सकेगी। इसलिए स्वभावतः ही प्रत्येक अपनी ओर खींचता है और अधिक-से-अधिक जितना सम्भव हो ज़बरदस्ती प्राप्त करना चाहता है। इसके सिवा प्रतिनिधियों से साम्प्रदायिक प्रश्न का एकमत से निपटारा कर लेने के लिए तो कहा जाता है, किन्तु यह नहीं बताया जाता कि यदि वे एकमत हो जायेंगे तो उन्हें मिलेगा क्या? इससे जिस वस्तु के लोभ से पहले से ही समझौता कर सकते थे, उसकी आरम्भ में ही हत्या कर दी जाती है; इस प्रकार समझौता लगभग असम्भव हो जाता है। सरकार को यह घोषणा कर देने दीजिये कि भारतीय आपस में सहमत हों या न हों, हम तो इस देश से जा रहे हैं, फिर आप देखेंगे कि हम जल्दी ही एकमत हो जायंगे। वात यह है कि किसी को यह प्रतीत नहीं होता कि हमें सच्ची—सजीव स्वतन्त्रता मिलनेवाली है। हमें जो-कुछ देना कहा

जाता है, वह तो भारत को लूटने की नौकरशाही की सत्ता का एक अंग मात्र है और वही हमें आपस में लड़ा मारता है। फिर, सरकार के विधान की रचना का आधार साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा रखने के कारण, प्रत्येक पक्ष अधिक-से-अधिक मांग करने के लिए ललचाता है। यदि सरकार को सचमुच कुछ करना हो, तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मेरी यह सूचना स्वीकार कर लेनी चाहिए कि साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिए एक न्यायाधिकरण नियुक्त कर दिया जाय। यदि यह हो जाय, तो बहुत सम्भव है कि इस न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के पहले ही समस्या का कोई सर्व-सम्मत हल निकल आवे।"

यदि ब्रिटिश सरकार अपना कर्तव्य छोड़ दे तो सन्धिकाल में भारत का क्या हाल होगा, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा—"विदेशी शासन जीवित शरीर में विजातीय पदार्थ की तरह है। इस विष को निकाल दीजिए, और शरीर तुरन्त संचालित होने लगेगा। यह कहना कि ब्रिटिश सरकार का भारत से चला जाना अपना कर्त्तव्य छोड़ देना कहा जायगा

भारत में ब्रिटेन का एकमात्र काम

निरी डींग है। आज वह जिस कर्त्तव्य का पालन कर रही है, वह है भारत को लूटना या चूसना। ब्रिटेन के भारत को चूसना बन्द करते ही भारत की आर्थिक स्थिति सुधर जायगी।"

एक दूसरे सदस्य ने पूछा—"आप भारत की दरिद्रता का कारण ब्रिटिश लूट को बताते हैं, किन्तु क्या यह सच नहीं है कि किसानों की दुर्दशा

अंग्रेज़ बनिया

का वास्तविक कारण बनियों का लालच और विवाह और मृत्यु के समय की फ़जूलख़र्ची है? फिर आप ब्रिटिश सरकार पर फ़जूलख़र्ची का आरोप करते हैं, किन्तु देशी नरेशों की फ़जूल-ख़र्ची के सम्बन्ध में आपका क्या कहना है?"

गांधीजी ने उत्तर देते हुए कहा—"हिन्दुस्तानी बनिये की तो अंग्रेजी बनियों के सामने कुछ भी बिसात नहीं, और यदि हम हिंसावादी होते तो हिन्दुस्तानी बनिया गोली से उड़ाये जाने योग्य समझा जाता। किन्तु उस

हालत में अंग्रेज़ी बनिया तो सौ-बार गोली से उड़ाये जाने योग्य समझा जाता। मुद्रा-नीति की जादूगरी और भूमिकर (लगान) की निर्दय वसूली द्वारा अंग्रेज़ी बनिया जो लूट मचाता है, उसके मुकाबले में हिन्दुस्तानी बनिया जो ब्याज लेता है, वह कुछ भी नहीं है। भारतीय जैसी असंगठित और विनयशील जाति की ऐसी संगठित लूट का उदाहरण मैंने इतिहास में और कोई नहीं देखा। भारतीय नरेशों की फ़ज़ूलखर्ची के सम्बन्ध में तो यदि मेरे पास सत्ता हो तो उनके पास से उनके उद्धत महल छीन लेने में मैं ज़रा भी संकोच न करूंगा; किन्तु ब्रिटिश सरकार के पास से नई दिल्ली छीन लेने में तो मुझे उससे अनन्त गुना कम संकोच होगा। जब कि करोड़ों लोग भूखों मर रहे थे, उस समय भारत को देखने में इंग्लैण्ड का-सा बना देने की एक वाइसराय की सनक को पूरा करने के लिए नई दिल्ली पर निर्दयतापूर्वक जो करोड़ों रुपये बरबाद किये गये हैं उनके मुकाबले में राजाओं की फ़ज़ूलखर्ची किसी भी गिनती में नहीं है।"

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया था—"क्या मौलिक प्रश्नों पर भारत के लोगों ने आपस में एकमत से निर्णय कर लिया है?" उत्तर में गांधीजी ने कहा—"कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न के निपटारे की एक योजना पेश की है; किन्तु वह अभी स्वीकृत नहीं हुई है। यहां परिषद् में जो अनेक दलों का कथित प्रतिनिधित्व करने आये हैं, उनमें कांग्रेस भी एक दल है किन्तु सच बात तो यह है कि भारत के करोड़ों की संख्या वाले जनसमूह की ओर से बोलनेवाली यह एक ही प्रतिनिधि-संस्था है। यह एक ही ऐसी जीवित, चैतन्ययुक्त और स्वतंत्र संस्था है, जो लगभग ५० वर्ष से काम करती आ रही है। यह एक ही ऐसी संस्था है, जो असंख्य कष्टों को सहते हुए भी टिकी हुई है। सरकार के साथ सन्धि करनेवाली यह कांग्रेस ही थी, और आप चाहे जो कहें, पर यह एक ही ऐसी संस्था है जो एक दिन वर्तमान सरकार का स्थान ग्रहण करेगी। मेरा दावा है कि उसने अपनी कार्यसमिति के एक सिक्ख, एक मुसलमान और एक हिन्दू सदस्य की बनी हुई प्रतिनिधि समिति द्वारा जो योजना पेश की है, वह जहां तक औचित्य

और न्याय का सम्बन्ध है, किसी भी न्यायाधिकरण की जांच के सामने टिकी रह सकेगी।"

'मैंचेस्टर गार्जियन' में उसके सम्वाददाता ने लिखा था कि गांधीजी को अछूतों की ओर से बोलने का क्या अधिकार है, क्योंकि वे स्वयं ब्राह्मण वर्ग के हैं, जो अछूतों को अभीतक दबाता चला आया है। एक मित्र ने इस लेख का हवाला देते हुए गांधीजी से पूछा कि "इस प्रकार क्या वे स्वयं ही समझौते के मार्ग में विघ्न-रूप नहीं हैं?" उत्तर में गांधीजी ने कहा—"मैं कभी यह न जानता था कि मैं ब्राह्मण हूं; हां, मैं बनिया अवश्य हूं, और यह शब्द एक प्रकार का तिरस्कार-सूचक है। किन्तु मैं श्रोतावर्ग को बता देना चाहता हूं कि ४० वर्ष पहले जब मैं विलायत आया था, तबसे मेरी जाति-वालों ने मुझे बहिष्कृत कर दिया है, और मैं जो काम कर रहा हूं, उससे मुझे अपनेको किसान, जुलाहा और अछूत कहलाने का अधिकार प्राप्त है। मैंने अपनी पत्नी से विवाह किया उससे बहुत पहले ही मैंने अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को अपना लिया था। हमारे संयुक्त जीवन में दो बार ऐसे प्रसंग आये थे, जिनमें मुझे अछूतों के लिए काम करने और अपनी पत्नी के साथ रहने इन दो बातों में से एक को चुन लेने का प्रश्न उपस्थित हो गया था और इनमें मैं पहली को ही पसन्द करता; किन्तु मेरी नेकदिल पत्नी को धन्यवाद है कि उसके कारण वह कठिन प्रसंग टल गया। मेरे आश्रम में, जोकि मेरा कुटुम्ब है, कई अछूत हैं और एक मधुर किन्तु नटखट बालिका मेरी लड़की की तरह रहती है। रही यह बात कि मैं समझौते में विघ्न-रूप हूं, सो मैं स्वीकार करता हूं कि इस कारण विघ्न-रूप हूं कि भारत के लिए वास्तविक पूर्ण स्वराज्य से कम स्वीकार करके समझौता करने के लिए मैं ज़रा भी तैयार नहीं हूं।"

हृदय या मस्तिष्क

अन्तिम प्रश्न इस प्रकार था—"आप बुद्धि को अपील करने के साथ ही अपने शोधे हुए शस्त्र का भी प्रयोग करते हैं, इन दोनों का मेल मिलना हमें कठिन होता है। यह क्या बात है कि कभी-कभी आप यह ख़याल कर लेते हैं कि बुद्धि को

अपील करना एक ओर रखकर अधिक कड़ी कार्रवाई करना अच्छा है ?"

उत्तर में गांधीजी ने कहा—"सन् १९०६ तक मैं केवल बुद्धि को अपील करने की नीति पर विश्वास करता रहा। मैं अत्यन्त परिश्रमी सुधारक था। सत्य का नैष्ठिक उपासक होने के कारण मैं सदैव वास्तविक बातों से परिचित रहता था, इससे मैं एक अच्छा मज़मूननवीस था। किन्तु जिस समय दक्षिण अफ्रीका में कठिन प्रसंग उपस्थित हुआ उस समय मैंने देखा कि बुद्धि को अपील करने का कुछ असर न हुआ। मेरे देशबन्धु उत्तेजित हो उठे थे—कीड़ा तक किसी समय उलट पड़ता है—और बदला लेने की चर्चा उठ खड़ी हुई थी। मेरे लिए हिंसा में सम्मिलित हो जाने अथवा संकट का मुकाबला करने और गन्दगी को रोकने के लिए कोई दूसरा तरीका ढूंढ़ निकालने इन दो बातों में एक को पसन्द कर लेने का प्रश्न उपस्थित था। और मुझे यह बात सूझी कि हमें अपने को पतित बनानेवाले कानून को मानने से इन्कार कर देना चाहिए और इसके लिए यदि सरकार चाहे तो हमें जेल भेज दे। इस प्रकार शस्त्र-युद्ध के बजाय नैतिक शस्त्र प्रकट हुआ। उस समय मैं राजभक्त था, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि सब मिलाकर अंग्रेज़ी साम्राज्य की प्रवृत्तियों का परिणाम हिन्दुस्तान और उसी तरह मानव-जाति के लिए लाभदायक ही है। महायुद्ध का आरम्भ होते ही मैं इंग्लैण्ड आया और उसमें कूद पड़ा, और बाद को जब मुझे 'प्लूरिसी' की बीमारी बढ़ जाने से विवश होकर हिन्दुस्तान को जाना पड़ा तो वहां जाकर भी मैंने अपनी ज़िन्दगी को ख़तरे में डालकर रंगरूट भरती करने का काम किया, जिसे देखकर मेरे कई मित्र कांप उठे थे। सन् १९१९ में जब रौलेट ऐक्ट नामधारी काला कानून पास हुआ और प्रमाणित अन्यायों के दूर करने की हमारी साधारण प्राथमिक मांग तक को पूरा करने से सरकार ने इन्कार कर दिया, तब मेरी आंखें खुलीं और भ्रम दूर हुआ। और इस प्रकार सन् १९२० में मैं बाग़ी बना। तबसे मेरी यह प्रतीति बढ़ती ही गई है कि जनता की प्रधान महत्त्व की वस्तुएं केवल बुद्धि को अपील करने अर्थात् समझाने-बुझाने से नहीं मिलतीं, प्रत्युत कष्ट-सहन के मूल्य में खरीदनी

पड़ती हैं। कष्ट-सहन मनुष्यों का कानून है; और शस्त्र-युद्ध जंगल का। किन्तु जंगल के कानून की अपेक्षा कष्ट-सहन में विरोधी का हृदय-परिवर्तन करने और उसके कान, जो दूसरी तरह वुद्धि की आवाज़ के खिलाफ़ वन्द रहते हैं, उन्हें खोलने की अनन्त गुनी शक्ति रहती है। मैंने जितनी प्रार्थनाएँ की हैं, और निराशा के होते हुए भी जितनी आशा मैंने रखी है, उतनी किसीने न रखी होगी; और मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमें यदि कुछ वास्तविक काम करवाना हो तो केवल वुद्धि को सन्तुष्ट करना ही काफ़ी नहीं, हृदय को भी हिलाना चाहिए। वुद्धि की अपील मस्तिष्क को अधिक स्पर्श करती है, किन्तु हृदय को स्पर्श करने के लिए तो सहन-शक्ति की ही आवश्यकता है। यह मनुष्य के अन्तर के द्वार खोलती है। मानव-ज़ाति की विरासत तलवार नहीं, कष्ट-सहन है।"

१०

मोण्टेसरी

मेडम मोण्टेसरी के साथ गांधीजी की भेंट एक आत्मा के साथ आत्मा का सम्मिलन था। मेडम मोण्टेसरी पर गांधीजी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने लिखा—"गांधीजी मुझे तो मनुष्य की अपेक्षा आत्मा-रूप अधिक प्रतीत होते हैं। वर्षों से मैं उनका विचार कर रही थी। मैंने अपनी आत्मा से उन्हें समझने का प्रयत्न किया है। उनकी विनमृता, उनकी मधुरता ऐसी है, मानो समस्त संसार में कठोरता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उन्होंने तीक्ष्ण सूर्य-किरण की तरह अपने विचारों को सम्पूर्ण रूप से व्यक्त किया, मानो वीच में कोई मर्यादा या वाधा है ही नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं जिन शिक्षकों को तैयार कर रही हूं, यह माननीय व्यक्ति उन्हें वहुत सहायता पहुंचा सकेंगे। शिक्षकों को खुले हृदय के और उदार होना चाहिए; उन्हें अपनी आत्मा का परिवर्तन करना चाहिए, जिससे कि वे वालिग पुरुषों के कठोर और मनुष्य-जीवन को कुचल डालनेवाले विघ्नों से पूर्ण संसार से वाहर निकल आ सकें। शिक्षकों के साथ इनकी यह मुलाकात

वालकों का आध्यात्मिक रक्षण करने में हमारी सहायक हो।" हमें वैठने के लिए गद्दी-तकिये दिये गए थे और आईलिंग्टन के ग़रीव किन्तु देव-वालकों की तरह स्वच्छ और मधुर वालकों ने हिन्दुस्तानी तरीके से गांधीजी को नमस्कार किया। वे सादी पोशाक पहने हुए थे और नंगे पांव थे। नमस्कार के वाद इन वालकों ने जो काम सीखे थे, उन्हें दिखाकर हमारा मनोरंजन किया। तालवद्ध हलन-चलन, ध्यान और इच्छा-शक्ति के अनेक प्रयोग, वजाने के वाजे और अन्त में मौन-साधन के महत्वपूर्ण प्रयोग कर दिखाये। उपस्थित सव लोगों पर इसका गहरा असर हुआ। अपने वालकों से घिरी मेडम मोण्टेसरी में मुझे वालकों के लिए मुक्त संसार के दर्शन हुए। ईश्वर की सृष्टि में अकेले वालक ही अधिकतर उसके अनुरूप होते हैं। मेडम मोण्टेसरी की शिक्षण-विषयक महत्वाकांक्षा पूरी-पूरी सफल न हो तो भी उन्होंने माता-पिताओं का ध्यान वालकों में जो पूजने योग्य है, उसकी ओर आकर्षित करके मानव-जाति की असाधारण सेवा की है। उन्होंने मधुर संगीतमय इटालियन भाषा में गांधीजी का स्वागत किया और उनके मन्त्री ने अंग्रेज़ी में उसका अनुवाद किया। यह अनुवाद भी पूर्ण रूप से हर्षोत्पादक था--

"मैं अपने विद्यार्थियों और यहां एकत्र मित्रों को सम्वोधित कर कहती हूं कि मुझे आपसे एक अत्यन्त महत्व की वात कहनी है। गांधीजी की आत्मा--जिस महान् आत्मा का हमें इतना अनुभव है--उनके शरीर में मूर्त्तरूप से आज हमारे सामने यहां मौजूद है। जिस वाणी के सुनने का सौभाग्य अभी हमें मिलनेवाला है, वह वाणी आज संसार में सर्वत्र गूंज रही है। वह प्रेम से वोलते हैं, और केवल वाणी से ही उसे व्यक्त नहीं करते, प्रत्युत उसमें अपना समस्त जीवन भर देते हैं। यह ऐसी वात है, जो कभी-कभी ही हो सकती है; और इसलिए जव कभी यह होती है तव प्रत्येक मनुष्य उसे सुनता है।

"श्रद्धेय महानुभाव! मुझे इस वात का गर्व है कि जिस वाणी में

आज यहां आपका स्वागत हो रहा है, वह लेटिन जातियों में से एक की है—पश्चिम के धार्मिक विचारों के उद्गम-स्थान रोम, भव्य रोम की है। मैं चाहती हूं कि यदि आज पूर्व के सम्मान में पश्चिम के समस्त विचारों और जीवन को मैं मूर्त्तरूप से यहां व्यक्त कर सकी होती तो कितना अच्छा होता ! मैं आपके सामने अपने विद्यार्थियों को पेश करती हूं। यहां उपस्थित केवल मेरे विद्यार्थी ही नहीं हैं, वरन् उनमें मेरे मित्र, मित्रों के मित्र और उनके सगे-सम्बन्धी भी हैं । किन्तु मेरे विद्यार्थियों में अनेकानेक राष्ट्रों के लोग हैं। यहां एकत्र हुए लोगों में उदार-हृदय अंग्रेज़ शिक्षक हैं और अनेक भारतीय विद्यार्थी हैं; इटालियन, डच, जर्मन, डेन्स, चेकोस्लोवेकियन, स्वीड्स, आस्ट्रीयन, हंगेरियन, अमेरिकन और आस्ट्रेलियन विद्यार्थी हैं और न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा तथा आयरलैण्ड से आये हुए विद्यार्थी भी हैं। वालकों के प्रति प्रेम के ही कारण वे सब यहां आये हैं।

"हे महानुभाव ! संसार की सभ्यता और बालकों के विचार की शृंखला से ही हम एक-दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं और इसी कारण हम सब आज आपके समक्ष आये हैं । क्योंकि हम बालकों को जीवित रहना सिखाते हैं—वह आध्यात्मिक जीवन कि केवल जिसके आधार पर ही संसार की शान्ति स्थापित हो सकती है । और यही कारण है कि हम सब यहां जीवन की कला के आचार्य और हमारे सबके—विद्यार्थियों और उनके मित्रों के—गुरु की वाणी सुनने के लिए एकत्र हुए हैं। आज का दिन हमारे जीवन में चिरस्मरणीय होगा। ये २४ छोटे अंग्रेज बालक, जिन्होंने स्वयं तैयारी करके आपके सामने काम दिखाया, भविष्य में जो नया बालक होनेवाला है, उसके जीते-जागते चिन्ह हैं। हम सब आपके शब्द की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।"

गांधीजी की हृद्तन्त्री के सभी तारों को हिला देने में इसका बड़ा असर हुआ और इस हृत्कम्पन में से इस महान् अवसर के योग्य संगीत निकला, जो संसार के सब भागों के निवासी माता-पिता और बालकों

के लिए एक सन्देश भी था और मुक्तिपत्र भी। मैं उसे यहां पूरा-पूरा देता हूं —

"मेडम ! आपने मुझे अपने शब्द-भार से दबा दिया है। मुझे अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करना ही चाहिए कि आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि कितना ही कम क्यों न हो, किन्तु मैं अपने जीवन के

माता-पिता की ज़िम्मेदारी

प्रत्येक अंग में प्रेम प्रकट करने का प्रयत्न करता हूं। अपने स्रष्टा का, जो मेरी दृष्टि में सत्य-रूप है, साक्षात्कार करने के लिए अधीर हूं, और अपने जीवन के आरम्भ में ही मैंने यह शोध की कि यदि मुझे सत्य का साक्षात्कार करना हो, तो मुझे अपने जीवन तक को खतरे में डालकर प्रेम-धर्म का पालन करना चाहिए; और ईश्वर ने मुझे बालक दिये हैं, इससे मैं यह शोध भी कर सका कि प्रेम-धर्म तो बालक ही सबसे अधिक समझ सकते हैं और उनके द्वारा ही वह अधिक अच्छी तरह सीखा जा सकता है। यदि उनके बेचारे माता-पिता अज्ञान न होते तो बालक सम्पूर्ण निर्दोष रहते। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि जन्म से ही बालक बुरा नहीं होता। यह जानी-बूझी बात है कि बालक के जन्म के पहले और उसके बाद उसके विकास में यदि माता-पिता अच्छी तरह आचरण करेंगे, तो स्वभाव से ही बालक सत्य और प्रेम का पालन करेंगे; और अपने जीवन के अरम्भ-काल में ही, जबसे मुझे यह बात मालूम हुई तभी से, मैंने उसमें धीरे-धीरे किन्तु स्पष्ट हेरफेर करना शुरू कर दिया।

"मेरा जीवन कितने और कैसे-कैसे तूफ़ानों में होकर गुजरा है, मैं यहां उसकी चर्चा नहीं करना चाहता। किन्तु मैं सचमुच पूरी-पूरी नम्रता से इस बात का साक्षी हो सकता हूं कि जितने अंश में मैंने विचार, वाणी और कार्य में प्रेम प्रकट किया, उतने ही अंशों में मैंने 'न समझी जा सकने जैसी" शान्ति अनुभव की है। मुझमें यह ईर्षा-योग्य शान्ति देखकर मेरे मित्र उसे समझ न सके और उन्होंने मुझसे इस अमूल्य धन का कारण जानने के लिए प्रश्न किये हैं। मैं इस सम्बन्ध में उन्हें केवल

इससे अधिक कुछ नहीं वता सका कि यदि मित्रों को मुझमें इतनी शान्ति दिखाई देती है, उसका कारण अपने जीवन के सबसे महान् नियम का पालन करने का मेरा प्रयत्न है ।

"जव सन् १९१५ में मैं भारत पहुंचा, तव सवसे पहले मुझे आपके कार्यों का पता चला। अमरेली में मैंने मोण्टेसरी-प्रणाली पर चलने-वाली एक छोटी पाठशाला देखी। उसके पहले मैं आपका नाम सुन चुका था। मुझे यह जानने में जरा भी कठिनाई न हुई कि यह पाठशाला आपकी शिक्षण-पद्धति के सिर्फ़ ढांचे का ही अनुसरण करती थी, तत्त्व का नहीं। और यद्यपि वहां थोड़ा-बहुत प्रामाणिक प्रयत्न किया भी जाता था, किन्तु साथ ही मैंने यह भी देखा कि वहां अधिकांश में दिखावट ही अधिक थी।

शिक्षक का स्वभाव

"इसके वाद तो मैं ऐसी अनेक पाठशालाओं के सम्पर्क में आया और जितने अधिक सम्पर्क में आया उतना ही अधिक यह समझने लगा कि वालकों को यदि प्रकृति के, पशुओं के योग्य नियमों द्वारा नहीं प्रत्युत मनुष्य के गौरव-रूप नियमों द्वारा शिक्षा दी जाय तो उसका आधार भव्य और सुन्दर है। वालकों को जिस प्रकार शिक्षा दी जाती थी, उससे मुझे स्वभावतः ही ऐसा प्रतीत हुआ कि यद्यपि उन्हें अच्छी तरह शिक्षा नहीं दी जाती थी, फिर भी उसकी पद्धति तो इन मूल नियमों के अनुसार ही निर्धारित की गई थी। इसके वाद तो मुझे आपके अनेक शिष्यों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनमें से एक ने तो इटली की यात्रा करके स्वयं आपका आशीर्वाद भी प्राप्त किया था। मैं यहां इन वालकों और आप सबसे मिलने की आशा रखता था और इन वालकों को देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। इन वालकों के सम्वन्ध में मैंने कुछ जानने का प्रयत्न किया है। यहां मैंने जो कुछ देखा है, उसकी एक झलक वर्मिंघम में भी दिखाई दी थी। वहां एक पाठशाला है। इस शाला में और उस-में भेद है। किन्तु वहां भी मानवता को प्रकाश में लाने का प्रयत्न होता

दिखाई देता है । यहां भी मैं वही देखता हूं कि छुटपन से ही बालकों को मौन का गुण समझाया जाता है । और अपने शिक्षक के संकेत-मात्र से, सुई गिरे तो उसतक की आवाज़ सुनाई दे जाय, इतनी शान्ति से किस तरह एक के पीछे एक बालक आया, वह देखकर मुझे अनिर्वचनीय आनन्द होता है । तालबद्ध हलन-चलन के प्रयोग देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ; और जब मैं इन बालकों के प्रयोगों को देख रहा था, मेरा हृदय भारत के गांवों के अधभूखे बालकों के प्रति दौड़ गया । मैंने अपने दिल में कहा, 'यह पाठ मैं उन्हें सिखाऊं, जिस रीति से इन्हें शिक्षा दी जाती है उस रीति से मैं उन्हें शिक्षा दे सकूं, क्या यह सम्भव होगा ?' भारत के ग़रीब-से-ग़रीब बालकों में हम एक प्रयोग कर रहे हैं । यह कहां तक सफल होगा, मैं नहीं जानता । भारत के झोंपड़ों में रहनेवाले बालकों को सच्ची और शक्तिशाली शिक्षा देने का प्रश्न हमारे सामने है और हमारे पास कोई साधन नहीं है ।

"हमें तो शिक्षकों की स्वेच्छापूर्वक दी गई मदद पर आधार रखना पड़ता है । और जब मैं शिक्षकों को ढूंढता हूं, तो बहुत थोड़े मिलते हैं—

शिक्षक के रूप में बालक

खासकर जो बालकों के मानस को समझें, उनमें जो विशेषता हो उसका अभ्यास करें और उन्हें फिर उनके आत्मसम्मान के भरोसे मानो छोड़ देते हों, इस प्रकार उन्हें अपने ही शक्ति-साधनों पर निर्भर बना देवें और उनमें जो उत्तम शक्ति हो उसे प्रकट करें । सैंकड़ों, हज़ारों बालकों के अनुभव पर से मैं कहता हूं; और आप विश्वास करें कि बालकों में हमारे से भी अधिक सम्मान का खयाल होता है । यदि हम नम्र बनें तो जीवन का सबसे बड़ा पाठ बड़े विद्वानों के पास से नहीं, परन्तु बालकों से सीखेंगे । ईसा ने जब कहा कि बालकों के मुख से बुद्धिपूर्ण बातें निकलती हैं, तो इसमें उन्होंने उच्चतम और भव्य सत्य को प्रकट किया था । मेरा उसमें सम्पूर्ण विश्वास है और मैंने अपने अनुभव में यह देखा है कि यदि बालकों के पास हम नम्रतापूर्वक और निर्दोष होकर जायंगे तो उनसे जरूर बुद्धि-

मानी की शिक्षा पायेंगे ।

"मुझे अब आपका और समय नहीं लेना चाहिए । अभी जिस प्रश्न का विचार मेरे मन में है वह जिन करोड़ों बालकों के बारे में मैंने आपसे ज़िक्र किया है, उनमें उनके उत्तम गुणों को प्रकट करने का प्रश्न है । परन्तु मैंने एक पाठ सीखा है । मनुष्य के लिए जो बात असम्भव है वह ईश्वर के लिए तो बच्चों का खेलमात्र है; और उसकी सृष्टि के प्रत्येक अणु के भाग्यविधाता परमेश्वर में यदि हमारी श्रद्धा हो तो प्रत्येक बात सम्भव हो सकती है । इसी अन्तिम आशा के कारण मैं अपना जीवन बिता रहा हूं, और उसकी इच्छा के अधीन होने का प्रयत्न करता हूं । इसलिए मैं फिर यह कहता हूं कि जिस प्रकार आप बालकों के प्रेम से अपनी अनेकों संस्थाओं के द्वारा बालकों को श्रेष्ठ बनाने के लिए शिक्षा देने का प्रयत्न करती हैं उसी प्रकार मैं भी यह आशा करता हूं कि धनवान और साधन-सम्पन्न लोगों को ही नहीं परन्तु गरीबों के बालकों को भी इस प्रकार की शिक्षा देना सम्भव होगा । आपने जो कहा सो बिलकुल सच है कि यदि हमें संसार में सच्ची शान्ति स्थापित करना है, युद्ध के साथ सच्चा युद्ध करना है, तो हमें उसका बालकों से ही आरम्भ करना होगा । यदि वे स्वाभाविक और निर्दोष रूप से वृद्धि पावें तो हमें न लड़ना होगा, न फ़जूल प्रस्ताव करने होंगे, परन्तु जाने-अनजाने संसार को जिस शान्ति और प्रेम की भूख है वह प्रेम और शान्ति दुनिया के कोने-कोने में जबतक फैल न जाय तबतक हम प्रेम-से-प्रेम और शान्ति-से-शान्ति प्राप्त करते जायंगे ।"

गांधीजी की पुस्तकें

प्रार्थना-प्रवचन (खंड १,२)—वे संकलित प्रवचन जो गांधीजी ने दिल्ली की प्रार्थना-सभाओं में दिये थे। ३), २॥)

गीता-माता—गीता के बारे में गांधीजी द्वारा लिखित अनासक्ति योग, गीताबोध, गीता-प्रवेशिका, गीता-पदार्थ-कोष तथा गीता-सम्बन्धी लेखों का संकलन। ४)

पन्द्रह अगस्त के बाद—भारत के स्वतन्त्र होने के दिन से लेकर अन्तिम समय तक के गांधीजी के लेखों का संग्रह। अ० १॥), स० २)

धर्म-नीति—नीति-धर्म, मंगल-प्रभात, सर्वोदय और आश्रमवासियों से, इन चार पुस्तकों का संग्रह। अ० १॥), स० २)

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास—दक्षिण अफ्रीका में मानवीय अधिकारों के लिए किये गये अहिंसात्मक संग्राम का विस्तृत इतिहास। ३॥)

मेरे समकालीन—समसामयिक नेताओं एवं जनसेवकों के गांधीजी द्वारा लिखे हुए मार्मिक संस्मरण। ५)

आत्मकथा—पढ़ने में उपन्यास-जैसी रोचक तथा शिक्षा व ज्ञान में उपनिषदों की भांति पवित्र गांधीजी की आत्मकथा। ५)

आत्मसंयम—संयम एवं ब्रह्मचर्य की महत्ता तथा भोग की हानियों पर प्रकाश डालनेवाले महत्वपूर्ण लेख। ४)

गीता-बोध	॥)	राष्ट्र-वाणी	१)
अनासक्ति-योग	१॥)	एक सत्यवीर की कथा	।)
ग्राम-सेवा	।=)	संक्षिप्त आत्मकथा	१॥)
मंगल-प्रभात	।=)	हिन्द-स्वराज्य	॥।)
सर्वोदय	।=)	बापू की सीख	॥)
आश्रमवासियों से	।=)	आज का विचार	।=)
अनीति की राह पर	१)	गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	१=)
ब्रह्मचर्य (दो भाग)	२)	हृदयमंथन के पांच दिन	।)

विनोबाजी की पुस्तकें

विनोबा के विचार (दो भाग)—विनोबाजी के निबन्धों व व्याख्यानों का महत्वपूर्ण संग्रह। प्रति भाग १॥)

गीता-प्रवचन—गीता के प्रत्येक अध्याय का बड़ी ही सरल, सुबोध शैली में विवेचन। अजिल्द १), सजिल्द १॥।)

शांति-यात्रा—गांधीजी के देहावसान के बाद अनेक स्थानों में दिये गये प्रवचन। १॥)

स्थितप्रज्ञ-दर्शन—स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की व्याख्या। १॥)

ईशावास्यवृत्ति—ईशोपनिषद् की विस्तृत टीका। ॥।)

ईशावास्योपनिषद्—मूल श्लोकों सहित ईशोपनिषद् का सरल अनुवाद। =)

सर्वोदय-विचार—सर्वोदय-विषयक लेखों व प्रवचनों का संग्रह। १=)

स्वराज्य-शास्त्र—प्रश्नोत्तर के रूप में विनोबाजी द्वारा स्वराज्य की परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एवं आदर्श राज्य-व्यवस्था का विवेचन। ॥।)

भूदान-यज्ञ—देश के भूमिहीनों की दुर्दशा से प्रभावित होकर भूमि के सम-वितरणार्थ दिये गए मूल्यवान प्रवचन। ।)

राजघाट की संनिधि में—भूदान-यज्ञ के सिलसिले में दिल्ली में दिये गए विनोबाजी के प्रवचन। ॥।)

गांधीजी को श्रद्धांजलि—*गांधीजी के प्रति विनोबाजी की सर्वोत्तम श्रद्धांजलि।* ।=)

जीवन और शिक्षण—युवकोपयोगी लेखों तथा भाषणों का संग्रह २)

सर्वोदय के सेवकों से—रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की विभिन्न सभाओं में दिये गये महत्वपूर्ण भाषण। ।)

सर्वोदय का घोषणा-पत्र—चांडिल-सर्वोदय सम्मेलन में दिये गये भाषण। ।)

विचार पोथी—विनोबाजी के चुने हुए मूल्यवान विचारों का संग्रह १)

गांव सुखी, हम सुखी—गांव को समृद्धिशाली बनाने के उपाय ।=)

गांधीजी-विषयक पुस्तकें

बापू की कारावास-कहानी (डा० सुशीला नैयर) १०)

गांधीजी के आगाखां महल में २१ मास के बंदी जीवन का वृत्तांत।

राष्ट्रपिता (जवाहरलाल नेहरू) २)

गांधीजी के संपर्क के अनेक मधुर संस्मरण।

श्रद्धाकण (वियोगी हरि) १)

काव्य भाषा में बापू के सम्बन्ध में हृदयग्राही शब्द-चित्र।

बापू (घनश्यामदास बिड़ला) २)

गांधीजी के जीवन के कई रोचक व शिक्षाप्रद संस्मरण।

डायरी के पन्ने (घनश्यामदास बिड़ला) १)

दूसरी गोलमेज परिषद् (लन्दन) के अवसर पर महात्माजी के साथ के रोचक व तथ्यपूर्ण संस्मरण।

बापू के आश्रम में (हरिभाऊ उपाध्याय) १)

गांधीजी के संसर्ग की छोटी-छोटी, पर महान घटनाओं का वर्णन— ऐसी घटनाएं जो जीवन पर गहरा असर डालती हैं।

बापू के चरणों में (बृजकृष्ण चांदीवाला) २॥)

सन् १९३४ से गांधीजी के साथ के लम्बे संसर्ग के संस्मरण।

बा, बापू और भाई (देवदास गांधी) ॥)

पूज्य कस्तूरबा, गांधीजी व हरिलाल भाई के हृदयस्पर्शी संस्मरण।

गांधी-मार्ग (राजेन्द्रप्रसाद) ≈)

गांधीजी की नीति और विचारों की सरल सुबोध व्याख्या।

गांधीजी की देन (राजेन्द्रप्रसाद) १॥)

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन, उनके सिद्धांत और लोकहित-कारी मार्ग पर राष्ट्रपति द्वारा प्रकाश।

गांधीजी का विद्यार्थी जीवन ।≈)

गांधीजी के विद्यार्थी जीवन की बहुत सी सीख देने वाली बातें।

इंग्लैंड में गांधीजी (महादेव देसाई) २)

गांधीजी की लंदन-यात्रा का रोचक एवं प्रामाणिक वर्णन।